फ़ोर्ट विलियम कॉलेज

[१८००-१८५४ ई०]

लेखक

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम्० ए०, डी० फ़िल्०, डी० लिट्०

लेक्चरर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी



मूल्य ६)

मुद्रक—पं० मगनकृष्ण दीक्षित, दीक्षित प्रेस, प्रयाग

परिचय

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय से हिंदी पाठक तथा विद्वान् उनकी प्रसिद्ध कृति, 'आधुनिक हिंदी साहित्य' १८५०–१९०० ई० के द्वारा परिचित हैं। पिछले कई वर्षों से उनके अध्ययन का क्षेत्र १७५७ से १८५७ तक का हिंदी साहित्य रहा। यह अध्ययन डी० लिट्० थीसिस के रूप में स्वीकृत हो चुका है और आशा है शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेगा। इसी अध्ययन क्षेत्र का एक अंग प्रस्तुत ग्रंथ है।

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के इस विस्तृत अध्ययन में हिंदी पाठक पहली बार ऐसी सामग्री पावेंगे जो खड़ीबोली हिंदी भाषा और साहित्य विषयक उनके दृष्टिकोण पर नवीन प्रकाश डालेगी। ईस्ट इंडिया कंपनी की भाषा संबंधी नीति के संबंध मे भी पाठकों को बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त भी इस अध्ययन मे समकालीन परिस्थितियों के विषय में बहुत कुछ नवीन आकर्षक सामग्री संकलित है।

डॉ० वार्ष्णेय की इस नवीन कृति को हिंदी पाठकों के संमुख रखने में मुझे हर्ष और गर्व है। विश्वास है कि वे इसे रोचक तथा उपयोगी पावेंगे। इसका प्रकाशन प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से हुआ है।

हिंदी विभाग,
आश्विन अमावस्या, सं० २००४ वि०

धीरेन्द्र वर्मा

वक्तव्य

ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अंत में ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों को कुशल व्यापारी ही नहीं, वरन् बढ़ती हुई ब्रिटिश सत्ता के अनुरूप उन्हें भारतीय भाषाओं तथा आचार-विचारों से परिचित कुशल नीतिज्ञ शासक बनाने की एक महत्वपूर्ण समस्या थी। इस समस्या के हल हुए बिना साम्राज्य के हाथ से निकल जाने की आशंका थी।

अपने पूर्ववर्ती अँगरेज़ शासकों के अपूर्ण प्रयासों के उपरांत मार्क्विस वेलेज़ली ने परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अँगरेज़ कर्मचारियों की शिक्षा और उनके चरित्र-सुधार की दृष्टि से, अन्य अनेक कार्यों में व्यस्त रहने पर भी, १८०० ई० में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना और अन्य अनेक विषयों के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था की। भारतीय इतिहास में आधुनिकता के निश्चित प्रतीक के रूप में सर विलियम जोन्स द्वारा स्थापित एशियाटिक सोसायटी (१७८४) के बाद कॉलेज का महत्व तो है ही, साथ ही आधुनिक भारतीय भाषाओं में से प्रधानतः हिंदी, बँगला और उर्दू साहित्यों के इतिहास से भी उसका घनिष्ठ संबंध है। कॉलेज में व्याकरण, कोष, विराम-चिह्न, हिंदी में अरबी-फ़ारसी ध्वनियाँ प्रकट करनेवाले तथा साधारण टाइप ढालने, आदि के संबंध में काफ़ी काम हुआ। लल्लूलाल और सदल मिश्र के नाते आधुनिक खड़ी-बोली गद्य के विकास में भी देशी तथा विदेशी इतिहास-लेखक उसका उल्लेख करते रहे हैं। इतिहास-लेखकों का यह मत पूर्णतः स्वीकार किया जा सकता है या नहीं, इसका अंतिम निर्णय कॉलेज-संबंधी मूल सामग्री के अध्ययन के आधार पर ही हो सकता है। इस अध्ययन से हिंदी-उर्दू के वर्तमान संघर्ष को समझने में भी यथेष्ट सहायता मिलती है। प्रस्तुत पुस्तक इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए लिखी गई है। विषय केवल हिंदी (आधुनिक अर्थ में) और 'हिंदुस्तानी' के विवेचन तक ही सीमित रक्खा गया है।

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के इस इतिहास की सामग्री के प्रधान आधार इंपीरियल रेकॉर्ड्स डिपार्टमेंट (अब नेशनल आरकाइव्ज़ ऑव इंडिया), नई दिल्ली, में सुरक्षित हस्तलिखित विवरण तथा अन्य सरकारी काग़ज़ और प्रेस लिस्ट हैं। प्रकाशित ग्रंथों से भी सहायता ली गई है जिनका यथास्थान निर्देश कर दिया गया है। विषय का विभाजन और विवेचन कालक्रमानुसार है। कुछ सूचनात्मक तथा उपयोगी सामग्री परिशिष्ट में दे दी गई है। परिचय लिखने के लिए लेखक श्री डॉ० धीरेन्द्रजी वर्मा, एम्० ए०, डी० लिट्० (पेरिस) का तथा सामग्री संकलित करने के उद्देश्य से अध्ययन के लिए समस्त सुविधाएँ प्रदान करने तथा प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित करने के लिए क्रमशः इंपीरियल रेकॉर्ड्स डिपार्टमेंट, नई दिल्ली, के अधिकारियों तथा कर्मचारियों, और इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के अधिकारियों का कृतज्ञ है।

'गिलक्राइस्ट' शीर्षक अध्याय तक की सामग्री 'हिंदुस्तानी' (१९४० १९४३) में लेखों के रूप में प्रकाशित हो चुकी थी किंतु प्रस्तुत पुस्तक में उनमें अनेक आवश्यक परिवर्तन कर दिए गए हैं। शेष अंश प्रथम बार प्रकाशित हो रहे हैं।

हिंदी विभाग,
दीपावली, सं० २००४ वि०

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

विषय-सूची

संक्षेप और संकेत

इं० रे० डि०	इंपीरियल रेकॉर्ड्स डिपार्टमेंट, नई दिल्ली
ओ० सी०	ओरिजिनल कंसलटेशन
जि०	जिल्द
प०	पब्लिक प्रोसीडिंग्ज़
प० कं०	पब्लिक कंसलटेशन
फ़ो० वि०	फोर्ट विलियम तथा प्रोसीडिंग्ज़ ऑव दि कॉलेज ऑव फ़ोर्ट विलियम
मि०	मिसेलेनियस
ले० बु०	लेटर बुक
ह०	हस्तलिखित
हो०	होम डिपार्टमेंट



फ़ोर्ट विलियम कॉलिज के पुस्तकालय की मोहर

John Gilchrist

गिलक्राइस्ट के स्वाक्षर

कॉलेज की स्थापना

ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों की नैतिक दशा सुधारने और एक अनुशासनपूर्ण शिक्षा-प्रणाली द्वारा उन के देश-विषयक ज्ञान की अभिवृद्धि कर उन्हें व्यापारियों के स्थान पर नीति-कुशल शासक बनाने का जो कार्य क्लाइव, हेस्टिंग्ज़ और कॉर्नवालिस न कर सके उसे मार्क्विस वेलेजली (१७९८-१८०५) ने किया। इस महान् कार्य के लिए भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में उनका नाम सदैव अमर रहेगा। जिस साम्राज्य की नींव रॉबर्ट क्लाइव ने डाली और वारेन हेस्टिंग्ज़ ने जिसे सुरक्षित बनाया उस पर मार्क्विस वेलेज़ली ने ब्रिटिश साम्राज्य का भव्य प्रासाद खड़ा किया। उन के भारतवर्ष आने पर ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक संस्था मात्र थी। उन्होंने उसे सर्वोपरि राजनीतिक सत्ता बना कर छोड़ा।

भारत में वेलेज़ली: कंपनी के कर्मचारियों का सुधार

शासन-सूत्र अपने हाथ में ग्रहण करते समय स्वयं वेलेज़ली ने देखा कि कर्मचारियों की शिक्षा, योग्यता, आचरण और अनुशासन की देखरेख का कोई प्रबंध नहीं है। कम अवस्था में ही वे इंगलैंड से भेज दिए जाते थे। उन की शिक्षा अपूर्ण रहती थी। भारत आने पर उन्हें ऐसे देश के शासन करने का भार सौंप दिया जाता था जिस के राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, भाषा एवं आचार-विचार संबंधी विषयों से वे बिल्कुल अनभिज्ञ रहते थे। फ़ौजी विभाग के कर्मचारियों का सामरिक ज्ञान अधूरा रहता था और माल-विभाग के कर्मचारियों के लिए रुई की गाँठें गिनना, कपड़ा नापना या हिसाब लगाना प्रधान कर्तव्य समझा जाता था। उन्हें कंपनी के चतुर और कूटनीतिज्ञ शासक बनाने की चिंता किसी ने न की थी। अनुशासन-हीन अल्पवयस्क युवकों का चरित्र भ्रष्ट होते कुछ देर भी नहीं लगती। अनुभवहीन और अर्द्धशिक्षित होने के कारण वे अपना और कंपनी का उत्तरदायित्व समझने में नितांत असमर्थ थे। इस प्रकार किसी नियंत्रण के अभाव में वे बहुत जल्दी कुव्यसनों के शिकार बन जाते थे। अपव्यय करने की आदत से उन पर हज़ारों रुपयों का क़र्ज़ हो जाता था। दो-तीन वर्ष के ही अंदर यूरोपीय शिक्षा का प्रभाव भी मिट जाता था। साथ ही वे भारतीय भाषाओं एवं ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन भी न कर पाते थे। बड़े-बड़े अफ़सर तक उन्हें मनमाने ढंग से जीवन व्यतीत करते देख कर उन से कुछ न कहते थे। कंपनी के राजत्व-काल के इस भाग में हमें पश्चिमी सभ्यता का भद्दा उदाहरण मिलता है।

शुरू में कंपनी के कर्मचारी एक व्यापारिक संस्था के प्रतिनिधि मात्र थे। परंतु कंपनी का भारत के विभिन्न भूमिभागों पर अधिकार होने के साथ-साथ उन का कार्य भी पेचीदा होता गया। उन की वणिक प्रवृत्ति अब ब्रिटिश साम्राज्य की प्रतिष्ठा के सर्वथा विरुद्ध जँची। वे अब राजदूत, मंत्री, जज और शासकों के रूप में थे। इसके लिए पाश्चात्य राजनीति एवं ज्ञान-विज्ञान के साथ भारतीय इतिहास, रीति-रस्मों, क़ायदे-क़ानूनों और भाषाओं का ज्ञान अत्यंत आवश्यक था। सफल शासन के लिए उन की शिक्षा का समुचित प्रबंध होना एक महत्वपूर्ण विषय था। ऐसा करने से ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव दृढ़ हो सकती थी। इँगलैंड से आने पर कर्मचारियों का शासन और सेना-संबंधी ज्ञान नहीं के बराबर रहता था। इँगलैंड में तो उन्हें केवल थोड़ा सा व्यापारिक ज्ञान करा दिया जाता था। उन की शिक्षा उस अवस्था पर रोक दी जाती थी जब कि वे अधिक से अधिक ज्ञानोपार्जन करने में समर्थ हो सकते थे। भारतवर्ष में भी उन की शिक्षा और योग्यता की ओर अभी तक विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। वेलेज़ली का कहना था कि अब हमें शुरू से ही उन का जीवन परिश्रम, दूरदर्शिता, सत्यप्रियता और धार्मिकता की भित्ति पर खड़ा कर उन्हें भारतीय जलवायु से उत्पन्न और जनता में प्रचलित दूषित वातावरण से बचाना चाहिए। उन्हें चतुर कूटनीतिज्ञ शासक बनाने में ही ब्रिटिश साम्राज्य का हित है। नहीं तो साम्राज्य के बहुत जल्दी हाथ से निकल जाने की आशंका है।

यह सब देखते और सोचते हुए मार्क्विस वेलेज़ली को ऐसी संस्था के अभाव का अनुभव हुआ जहाँ नवागत सिविलियन कर्मचारियों की शिक्षा, योग्यता, आचरण और चरित्र की देखरेख का समुचित रीति से प्रबंध हो सके। वे चाहते थे कि भारतीय साम्राज्य जैसी अनमोल वस्तु पा कर कर्मचारी भारतवासियों की भाषाओं और रीति-रस्मों का ज्ञान प्राप्त कर उन के संरक्षक की हैसियत से शासन की बागडोर भली भाँति सँभालें। भारतीय भाषाओं और रीति-रस्मों का ज्ञान कराने के लिए एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकता थी जिस की दृढ़ नींव इँगलैंड में रक्खी गई हो और जिस पर भवन भारतवर्ष में खड़ा किया गया हो।

कंपनी और भाषा-संबंधी समस्या

जहाँ तक देशी भाषाओं के ज्ञान से संबंध था कंपनी फ़ारसी भाषा का प्रयोग करती थी। अच्छी तरह या कामचलाऊ फ़ारसी जानने वाले कर्मचारियों पर अधिकारीगण विशेष कृपा रखते थे। राजनीतिक कारणों से कंपनी ने १८३७ तक फ़ारसी भाषा का प्रयोग बराबर बनाए रक्खा।[१] शुरू में अँगरेज़ों ने देश की प्रचलित भाषाओं की ओर भी अधिक ध्यान न दिया। परंतु बंगाल में अँगरेज़ी राज्य का सूत्रपात हो जाने से उन्हें विजितों की भाषा का ज्ञान न होने के कारण माल व फ़ौजी विभागों में अनेक असुविधाओं का सामना होने लगा। फ़ौजी सिपाही अपने प्रदेश की भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा नहीं समझ पाते थे। ऐसी अवस्था में देश की प्रचलित भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य था। प्रारंभ में कंपनी

---

[१] 'हिंदुस्तानी' (अप्रैल-जून, १९४१) में 'ईस्ट इंडिया कंपनी की भाषा-नीति' शीर्षक लेख देखिए।

के कुछ गिने-चुने कर्मचारियों ने इस ओर अपना ध्यान दिया। कहा जाता है कि गवर्नर हॉलवेल ने हिंदुओं के धार्मिक ग्रंथों का, जिनमें दो हिंदी (?) में भी थे, संग्रह किया था। परंतु १७५६ की कलकत्ते की लड़ाई में वे नष्ट हो गए। १५ जनवरी, १७८४ में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना से इस ओर और भी प्रोत्साहन मिला। स्वयं हेस्टिंग्ज़ ने फ़ारसी के साथ-साथ उर्दू भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्हें पूर्वीय साहित्य एवं भाषाओं का शौक़ भी था, पर राजनीतिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे इस ओर अपना अधिक समय न दे सके। इनके अतिरिक्त विल्फ़ोर्ड, शार, कर्कपैट्रिक, ग्लैड्विन, गल्सटन, डॉ० हेरिस आदि कंपनी के प्रमुख कर्मचारियों ने भी देश की प्रचलित भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। परंतु अभी तक संगठित और सुव्यवस्थित रूप से कंपनी के समस्त कर्मचारियों को उनका ज्ञान कराने की कोई चेष्टा न हुई थी। १७८३ में जॉन

गिलक्राइस्ट और हिंदुस्तानी

बोर्थविक् गिलक्राइस्ट (१७५६-१८४१) ईस्ट इंडिया कंपनी में सहायक सर्जन नियुक्त हो कर भारतवर्ष आए।[1] उस समय कंपनी फ़ारसी भाषा का प्रयोग करती थी। गिलक्राइस्ट ने अनुभव किया कि वह अब देश की भाषा नहीं रह गई थी। उन्होंने देखा कि दिल्ली दरबार की अवनति के साथ-साथ फ़ारसी भाषा का प्रयोग भी कम हो चला था और उसके स्थान पर हिंदुस्तानी का चलन हो गया था। इसलिए कंपनी का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए कर्मचारियों को हिंदुस्तानी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक था। इस विचार से प्रेरित होकर उन्होंने शीघ्र ही हिंदुस्तानी का अध्ययन करना शुरू कर दिया। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कंपनी के कर्मचारियों में हिंदुस्तानी का प्रचार करने के लिए जितना परिश्रम गिलक्राइस्ट ने किया उतना और किसी ने न किया था। इस कार्य में उन्हें जितने शारीरिक एवं आर्थिक कष्ट उठाने पड़े उनका उन्होंने स्वयं वर्णन किया है।[2] उनकी देखादेखी अन्य व्यक्तियों ने भी हिंदुस्तानी का अध्ययन करना शुरू कर दिया। ४ जून, १७८७ को उन्होंने कलकत्ते से गवर्नर-जनरल लॉर्ड कॉर्नवालिस के नाम यह पत्र लिखा—

"इन पिछले तीन वर्ष से मैं जिस ग्रंथ ('इँगलिश-हिंदुस्तानी डिक्शनरी') की रचना करने में लगा हुआ था उसके प्रथम भाग की पांडुलिपि समाप्त हो गई है। आप की आज्ञा से अब मैं दूसरे और तीसरे भागों की रचना करना चाहता हूँ। जहाँ

---

[1] एशियाटिक सोसायटी के प्रमुख सदस्यों की साहित्यिक विशेषताओं के विषय में जॉन कोलब्रिन्स नामक व्यक्ति ने एक कविता लिखी थी। इसमें सर विलियम जोन्स, रिचर्ड्सन, मॉरिंगटन, फ़्लेमिंग, हारिंगटन, रॉक्सबर्थ, ऐंडर्सन, हंटर, हार्डविक्, फ़्रैंकलिन, ग्लैड्विन, गिलक्राइस्ट, बालफ़र, स्कॉट, विलफ़ोर्ड, मार्सडेन, विल्किन्स, कोलब्रुक, बर्कीक्वायर, फ़ॉस्टर, ब्यूकैनैन, डेविस, विलियम्स, कर्कपैट्रिक और हेस्टिंग्ज़ का उल्लेख है। —'एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर', १८०१, लंदन, १८०२, मिसेलेनियस ट्रैक्ट वाला भाग। तथा, दे०, परिशिष्ट अ

[2] 'ऐपेंडिक्स टु डिक्शनरी' भाग १ १७९८ संस्करण का भूमिका-भाग

गलिश-हिंदुस्तानी डिक्शनरी'

तक हो सकेगा मैं यह कार्य शीघ्र ही करूंगा क्योंकि जैसा इस विषय पर लिखे गए कैप्टेन कर्कपैट्रिक के पत्र से मुझे ज्ञात हुआ है, उन्होंने जिस कार्य के समाप्त करने का भार अपने ऊपर लिया था उसे अब वे सरकारी काम के कारण पूरा करने में असमर्थ हैं: अब उसमें वे अपना अधिक समय नहीं दे सकते।"[1]

इसी पत्र में गिलक्राइस्ट ने लिखा है—

"अपने अध्ययन की सुविधा और कार्य में सहायता मिलने की दृष्टि से मैं श्रीमान् से बनारस की ज़मींदारी में, और आवश्यकता हुई तो सूबा अवध में, जाने की आज्ञा चाहता हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि सरकार की जैसी कृपा-दृष्टि अब तक मुझ पर बनी रही है वैसी ही इस कार्य के समाप्त होने तक बनी रहेगी। इससे न केवल मुझे वरन् साधारण रूप से सब को लाभ पहुँचेगा।

"इस देश में इतने बड़े ग्रंथ की छपाई में व्यय अधिक होने की आशंका से आर्थिक लाभ होने की कम संभावना है। इसलिए साथ ही मैं श्रीमान् से यह प्रार्थना करने का लोभ भी संवरण नहीं कर सकता कि मुझे वहाँ नील की खेती करने की आज्ञा दी जाय। वेस्ट इंडीज में कुछ वर्ष रहने से मैं यह काम अच्छी तरह जानता हूँ और पूर्ण आशा है कि मैं अपना पारिश्रमिक उससे निकाल लूँगा; विशेष रूप से यदि सौभाग्यवश श्रीमान् की यह सम्मति हो कि इस देश में नील की खेती से ऑनरेबुल कंपनी को अंत में अत्यधिक लाभ पहुँचेगा।

"मैं मन, वचन और कर्म से वर्तमान शासन की दीर्घायु और अपने ऊपर उसकी छाया की सदैव कामना करता रहूँगा। अब मैं अत्यंत विनम्रता के साथ यह प्रार्थना करने का साहस करता हूँ और आशा करता हूँ कि श्रीमान् और बोर्ड इसे स्वीकार करेंगे।"

गवर्नर-जनरल ने उन्हें अपने खर्च पर बनारस में नील की खेती करने की आज्ञा तो दे दी, परंतु सूबा अवध में खेती करने की आज्ञा देना उनके अधिकार से बाहर की बात थी। आज्ञा मिल जाने पर गिलक्राइस्ट महोदय बनारस की ज़मींदारी में चले आए। अपना व्यवसाय करने के अतिरिक्त थोड़े दिन बाद नील के साथ-साथ वे अफ़ीम का काम भी करने लगे थे। वे भारतीय वेशभूषा में विभिन्न स्थानों पर घूम-घूम कर हिंदुस्तानी भाषा का अध्ययन करते थे। १७९० तक उन्होंने 'डिक्शनरी, इँगलिश ऐंड हिंदुस्तानी' के दो भाग प्रकाशित किए और सरकारी नियम के अनुसार २७ दिसंबर, १७९० को प्रकाशित ग्रंथ की कुछ निश्चित प्रतियाँ बोर्ड के पास भेज दीं। बनारस की ज़मींदारी में गिलक्राइस्ट किन-किन स्थानों पर गए, इसके विषय में ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता। परंतु इतना अवश्य ज्ञात है कि १७९१ में वे गाजीपुर में थे; क्योंकि उस वर्ष की ६ जनवरी को ग्रंथ की प्रतियाँ भेजने में मुद्रक और प्रकाशक की ग़लती हो जाने पर क्षमा-याचना

---

[1] फ़ोर्ट विलियम, ४ जून, १७८७, होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्ज़, ओरिजिनल कंसलटेशन नंबर १०, पृ० २१३३-२१४२, इंपीरियल रेकॉर्ड्स डिपार्टमेंट, नई दिल्ली

करते हुए उन्होंने बोर्ड को जो पत्र लिखा था वह गाज़ीपुर से लिखा था नील की खेती वे गाज़ीपुर ही में करते थे। इसी पत्र में उन्होंने 'ग्रैमर' और कोष के 'ऐपेंडिक्स' भाग के छिपने की सूचना बोर्ड को सूचित किया।[1] 'डिक्शनरी' समाप्त हो जाने की सूचना उन्होंने २३ नवंबर, १७९० को भेज दी थी।[2] ग्रंथ का आकार बढ़ जाने से उन्होंने उसका मूल्य बढ़ा दिया था। शुरू में उन्होंने उसका चालीस रुपया मूल्य रक्खा था। बाद को बढ़ा कर पचास रुपया कर दिया। परन्तु ग्राहकों को 'ग्रैमर' और 'ऐपेंडिक्स' मुफ़्त भेजने का वचन दिया। वास्तव में इस कार्य के पूरा करने में प्रेस वालों का उन पर क़र्ज़ बहुत हो गया था। मूल्य बढ़ा देने से उन्हें कर्ज चुकाने में सुविधा हुई। इस पत्र में उन्होंने यह सूचना भी दी कि 'डिक्शनरी' के द्वितीय भाग का फिर से एक नया संस्करण प्रकाशित किया जायगा। १७८७ से १७९४ तक गिलक्राइस्ट गाज़ीपुर रहे। पर स्वास्थ्य ठीक न रहने तथा अन्य अनेक कारणों से (संभवतः क़र्ज़ बहुत बढ़ गया था, या अफ़ीम और नील के व्यवसाय में लाभ न हुआ हो) वे अब वहाँ न रह सके। ६ दिसंबर, १७९४ के पत्र द्वारा बंगाल सरकार से आज्ञा प्राप्त कर वे और व्यापार में उनके साझीदार चार्ल्स कलकत्ता वापिस चले आए। अपनी जगह उन्होंने अपने एजेंट मेसर्स कॉलविन् ऐंड बेजेट के दो प्रतिनिधि सैम्युएल वुड और लेविस हिब्नर को भेज दिया।[3] कलकत्ते में रहते हुए उन्होंने 'दि हिंदुस्तानी ग्रैमर' और 'दि ऑरिएंटल लिंग्विस्ट' नामक दो ग्रंथ क्रमशः १७९६-९८ और १७९८ में प्रकाशित किए। १८०२ में कलकत्ते से ही 'लिंग्विस्ट' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। 'ग्रैमर' का पहले पचास और फिर साठ रुपया और 'लिंग्विस्ट' का बत्तीस रुपया मूल्य रक्खा गया। बंगाल सरकार से उन्होंने प्रार्थना की कि 'लिंग्विस्ट' का कंपनी के कर्मचारियों में सब से अधिक प्रचार किया जाय। सरकार ने इस ग्रंथ की तीन सौ प्रतियाँ ख़रीदीं।[4] १७ सितंबर, १७९८ के पत्र में गिलक्राइस्ट ने आर्थिक सहायता देने पर सरकार के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की और उसके साथ ही 'ऐपेंडिक्स' की तीन सौ प्रतियाँ भी भेजीं। इस के लिए सरकार ने उन्हें तीन हज़ार रुपए की स्वीकृति तो दे दी, परन्तु आर्थिक संकट होने के कारण गिलक्राइस्ट ने 'ऑरिएंटल लिंग्विस्ट' की बाबत ९६०० रुपए दिए जाने

'हिंदुस्तानी ग्रैमर'

'दि ऑरिएंटल लिंग्विस्ट'

---

[1]फ़ो० वि०, २१ जनवरी, १७९१, हो०, प०, ओ० सी० नं० ३०, पृ० २६१-२६४, इं० रे० डि०

[2]फ़ो० वि०, २१ जनवरी, १७९१, हो०, प०, ओ० सी० नं० ३१ पृ० २६४-२६७, इं० रे० डि०। प्रोसीडिंग्ज़ में पत्र की तिथि २३ नवंबर, १७९१ दी गई है। परंतु प्रेस लिस्ट में भूल सुधार कर २३ नवंबर, १७९० कर दिया गया है।

[3]फ़ो० वि०, २२ दिसंबर, १७९४, हो०, प०, ओ० सी० नं० १०, पृ० ४८८३-४८८६, इं० रे० डि०

[4]फ़ो० वि०, १० सितंबर, १७९८, ओ० सी० नं० ७९, प्रेस लिस्ट, पृ० १८०, इं० रे० डि०

की प्रार्थना की सरकार ने उनकी प्रार्थना मंजूर कर ली।[1] १२ नवंबर १७९८ को उन्होंने 'लिंग्विस्ट' की निश्चित प्रतियाँ भेज दीं।[2] गिलक्राइस्ट की देखादेखी फ़ारसी भाषा के ज्ञाता फ़्रांसिस ग्लैड्विन ने भी २४ अक्तूबर, १७९८ के पत्र में अपनी 'ऑरिएंटल मिसेलेनी' के लिए आर्थिक सहायता माँगी। सोलह रुपया फ़ी प्रति के हिसाब से सरकार ने 'मिसेलेनी' की दो सौ प्रतियाँ खरीदीं[3] और उसी साल उन्हें बत्तीस सौ रुपए देने की स्वीकृति दी।[4] २० मार्च, १७९९ को उन्होंने अपनी कृति की दो सौ प्रतियाँ सरकार के पास भेज दीं।[5]

मई, १७९८ में वेलेज़ली कलकत्ता पहुँच गए थे। उन्होंने जॉन बोर्थविक गिलक्राइस्ट के परिश्रम की सराहना की और कर्मचारियों को शिक्षा देने की अपनी आयोजना के प्रकाश में उनके अध्ययन से पूरा लाभ उठाना चाहा। उस समय

वेलेज़ली, कंपनी के कर्मचारी और गिलक्राइस्ट के प्रयास

बंगाल में नियुक्त किए गए सिविल सर्विस के प्रत्येक कर्मचारी को अपने वेतन के अतिरिक्त तीस रुपए मासिक एक मुंशी के वेतन-स्वरूप और मिलते थे। इस वेतन के देने का उद्देश्य यह था कि कर्मचारी देशी भाषाओं, विशेष रूप से फ़ारसी भाषा, का अध्ययन करें। परंतु शिक्षा का माध्यम देशी भाषा या फ़ारसी भाषा इन दोनों में से एक ही हो सकती थी। मुंशी लोग अँगरेज़ी नहीं जानते थे, और कर्मचारी देशी या फ़ारसी भाषा से अनभिज्ञ थे। इसलिए मुंशियों के लिए अँगरेज़ी का या कर्मचारियों का देशी या फ़ारसी भाषा में से एक का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक था। वेलेज़ली को मुंशियों से पढ़ने वाली यह व्यवस्था निरर्थक जँची। इसी समय गिलक्राइस्ट ने उनके सामने कर्मचारियों (जूनियर राइटर्स) को, मुंशियों से फ़ारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने से पहले, प्रति दिन हिंदुस्तानी भाषा सिखाने के साथ-साथ फ़ारसी के प्राथमिक सिद्धांत भी सिखाने का प्रस्ताव रक्खा। वेलेज़ली को यह प्रस्ताव अच्छा लगा और उन्होंने कर्मचारियों को अलग-अलग तरीके से मुंशियों का वेतन देने की प्रथा बंद कर दी। इसके स्थान पर उन्होंने यह व्यवस्था कर दी कि भविष्य में वह कर्मचारियों के भारतागमन के पहले बारह महीने तक गिलक्राइस्ट को दिया जाया करे। इसके बदले में गिलक्राइस्ट, रविवार को छोड़ कर, प्रतिदिन कर्मचारियों को हिंदुस्तानी और फ़ारसी भाषाओं की शिक्षा दिया करते थे। १ जनवरी, १७९९ से इस आयोजना को

---

[1]फ़ो० वि०, ? अक्तूबर, १७९८, हो०, प०, ओ० सी० नं० १०, पृ० २६७१ २३७२, इं० रे० डि०

[2]फ़ो० वि०, १६ नवंबर, १७९८, हो०, प०, ओ० सी० नं० ३४, पृ० ३५३७-३५३८ इं० रे० डि०

[3]फ़ो० वि०, १४ दिसंबर, १७९८ हो०, प०, ओ० सी० नं० २७, पृ० ३७८६ ३७८७, इं० रे० डि०

[4]फ़ो० वि०, ३१ दिसंबर १७९८, हो०, प०, ओ० सी० नं० ३८, पृ० ४०९० ४०९१, इं० रे० डि०

[5]फ़ो० वि०, १ अप्रैल १७९९ प्रेस लिस्ट जि० १९, जुलाई १७९७—मार्च १७९९ पृ० २२१

व्यावहारिक रूप दिया गया। बारहवें महीने के अन्त में विद्यार्थियों की परीक्षा लेने की व्यवस्था भी की गई ताकि आयोजना की सफलता या असफलता की जाँच हो सके। कर्मचारियों की सुविधा के लिए राइटर्स बिल्डिंग्स में एक कमरा गिलक्राइस्ट को दे दिया गया।

कंपनी के कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं का ज्ञान कराने के लिए यह सर्व प्रथम संगठित प्रयास था। यह न समझना चाहिए कि वेलेज़ली ने हिंदुस्तानी की अपेक्षा फ़ारसी को अधिक महत्व दिया। प्रत्युत उन का दृढ़ विश्वास था कि फ़ारसी के साथ-साथ हिंदुस्तानी का ज्ञान भी अंत में कर्मचारियों को लाभदायक सिद्ध होगा।

परंतु इस से वेलेज़ली की बृहत् आयोजना का शतांश भी पूर्ण न हो सका। न्याय, मालगुज़ारी और व्यापार विभागों के सुचारु संचालन के लिए उन्होंने उसी समय बोर्ड के सामने भारतीय भाषाओं ही की नहीं वरन् समस्त आईनों की शिक्षा देने वाली बृहत् आयोजना की एक रूपरेखा रक्खी थी। परंतु कारोमंडल चले जाने तथा अन्य अनेक राजनीतिक कार्यों की विवशता के कारण वे उसे अधिक विस्तृत रूप न दे सके। तो भी उन्होंने इस ओर एक क़दम और आगे बढ़ाया। अपनी बृहत् आयोजना का बीजारोपण उन्होंने २१ दिसंबर, १७९८ की सरकारी सूचना से किया, जिस में उन्होंने लिखा था कि बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन की सफलता की दृष्टि से यह अत्यंत आवश्यक है कि भविष्य में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर वे ही व्यक्ति नियुक्त किए जायँ जो गवर्नर-जनरल की कौंसिल में पास किए हुए नियमों और विधानों और देश की एक या एक से अधिक भाषाओं से भली भाँति परिचित हों। इस के साथ यह सूचना भी प्रकाशित की गई कि १ जनवरी, १८०१ के बाद सिविल सर्विस का कोई भी कर्मचारी उस समय तक किसी भी पद पर नियुक्त नहीं किया जायगा जब तक कि वह कौंसिल के नियमों और विधानों और सुशासन के लिए भाषा-संबंधी ज्ञान की परीक्षाओं में उत्तीर्ण न हो लेगा। परीक्षाओं का वास्तविक रूप क्या होगा, इस का विचार बाद के लिए छोड़ दिया गया। भिन्न-भिन्न स्थानों के न्याय, माल और व्यापार विभागों के लिए जिन-जिन भाषाओं का ज्ञान आवश्यक समझा गया उस का विवरण इस प्रकार है: बंगाल, बिहार, उड़ीसा या बनारस में न्याय-विभाग के अफ़सरों के लिए हिंदुस्तानी और फ़ारसी भाषाएँ; बंगाल या उड़ीसा प्रांत के मालगुज़ारी इकट्ठा करने वाले कलक्टरों, या चुंगी के या व्यापार के, या नमक के एजेंटों के लिए बँगला भाषा; और बनारस या बिहार प्रांत में मालगुज़ारी इकट्ठा करने वाले कलक्टरों, या चुंगी के या व्यापार के, या अफ़ीम के एजेंटों के लिए हिंदुस्तानी भाषा। इन के अतिरिक्त गवर्नर-जनरल की कौंसिल के उन्हीं नियमों और विधानों की परीक्षा लेना उचित समझा गया जो कर्मचारियों के काम के और उपयोगी थे। इस नवीन व्यवस्था की सूचना पहले से इसलिए दे दी गई थी ताकि इस अवसर से लाभ उठा कर उन्नति के इच्छुक कर्मचारी यथाविधि तैयारियाँ करने के लिए यथेष्ट समय पा सकें। बोर्ड भी गवर्नर-जनरल के इन विचारों से पूर्णतया सहमत था और उसकी आज्ञा से यह सूचना गज़ट में प्रकाशित कर दी गई।[1] तत्पश्चात् बंगाल सरकार के उप-मंत्री डंकन कैंपबेल ने २४ दिसंबर, १७९८ के

---

[1] फ़ो॰ वि॰ २१ दिसंबर १७९८ हो॰ प॰, ओ॰ सी॰ नं॰ ११ पृ॰ १८७७ १८८७ इ॰ रे॰ वि॰

पत्र द्वारा गिलक्राइस्ट को सूचित किया कि नवागत कर्मचारियों को हिंदुस्तानी और फ़ारसी भाषाओं की शिक्षा के संबंध में आप की सेवाएँ स्वीकार कर ली गई हैं। इस शिक्षा-संबंधी संस्था का 'ऑरिएंटल सेमिनरी' नाम रक्खा गया। सरकारी आज्ञा के अनुसार गिलक्राइस्ट यहाँ का मासिक कार्य-विवरण ('जर्नल') सरकार के पास भेजते थे।[1] 'जर्नल' में उन्हें प्रत्येक विद्यार्थी की उन्नति और प्रगति, उस की उपस्थिति या अनुपस्थिति आदि बातें लिखनी पड़ती थीं। उसी दिन अर्थात् २४ दिसंबर, १७९८ को सरकारी मंत्री जी० एच० बार्लो ने उन के पास नियुक्ति पत्र भेजा। राइटर्स बिल्डिंग्स में उन्हें एक कमरा रहने को मिला, और, जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि, जो वेतन मुंशियों को मिलता था वह अब गिलक्राइस्ट को मिलने लगा।[2] २५ दिसंबर, १७९८ के पत्र में उन्होंने अपना नया पद सहर्ष स्वीकार किया।[3] २९ जनवरी, १७९९ के पत्र के साथ ३१ कर्मचारी-विद्यार्थियों की सूची मिल जाने पर[4] उसी दिन से उन्होंने विवरण लिखना भी आरंभ कर दिया। १८ मार्च, १७९९ के विवरण में भूमिका के तौर पर उन्होंने भाषा तथा अपनी शिक्षा-प्रणाली के संबंध में संक्षेप में विचार प्रकट किए हैं।[5] पठन-पाठन का वास्तविक कार्य फ़रवरी के महीने से शुरू हुआ। २९ जनवरी के बाद जब तक 'ऑरिएंटल सेमिनरी' का अस्तित्व रहा वे बराबर अपने यहाँ का कार्य-विवरण सरकार के पास भेजते रहे।[6]

ऑरिएंटल सेमिनरी

---

[1]वही, ओ० सी० नं० १२, पृ० ३८८७-३८९१, इं० रे० वि०। प्रोसीडिंग्ज़ में पत्र की तिथि पहली दिसंबर दी गई है। परंतु प्रेस लिस्ट (पृ० ४५१) में यह ग़लती ठीक कर दी गई है।

[2]फ़ो० वि०, १८ मार्च, १७९९, प्रेस लिस्ट, जिल्द १६, जुलाई १७९७—मार्च १७९९, पृ० २२३ (ओ० सी० नं० ३६ प्रोसीडिंग्ज़ पृ० ६१५-६१८), इं० रे० वि०

[3]फ़ो० वि०, १८ मार्च, १७९९, वही, पृ० २२३ (ओ० सी० नं० ३६, प्रोसीडिंग्ज़ पृ० ६१८-६१९), इं० रे० वि०

[4]वही, (ओ० सी० नं० ३९, प्रोसीडिंग्ज़ पृ० ६१९-६२०)

[5]वही, [ओ० सी० नं० ३९ (१८), प्रोसीडिंग्ज़ पृ० ६२१—६४१]

[6]वही, (ओ० सी० नं० ३८, प्रोसीडिंग्ज़ पृ० ६१४-६१५); फ़ो० वि०, १२ अप्रैल, १७९९, प्रेस लिस्ट, जिल्द १७, अप्रैल १७९९—दिसंबर १८००, पृ० २१ (ओ० सी० नं० २३, २४, प्रोसीडिंग्ज़ पृ० १०१९-१०४९); फ़ो० वि०, ३ मई, १७९९, वही, पृ० ३७-३८ (ओ० सी० नं० २७, २८, प्रोसीडिंग्ज़ पृ० १२४५—१२५८); फ़ो० वि०, १७ जून, १७९९, वही, पृ० ६७ (ओ० सी० नं० ७३, ७४); फ़ो० वि०, ४ जुलाई, १७९९, वही, पृ० ८० (ओ० सी० नं० १३, १४); फ़ो० वि०, ८ अगस्त, १७९९, वही, पृ० १०२ (ओ० सी० नं० १३, १४); फ़ो० वि०, ५ सितंबर, १७९९, वही, पृ० १२१ (ओ० सी० नं० १९, २०); फ़ो० वि०, ८ अक्तूबर, १७९९ वही पृ० १५५ (ओ० सी० नं० १५, १६); फ़ो० वि०, १९ नवंबर, १७९९, वही, पृ० १८७-१८८ (ओ० सी० नं० २६, २७); फ़ो० वि०, ५ दिसंबर, १७९९ वही, पृ० २०० (ओ० सी० नं० १५, १६), फ़ो० वि०, ८ अगस्त, १७९९ से ५ दिसंबर

पहले-पहल गिलक्राइस्ट को राइटर्स बिल्डिंग्स का कमरा नंबर ११ दिया गया था। २ जुलाई, १७९९ को बंगाल के सरकारी मंत्री एच० बी० डारेल के नाम एक पत्र लिखकर उन्होंने कमरा नंबर १ माँग लिया।[1] वेतन तै होने के समय तक उन्हें बारह हजार रुपया पेशगी दिया गया।

पहले कहा जा चुका है कि २१ दिसंबर, १७९८ की सरकारी सूचना निकालने के समय वेलेज़ली को टीपू सुलतान से छिड़ी लड़ाई में भाग लेने के लिए मद्रास जाना पड़ा था। परंतु राजनीतिक घटना-चक्र में पड़ कर वे कंपनी के कर्मचारियों का शिक्षा और योग्यता-संबंधी उद्देश्य भूले न थे।

वेलेज़ली का कॉलेज स्थापित करने का विचार

संसार की जिस अद्वितीय, अभूतपूर्व और महान् संस्था की स्थापना करने का उद्देश्य और उसकी नीति उनके दिमाग़ में थी उसे मूर्त रूप देने के लिए वे निरंतर व्याकुल रहते थे। एक महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर उन्होंने जो कुछ किया उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। परंतु इतने से ही उन्हें संतोष नहीं था; यह तो उनकी वृहत् आयोजना के प्रारंभिक भाग का प्रारंभ भी नहीं था। मद्रास से लौटने के बाद २४ अक्तूबर, १७९९ को उन्होंने राइट ऑनरेबुल हेनरी डुंडाज के नाम एक पत्र लिख कर अपने विचार प्रकट किए।[2]

कॉलेज स्थापित करने का प्रथम संकेत वेलेज़ली ने इस पत्र में दिया है। ९ जनवरी, १८०० को उन्होंने गिलक्राइस्ट के विद्यार्थियों की परीक्षा लिए जाने का एक आज्ञापत्र निकाला। परीक्षा के लिए तिथि पहली जून निश्चित की गई। इस कार्य के लिए २७ मई को जो० एच० बार्लो, जे० एच० हारिंगटन, एन० बी० एडमॉन्सटन, लेफ़्टिनेंट-कर्नल डब्ल्यू० कर्कपैट्रिक और डब्ल्यू० सी० ब्लैकवायर की एक कमेटी नियुक्त हुई।[3] २१, २२, २३, २४ और २५ जुलाई की बैठकों के बाद कमेटी ने गिलक्राइस्ट के परिश्रम तथा

गिलक्राइस्ट के विद्यार्थियों की परीक्षा और कमेटी की रिपोर्ट

लगन और उनके विद्यार्थियों के भाषा-संबंधी ज्ञान से पूर्ण संतोष प्रकट किया। २९ जुलाई को उन्होंने अपनी रिपोर्ट गवर्नर-जनरल के पास भेज दी जो कौंसिल के १७ अगस्त के अधिवेशन में उनके सामने रक्खी गई। गवर्नर-जनरल ने उस पर अपनी स्वीकृति

१७९९ तक के प्रोसीडिंग्ज़ पृ०, क्रमशः, १७७०-१७७७, ?, २२७९-२२९९, २८३०-२८२१, ३०४२-३०४४। २१ जनवरी से ५ मार्च, १७९९ तक का विवरण गिलक्राइस्ट ने एक ही साथ भेजा था। फ़ो० वि०, २३ जनवरी, १८००, वही, पृ० २६२ (ओ० सी० नं० ६०, ६१, प्रोसीडिंग्ज़ पृ० ५३३-२४१); फ़ो० वि०, १४ मार्च, १८००, वही, पृ० ३१० (ओ० सी० नं० १२०, १२१, प्रोसीडिंग्ज़ पृ० १२७५-१२७९); फ़ो० वि०, १२ जून, १८००, वही, पृ० ३८३ (ओ० सी० नं० ४०)

[1] फ़ो० वि०, ९ जुलाई, १७९९, प्रेस लिस्ट, जि० १६, जुलाई १७९७—मार्च, १७९९, पृ० ५२३ (ओ० सी० न० ३०)

[2] दे० परिशिष्ट आ

[3] 'एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर' १८०१ (लंदन १८०२) पृ० ५

ौर उस प्रकाशित करने की आज्ञा देते हुए गिलक्राइस्ट की निम्नलिखित शब्दों में शंसा की—

"हिंदुस्तानी के महत्वपूर्ण व्याकरण और कोष का निर्माण करने से हिंदुस्तान की सर्व-प्रचलित भाषा का ज्ञान प्राप्त करने में विद्यार्थियों को जो सुविधा हुई है, उसके लिए हम गिलक्राइस्ट महोदय की योग्यता की अत्यंत सराहना करते हैं। उन्होंने जिस उत्साह, योग्यता और परिश्रम के साथ कंपनी के कर्मचारियों (जूनियर सिविल सर्वेंट्स) को हिन्दुस्तानी और फ़ारसी भाषाओं की शिक्षा देने में अपने कर्तव्य का पालन किया है उसके लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं।

"सरकारी विभागों में अपना कार्य सुसंपादित करने के लिए कंपनी के कर्मचारियों (जूनियर सिविल सर्वेंट्स) को उपादेय ज्ञान की प्रत्येक शाखा की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करना और उन्नति करने पर उनको पुरस्कार देना इस संस्था (ऑरिएंटल सेमिनरी) का प्रधान उद्देश्य है। इससे लाभ उठाने वाले सज्जनों के परिश्रम और उनकी प्रतिभा को प्रोत्साहन देने का हमें सदैव ध्यान रहेगा।"[1]

वेलेज़ली की कॉलेज-स्थापना संबंधी मिनिट्स

इससे पहले ६ जुलाई की मिनिट्स में मार्क्विस वेलेज़ली और उनकी कौंसिल ने कंपनी शासन की उस समय जैसी कुछ दशा हो गई थी उसका वर्णन कोर्ट के डाइरेक्टरों के पास भेजा था। उसमें उन्होंने एक तो गवर्नर-जनरल और अहातों में अच्छा और दृढ़ पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वैधानिक सुधारों की आवश्यकता दिखलाई और दूसरे, साम्राज्य की नींव सुदृढ़ बनाने की इच्छा से कम्पनी के कर्मचारियों का राजनीतिक, कानूनी, आर्थिक और तिजारती ज्ञान, उनकी यूरोपीय और भारतीय शिक्षा, उनका चरित्र सुधारने तथा सुशासन की दृष्टि से अन्य त्रुटियाँ दूर करने और समस्त अहातों के विद्यार्थियों की शिक्षा का संगठित रूप से एक ही स्थान पर समुचित प्रबंध करने की अत्यंत आवश्यकता प्रदर्शित कर बंगाल में एक कॉलेज संस्था स्थापित करने का दृढ़ विचार प्रकट किया। उन्हें पूरा भरोसा था कि ऐसी संस्था कंपनी के कर्मचारियों में नैतिकता, कर्तव्यनिष्ठा और अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने की भावना पैदा करने में सहायक होगी। इससे न केवल भारतवासियों को सुख शांति मिलेगी वरन् स्वयं अँगरेज़ों को राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त होगा। न्याय और बुद्धिमानी का यही तक़ाज़ा था कि अँगरेज जाति और कंपनी के हित-साधन के लिए भारतीय शासन सब प्रकार से सुव्यवस्थित और सुसंगठित किया जाता।[2] १७६६ में हेनरी डुंडास को पत्र लिखने के बाद उन्होंने कॉलेज-स्थापना के विषय में यह दूसरी बार अपना विचार प्रकट किया है। बार्लो कमेटी की रिपोर्ट मिल जाने पर वे शीघ्र से शीघ्र अपनी आयोजना को व्यावहारिक रूप देने का लोभ संवरण न कर सके। फ़्रांसीसियों की शक्ति क्षीण करने और

---

[1]टॉमस रोएबक : 'दि ऐनल्स ऑव दि कॉलेज ऑव फ़ोर्ट विलियम', कलकत्ता, १८१६, नं० १, पृ० १—१३

[2]'वेलेज़ली डेस्पैचिज़', जि० २ पृ० ३१२-३२५

टीपू सुलतान जैसे प्रबल शत्रु की ओर ध्यान लगा रहने पर भी उनका ध्यान कंपनी के कर्मचारियों की शिक्षा, उनके भारतवर्ष सम्बन्धी कायदे-कानून और देशी भाषाओं के ज्ञान और उनके आचरण की ओर गया, यह उनकी प्रतिभा का एक उज्ज्वल उदाहरण है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि वेलेज़ली के कॉलेज-सम्बन्धी प्रयत्न द्वारा भारत वासियों की आधुनिक शिक्षा की नींव पड़ी। परंतु यह भ्रम है। वेलेज़ली की आयोजना केवल अँगरेज़ कर्मचारियों के लिए थी। देशी जनता की शिक्षा की ओर उनका ध्यान कभी नहीं गया था। कॉलेज की स्थापना के विषय में उन्होंने जो आयोजना तैयार की उससे उन की दूरदर्शिता और योग्यता का परिचय मिलता है। यद्यपि कंपनी के संचालक वेलेज़ली से सहमत नहीं थे और इसके फल-स्वरूप उन्हें विफल-मनोरथ होना पड़ा, तो भी उनकी नीति का सिद्धांत अनेक अंशों में अब तक बना हुआ है। कॉलेज की आयोजना तैयार हो जाने पर उन्होंने जिस ढंग से काम लिया उससे उनकी स्वतंत्र प्रकृति का अच्छा परिचय मिलता है। कंपनी के कर्मचारी की हैसियत से नहीं वरन् एक उच्च पदाधिकारी होने की दृष्टि से उनका व्यक्तित्व महान् था। अपनी इसी निर्भीक और स्वतन्त्र प्रकृति के कारण वे डाइरेक्टरों के अप्रिय बन गए थे। २१ दिसंबर, १७९८ में कर्मचारियों के नाम एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित कर वे अपनी कॉलेज-सम्बन्धी आयोजना का प्रथम आभास दे चुके थे। ९ जुलाई, १८०० को उन्होंने कौंसिल के सामने कॉलेज स्थापित करने का प्रस्ताव रक्खा और अपनी प्रबल तर्क-शैली द्वारा कौंसिल के सदस्यों को एकमत हो कर इस विषय को डाइरेक्टरों की स्वीकृति के लिए भेजने पर बाध्य किया। दूसरे ही दिन अर्थात् १० जुलाई को उन्होंने कॉलेज-स्थापना के सम्बन्ध में अपनी प्रतिभापूर्ण एवं सुन्दर शैली से समन्वित गंभीर विचार प्रगट किए—'दि गवर्नर-जनरल्स नोट्स विथ रेस्पेक्ट टु दि फ़ाउंडेशन आव ए कॉलेज ऐट फ़ोर्ट विलियम'[1]। इससे उनकी असाधारण विचार और लेखन-शक्ति का परिचय मिलता है। उन्होंने अकाट्य रूप से यह दिखाया है कि यदि कंपनी के कर्मचारियों को केवल एक व्यापारिक संस्था के नौकर मानने के स्थान पर अब उन्हें राजदूत, मंत्री, न्यायाधीश और शासकों के रूप में मान कर उनकी शिक्षा, योग्यता और आचरण एवं चरित्र का ध्यान नहीं रक्खा जायगा तो शासन में सफलता मिलना असंभव है[2]।

कॉलेज-स्थापना संबंधी रेग्यूलेशन

इस संबंध में अपनी मिनिट्स द्वारा सब विषयों और पहलुओं पर गंभीरता-पूर्वक विचार करते हुए गवर्नर-जनरल मार्क्विस वेलेज़ली ने फ़ोर्ट विलियम में एक कॉलेज स्थापित करने का निश्चय किया। अपनी आयोजना को व्यावहारिक रूप देने के लिए वे इतने आतुर थे कि उन्होंने ९ जुलाई वाले डाइरेक्टरों के नाम पत्र लिखे जाने के दूसरे ही दिन अर्थात् १०

---

[1] ये ही नोट्स १८ अगस्त, १८०० को 'मिनिट्स-इन् कौंसिल' के रूप में स्वीकृत हुए। इसी दिन उन्होंने कोर्ट के डाइरेक्टरों को भी इन नोट्स के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा

[2] दे०, परिशिष्ट ६

, १८००[1] को कोर्ट के डाइरेक्टरों को सूचित किए बिना कालेज स्थापना की वली (रेग्यूलेशन) भी बना डाली। परंतु गवर्नर-जनरल की विशेष आज्ञा से ना तिथि मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम के प्रथम विजयोत्सव के अनुसार ४ मई, ० रक्खी गई।[2] रेग्यूलेशन का भूमिका-भाग इस प्रकार है—

"चूँकि परमपिता परमेश्वर की असीम कृपा से ग्रेट ब्रिटेन को भारत में बुद्धि और बल द्वारा उत्तरोत्तर समृद्धि और यश प्राप्त हुआ है; और चूँकि कई सफल लड़ाइयों के बाद न्यायपूर्ण, कुशल और उदार नीति के सुखद परिणाम द्वारा हिंदुस्तान और दक्षिण के विस्तृत भूमिभाग ग्रेट ब्रिटेन के अधीन हैं, और काल-प्रवाह में ऑनरेबुल ईंगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनातर्गत एक ऐसे बड़े शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना हो चुकी है जिसके अनेक घने बसे हुए और धनधान्यपूर्ण भूमिभागों में अपनी-अपनी प्रथाओं, सिद्धांतों और क़ायदे-क़ानूनों से अनुशासित होने के अभ्यस्त विभिन्न जातीय, भाषाभाषी, धर्मावलंबी, आचार-विचार और स्वभाव वाले लोग बसते हैं; और चूँकि ब्रिटिश जाति के पुनीत कर्तव्य, सच्चे हित, यश और उसकी नीति की दृष्टि से यह आवश्यक है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के सुशासन और उसके निवासियों की समृद्धि और सुख के लिए समुचित प्रबंध हो और जिसके लिए निवासियों का उनके अपने क़ायदे-क़ानूनों, प्रथाओं और पद्धतियों के अनुसार शासन करने की दृष्टि से ब्रिटिश विधान की उदार और पुनीत भावना से प्रेरित होकर गवर्नर-जनरल ने समय-समय पर सुंदर और लाभप्रद नियमों की रचना की है; और चूँकि इन सुंदर, लाभप्रद और उदार नियमों के साथ भविष्य में सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा जो और क़ायदे-क़ानून पास किए जायँ उनका सदैव सदुपयोग होना अत्यंत आवश्यक है, इसलिए भारतीय शासनातर्गत ऑनरेबुल ईंगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी के उच्च पदों पर नियुक्त कर्मचारियों में अपना-अपना कार्य सुसंपादित करने की योग्यता होनी चाहिए; उन्हें साहित्य और विज्ञान के सामान्य सिद्धांतों से परिचित होना चाहिए; और हिंदुस्तान व दक्षिण की विभिन्न देशी भाषाओं और जहाँ वे नियुक्त किए जायँ वहाँ के आईनों और रीति-रिवाजों की भाँति ग्रेट ब्रिटेन के आईनों, शासन-व्यवस्था और विधान का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए; और चूँकि ऑनरेबुल ईंगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सिविल सर्विस में भर्ती होने वाले व्यक्तियों की यूरोपीय शिक्षा असमय समाप्त हो जाने से उन्हें, भारतवर्ष आने से पहले, साहित्य और विज्ञान के सामान्य सिद्धांतों से यथेष्ट परिचय अथवा ग्रेट ब्रिटेन के आईनों, शासन-व्यवस्था

---

[1] तदनुसार, २८ आषाढ़, १२०७, बंगाली संवत् ; ४ श्रावण, १२०७, फ़सली ; २८ आषाढ़, १२०७, विलायती ; ४ श्रावण, १८५७, संवत् ; और १७ सफ़र, १२१५, हिजरी।

[2] कॉलेज के विद्यार्थियों को पुरस्कार-स्वरूप जो पदक दिए जाते थे उनकी एक तरफ यही तिथि और दूसरी तरफ श्रीरंगपट्टम का चित्र बना रहता था।

और विधान का अच्छा ज्ञान प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता, और चूँकि भारतीय सिविल सर्विस के दुरूह और महत्वपूर्ण कार्य सपन्न करने के लिए बहुत सी ज़रूरी बातें सरकारी निरीक्षण, दिग्दर्शन और नियत्रण में भारत मे सचालित शिक्षा और अध्ययन के विधिवत् क्रम के बिना पूर्णरूप से नही सीखी जा सकती, और चूँकि इस समय भारत में ऐसी कोई सार्वजनिक संस्था नहीं है जिसमे ऑनरेबुल इंगलिश ईस्ट इंडिया कपनी के नववयस्क जूनियर कर्मचारी ऊँची और मेहनत की जगहो पर नियुक्त होने की योग्यता प्राप्त कर सकें; और उन जूनियर कर्मचारियो की शिक्षा का प्रबध करने, अथवा पहले-पहल भारतवर्ष आने पर उनके आचरण की देखभाल करने, अथवा परिश्रम, दूरदर्शिता, सचाई और धर्म के नियमित और सुसज्जित क्रम द्वारा भारत में अँगरेज़ों की यश-पताका फैलाने के लिए किसी अनुशासन या शिक्षा की व्यवस्था नही है; इसलिए रिचर्ड मार्क्विस वेलेजली, नाइट ऑव् दि इलस्ट्रियस ऑर्डर ऑव् सेंट पैट्रिक, आदि-आदि, सपरिषद् गवर्नर-जनरल, ने सुशासन स्थापित करने और भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य दृढ़ बनाने और ऑनरेबुल इंगलिश ईस्ट इंडिया कपनी के हितो और यश की सरक्षा करने के लिए एक संस्था और अनुशासन, शिक्षा और अध्ययन की व्यवस्था आवश्यक समझ कर निम्नलिखित विधान पास किया—

"२. इस विधान के द्वारा कपनी के जूनियर सिविल कर्मचारियो को ईस्ट इडीज में ब्रिटिश राज्य के सुशासन के निमित्त विभिन्न पद ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त करने के उद्देश्य से साहित्य, विज्ञान तथा ज्ञान के आवश्यक अंगो की उचित शिक्षा देने के लिए बगाल के फ़ोर्ट विलियम में एक कॉलेज की स्थापना की जाती है।"[1]

गवर्नर-जनरल सरक्षक और विज़िटर, और सुप्रीम कौंसिल के सदस्य तथा सदर दीवानी और निज़ामत अदालतो के जज कॉलेज के गवर्नर नियुक्त हुए। कॉलेज के लिए एक अलग इमारत, पुस्तकालय आदि बनवाने की व्यवस्था हुई। कोष सपरिषद् गवर्नर-जनरल के मातहत रक्खा गया जिन्हें कोर्ट के डाइरेक्टरो के पास वार्षिक रिपोर्ट भेजनी पड़ती थी। कॉलेज के शासन-प्रबध के कर्ता प्रोवोस्ट और वाइस-प्रोवोस्ट, या ऐसा कोई दूसरा अफ़सर जिसे विज़िटर नियुक्त करे, हुए। उनके वेतन का निश्चय विज़िटर के ऊपर था, जो जब चाहे तब उन्हें हटा भी सकता था। प्रोवोस्ट के लिए इंगलैंड के चर्च का पादरी होना ज़रूरी था। विज़िटर के लिए हर एक बात का विवरण कोर्ट के डाइरेक्टरों के पास भेजना अनिवार्य समझा गया। फोर्ट विलियम में पहुँचने पर विद्यार्थियो के रहने का प्रबंध करना; उन की नैतिकता और आचरण की देख-भाल करना; उन्हें उपदेश देना या डॉट-फटकार बताना; इंगलैंड के चर्च के सिद्धात, अनुशासन और रीतियो के अनुसार ईसाई मत की शिक्षा देना प्रोवोस्ट के प्रधान कार्य

---

[1] ए० बी० १८००, रेग्यूलेशन ६ ओ० सी० नं० २०, १० जुलाई १८००, (छपा हुआ) इ० रे० वि०

रक्खे गए। प्रोफ़ेसर और उसका वेतन नियुक्त करने का अधिकार विज़िटर को मिला और जल्दी से जल्दी निम्नलिखित विषयों के प्रोफ़ेसर नियुक्त करने का निश्चय हुआ।

भाषाओं में अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, हिंदुस्तानी, बँगला, तैलग, महाराष्ट्री, तामिल, कन्नड, अन्य विषयों में, शरअ मुहम्मदी, भारतीय धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, न्यायशास्त्र, अंतर्राष्ट्रीय कानून; भारत में ब्रिटिश राज्य के शासन-प्रबंध के लिए सपरिषद् गवर्नर-जनरल तथा फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज और बंबई के सपरिषद् गवर्नरों द्वारा पास किए गए क़ायदे-क़ानून; राजनीतिक अर्थशास्त्र, और विशेष रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी की व्यापारिक संस्थाएँ और उनका हित; भूगोल और गणित; यूरोप की आधुनिक भाषाएँ, ग्रीक, लैटिन, और प्राचीन अँगरेज़ी साहित्य (क्लैसिक्स); प्राचीन और आधुनिक सामान्य इतिहास, हिंदुस्तान और दक्षिण का इतिहास और पुरातत्व; प्रकृति-विज्ञान; वनस्पतिशास्त्र; रसायनशास्त्र, और ज्योतिषशास्त्र।

विज़िटर एक ही प्रोफ़ेसर को एक से अधिक विषय पढ़ाने की आज्ञा दे सकता था। पूरे सात साल की नौकरी के बाद प्रोवोस्ट, वाइस-प्रोवोस्ट और प्रोफ़ेसरों को उनके वार्षिक वेतन के एक-तिहाई रुपए की पेंशन मिल सकती थी। पेंशन पाने का अधिकार इँगलैंड या भारत में, जैसा कोई चाहे, दिया गया। विज़िटर पेंशन बढ़ा भी सकता था। कंपनी के नवागत कर्मचारियों को और साथ ही उन कर्मचारियों को भी जिन्हें बंगाल में आए हुए तीन वर्ष से अधिक नहीं हुए थे, क्रमशः पहले तीन वर्ष और रेग्यूलेशन की तिथि से तीन वर्ष तक कॉलेज में रह कर केवल अध्ययन करने का नियम स्थापित हुआ। फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज या बंबई के कर्मचारी भी सपरिषद् गवर्नर जनरल की आज्ञा से कॉलेज से लाभ उठा सकते थे। उन्हीं की आज्ञा से बंगाल, फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज और बंबई के जूनियर सैनिक कर्मचारी भी कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर सकते थे, परंतु उस समय तक और उन नियमों के अंतर्गत जिन्हें वे उचित समझें। कॉलेज-वर्ष में दो-दो महीने के चार पक्ष रक्खे गए। बीच-बीच में एक-एक महीने की छुट्टियाँ रक्खी गईं। साल में दो परीक्षाएँ रक्खी गईं और विज़िटर और गवर्नरों के सामने योग्य विद्यार्थियों को प्रोवोस्ट द्वारा पुरस्कार देने की व्यवस्था भी की गई। यह भी निश्चित हुआ कि बंगाल, फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज और बंबई के कुछ सरकारी दफ़्तरों में नियुक्ति पाने के लिए ख़ास उपाधियाँ (डिग्रियाँ) रक्खी जायँ और नौकरी में तरक़्क़ी विद्यार्थियों की योग्यतानुसार दी जाय। गवर्नरों की अध्यक्षता में प्रोवोस्ट को कॉलेज की नियमावली बनाने का अधिकार दिया गया जिसका विज़िटर द्वारा स्वीकृत होना अनिवार्य था। इनके अतिरिक्त विज़िटर को प्रत्येक विषय में पूरे-पूरे अधिकार दिए गए। हर एक पक्ष के अंत में कॉलेज का पूरा कार्य-विवरण विज़िटर द्वारा कोर्ट के डाइरेक्टरों के पास भेजना निश्चित किया गया। अंतिम निर्णय का अधिकार कोर्ट के डाइरेक्टरों को दिया गया।

उपर्युक्त रेग्यूलेशन में वेलज़ली की आयोजना के समस्त मूल सिद्धांत सन्निहित हैं।

उनकी इस आयोजना के विरोध में कही जाने वाली अनेक बातों में उनके विपक्षियों का यह भी कहना था कि मद्रास और बंबई के कर्मचारियों को बुलाने

वेलेज़ली की आयोजना के विभिन्न पहलू

के स्थान पर अपनी-अपनी जगहों पर ही उनकी शिक्षा का प्रबंध किया जाय। वेलेज़ली ने यह मत स्वीकार न किया। क्योंकि इससे ज़्यादा व्यय होने तथा अन्य अड़चनों के अतिरिक्त कंपनी के समस्त कर्मचारियों को समान रूप से केंद्रीय सरकार के तत्त्वावधान में शिक्षा नहीं दी जा सकती थी। तीनों अहातों के कर्मचारियों का पारस्परिक वैमनस्य भी इससे कम न हो सकता था। साथ ही बंगाल के कर्मचारियों की दशा कुछ अच्छी होने के कारण दूसरे अहातों के कर्मचारी उनके साहचर्य से कुछ लाभ उठा सकते थे। ये सब बातें सोच कर वेलेज़ली ने कलकत्ता ही केंद्र बनाना उचित समझा।

कॉलेज की स्थापना से वेलेज़ली की ही नहीं वरन् कंपनी के संचालकों की आशा पूर्ण होने की पूरी संभावना थी। २५ मई, १७६८ को कोर्ट के डाइरेक्टरों ने गवर्नर-जनरल के नाम एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने कंपनी के कर्मचारियों में बढ़ती हुई अधार्मिक प्रवृत्तियों और कुव्यसनों के प्रति आशंका प्रकट की थी। इसका ज़िक्र पहले हो चुका है। वेलेज़ली ने डाइरेक्टरों को लिखा कि फ्रांस की राज्यक्रांति के उग्र विचारों से कंपनी के माल व सैनिक विभागों के कुछ कर्मचारी प्रभावित हुए हैं और इससे कम्पनी की राजनीतिक और धार्मिक स्थिति को धक्का पहुँचने की संभावना है। कर्मचारियों की शिक्षा के अभाव में ये विचार क्या रूप धारण करते इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसलिए कॉलेज का स्थापना-विषयक रेग्यूलेशन बना कर वेलेज़ली ने डाइरेक्टरों को उनकी उस शंका के दूर होने के बारे में लिखा। वेलेज़ली खुद तो ईसाई मत का प्रचार करने में दिलचस्पी लेते ही थे, परंतु डाइरेक्टरों का २५ मई वाला पत्र दृष्टि में रखते हुए भी उन्होंने इंगलैंड के चर्च के पादरी को विद्यार्थियों का अभिभावक बनाया था। उन्होंने समझा शायद इससे डाइरेक्टर उनकी आयोजना स्वीकार कर लेंगे।

वेलेज़ली की मिनिट्स में कर्मचारियों की शिक्षा, आचरण आदि के विषय में जिन अभावों और त्रुटियों की ओर निर्देश किया गया है वे सब कॉलेज की स्थापना से दूर हो सकते थे। विद्यार्थी-जीवन में कर्मचारियों को तीन-सौ रुपए मासिक देना तै हुआ। इसमें मुंशी का भत्ता शामिल न किया गया। साथ ही उनके रहन-सहन और खान-पान का ऐसा प्रबंध किया गया जिससे वे मितव्ययता सीख कर ऋण के बोझ से न दब सकें। इंगलैंड के विश्वविद्यालय और फ्रांस की रॉयल मिलिटरी ऐकेडेमियों तथा यूरोप की अन्य प्रसिद्ध संस्थाओं के अच्छे से अच्छे नियमों की पद्धति स्थापित करना कॉलेज के जन्मदाता की आकांक्षा थी, और उसे यह पूर्ण विश्वास था कि कर्मचारी अपने हित के लिए, अपनी उन्नति और ख्याति के लिए एशिया की इस अपूर्व और अनन्य संस्था से पूरा-पूरा लाभ उठावेंगे। विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने के लिए भी कोई बात न उठा रक्खी गई। नियमोल्लंघन के अपराधी विद्यार्थियों के लिए नौकरी से निकालने तथा अन्य प्रकार के दंड देने की व्यवस्था की गई।

कॉलेज के खर्च की सबसे बड़ी समस्या थी। कंपनी के संचालक वैसे ही मार्क्विस वेलेज़ली की आर्थिक नीति से असंतुष्ट थे। इस पर कॉलेज के चलाने में खर्च भी बहुत पड़ता था परंतु वेलेज़ली जैसे योग्य व्यक्ति के लिए रुपए की चिंता से उनकी आयोजना

ा कोई अंतर न पड़ सकता था उन्होंने ऐसा आर्थिक प्रबंध किया जिससे कंपनी के कोष का अधिक रुपया खर्च न हो। राइटर्स बिल्डिंग्स खरीदने के लिए संचालक अपनी स्वीकृति दे ही चुके थे। लेकिन कॉलेज के मतलब के लिए राइटर्स बिल्डिंग्स ठीक न समझ कर वेलेज़ली ने उतने ही रुपए में गार्डन रीच के मैदान में कॉलेज की नई इमारत बनवाने का इरादा किया। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य, कॉलेज का शासन-प्रबंध करने और देशी जनता से विद्यार्थियों को कुछ दूर रखने की दृष्टि से गार्डन रीच ही उन्हें उपयुक्त स्थान जँचा। यह जगह कलकत्ते से बहुत दूर भी नहीं थी। लेकिन नई इमारत बनने तक उन्होंने राइटर्स बिल्डिंग्स में ही कॉलेज का काम शुरू करने का निश्चय किया। बाकी और खर्च के लिए उन्होंने कंपनी के कर्मचारियों की तनख्वाहों का थोड़ा-थोड़ा हिस्सा लेना चाहा। शुरू में यह तथा मुंशियों के भत्ते वाली बची हुई रकम बहुत थी। इसमें सरकारी छापेखाने की आमदनी भी जोड़ी जा सकती थी। इस प्रकार वेलेज़ली ने यह स्पष्ट कर दिया था कि शुरू में कंपनी का अधिक रुपया खर्च नहीं होगा; वार्षिक खर्च के लिए कंपनी जितने रुपयों की स्वीकृति देती थी उतने ही में काम चल जायगा। लेकिन चूँकि 'कॉलेज के द्वारा भारतीय प्रजा के लिए ब्रिटिश शासन की उपयोगिता और भी बढ़ जायगी', इसलिए वेलेज़ली ने कोर्ट से यह प्रार्थना की कि बंगाल और मैसूर की मालगुज़ारी से कुछ वार्षिक रकम कॉलेज के लिए निश्चित कर दी जाय ताकि उसके कार्य में कोई बाधा न पड़ने पाए और सरकारी नौकर भी इस नए कर से बच जायँ। साथ ही उन्होंने भारत में ब्रिटिश हित के शुभचिंतकों से कोर्ट की अध्यक्षता में यूरोप से चंदा जमा कर इँगलिश ईस्ट इंडिया कंपनी के वैभव के अनुरूप इस कॉलेज-संस्था की सहायता करने का अनुरोध किया।

कॉलेज में आईन और भाषाओं की शिक्षा के लिए कलकत्ते का मुहम्मदन कॉलेज और बनारस का हिन्दू कॉलेज अच्छे साधन समझे गए। मुंशियों और देशी अध्यापकों के ऊपर कॉलेज का एक अफ़सर रखने का प्रबन्ध हुआ और कर्मचारियों की बाहर के मुंशियों से पढ़ने की प्रथा बंद कर दी गई। विद्यार्थियों के लाभ के लिए एक पुस्तकालय स्थापित करने और उसके लिए छपी हुई पुस्तकें तथा हस्तलिखित ग्रन्थ खरीदने की व्यवस्था हुई। इस कार्य के लिए वन और अँगरेज़ी सेना द्वारा कोर्ट को भेंट-स्वरूप भेजे गए टीपू सुलतान के पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थ वेलेज़ली ने कंपनी के संचालकों से माँगे, क्योंकि लंदन में रखने के बजाय कॉलेज में उनका अच्छा उपयोग हो सकता था। जिन विषयों के प्रधानाध्यापक (प्रोफ़ेसर) भारतवर्ष में ही मिल सकते थे उन्हें यहीं से रखने तथा अन्य विषयों के प्रधानाध्यापकों को यूरोप से बुलाने का उन्होंने विचार किया। कॉलेज के प्रधानाध्यापक और अध्यापक कॉलेज के विद्यार्थियों के अतिरिक्त और किसी को नहीं पढ़ा सकते थे। यह प्रतिबन्ध उन्होंने इसलिए लगाया ताकि भारत में रहने वाले यूरोपीय लोग अपने बच्चों की शिक्षा यूरोप न भेज कर यहीं शुरू न कर सकें। अन्त में वेलेज़ली ने कोर्ट को यह सूचित कर कि आगामी नवंबर से कॉलेज का कार्य शुरू हो जायगा, उसके सामने भविष्य में समस्त कर्मचारियों को फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के विद्यार्थी बना कर भेजने का प्रस्ताव रक्खा। उस समय कोर्ट उनकी नियुक्ति के स्थानों का उल्लेख भी कर सकता था लेकिन उन्होंने यह कार्य भारतीय सरकार के हाथ में ही छोड़ देना

अच्छा समझा ताकि प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी रुचि और योग्यता के अनुसार पद दिया जा सकता।

संचालकों की स्वीकृति बिना मिले ही वेलेजली ने कॉलेज क्यों खोल दिया इसका उन्होंने स्वयं उत्तर दिया है। ऐसा करने के तीन कारण थे। पहला, कॉलेज की आंशिक आयोजना ही कार्य-रूप में परिणत करने से तात्कालिक लाभ पहुँचने की उन्हें पूर्ण आशा थी। दूसरा, ऑरिएंटल सेमिनरी में गिलक्राइस्ट द्वारा शिक्षित विद्यार्थियों से शासन को जो लाभ पहुँचा था वह उनके सामने स्पष्ट था। तीसरा, वे चाहते थे कि पिछले तीन वर्ष में आए हुए कर्मचारी भी कॉलेज से लाभ उठा सकें। साथ ही अपनी प्रिय संस्था के प्रारंभिक संचालन की देखभाल करने और जो बीज उन्होंने बोया था उसे अंकुरित होते देखने की उनकी प्रबल उत्कंठा थी।

कोर्ट की स्वीकृति बिना मिले कॉलेज की स्थापना

अस्तु, वेलेज़ली की आयोजना के अनुसार प्रत्येक कार्य शुरू हो गया। १८ सितंबर, १८०० को प्रधान सरकारी मंत्री जी० एच० बार्लो ने मेडिकल बोर्ड को कैप्टेन वायट द्वारा कालेज की इमारत बनाने की दृष्टि से गार्डन रीच का निरीक्षण करने और वह स्थान स्वास्थ्यप्रद है या नहीं इस सम्बन्ध में लिखा। उसके स्वास्थ्यप्रद न होने पर दूसरा स्थान निश्चित करने का उनका विचार था। २३ सितम्बर को मेडिकल बोर्ड के द्वितीय सदस्य जे० फ़्लेमिंग ने अपने पत्र में गार्डन रीच स्वास्थ्य-प्रद बताया। इसलिए ८ अक्तूबर, १८०० को बार्लो ने बोर्ड ऑव रेवेन्यू को गार्डन रीच में जितने किसान रहते थे उनकी एक सूची तैयार करने और उन्हें वहाँ से हटाने का प्रबंध करने के लिए लिखा। २१ नवंबर को बोर्ड ऑव रेवेन्यू ने सरकारी मंत्री को चौबीस परगना के कलक्टर के पास प्रस्तावित ज़मीन का मूल्य निर्धारित करने और कॉलेज के लिए एक नई सड़क बनाने के लिए एक एंजीनियर भेजने की सूचना दी। सरकारी मंत्री ने अपने २७ नवंबर के उत्तर में बोर्ड ऑव रेवेन्यू को उक्त कार्य के लिए एक एंजीनियर भेजना स्वीकार किया। १६ अक्तूबर को फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज और बम्बई के गवर्नरों को यह सूचना भेजी गई कि १७६८ में आए हुए कंपनी के कर्मचारियों में से जो चाहें उन्हें फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में दाखिला कराने की आज्ञा दे दी जाय। दोनों स्थानों से कॉलेज में पढ़ना चाहने वाले विद्यार्थियों की सूचियाँ भेज दी गईं। २० अक्तूबर को गवर्नर-जनरल ने अपनी एक मिनिट्स द्वारा कर्मचारियों को मुंशियों के लिए दिया जाने वाला रुपया बन्दकर देने की आज्ञा दी। लेकिन यह रक़म कॉलेज के हिसाब में जमा कर लेने और गिलक्राइस्ट का वेतन, पुरस्कार और मुंशियों का भत्ता देने में जो रक़म खर्च हुई थी उसे कॉलेज के नाम लिख लेने की आज्ञा प्रदान की। १७ अक्तूबर को रेवरेंड डी० ब्राउन, प्रोवोस्ट, ने किताबों का बिल बना कर सरकारी मंत्री के पास भेज दिया। ४ नवंबर को यह सरकारी विज्ञप्ति निकाली गई कि ४ मई, १७६७ और ३१ दिसंबर, १७६८ के बीच में आए हुए बंगाल के जो कर्मचारी कॉलेज में दाखिला कराना चाहें करा सकते हैं। १० नवबर से कुछ दिन पहले फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज के सरकारी मंत्री ने मालाबार के कर्मचारियों के सम्बन्ध में

कॉलेज की व्यवस्था, प्रधानाध्यापक, मुंशी आदि

हाँ के कमिश्नरों को पत्र लिखे। ४ दिसंबर को बोर्ड ने प्रोवोस्ट के पास कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए राइटर्स बिल्डिंग्स ले लेने के सम्बन्ध में पत्र लिखा। राइटर्स बिल्डिंग्स के अतिरिक्त मेसर्स ओर्ड ऐंड नॉक्स के कुछ मकान भी इसी काम के वास्ते किराए पर लिए गए। बोर्ड के ३० दिसंबर के प्रस्ताव के अनुसार शरअ मुहम्मदी और अरबी, फ़ारसी और हिंदुस्तानी भाषाओं के प्रोफ़ेसर नियुक्त किए गए। इन सब प्रबन्धों के अतिरिक्त विद्यार्थियों के रहने, खाने-पीने आदि सभी बातों का प्रबन्ध किया जाने लगा। कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने के लिए कलकत्ता, राजशाही, मेमनसिंह, जौनपुर, पटना, भागलपुर, सारन, चटगाँव, माल्दा, ढाका, मुर्शिदाबाद, रङ्गपुर, मद्रास, बम्बई तथा कंपनी द्वारा अधिकृत भूमिभाग में अन्य स्थानों से कर्मचारी आने लगे और बड़ी धूमधाम से कॉलेज का काम शुरू हो गया।

१८ अगस्त, १८०० की सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति अपने विभिन्न पदों पर नियुक्त किए गए—

रेवरेंड डेविड ब्राउन	प्रोवोस्ट
रेवरेंड क्लौडियस ब्यूकैनैन	वाइस प्रोवोस्ट

प्रधानाध्यापक (प्रोफ़ेसर)

लेफ़्टि० जॉन बेली	अरबी भाषा और शरअ मुहम्मदी
लेफ़्टि० कर्नल विलियम कर्कपैट्रिक, फ़ासिस ग्लैड्विन और एन० बी० एड्मन्स्टिन	फ़ारसी भाषा और साहित्य
जॉन बौर्थविक् गिलक्राइस्ट	हिंदुस्तानी भाषा
जॉर्ज हिलैरो बार्लो	गवर्नर-जनरल द्वारा पास किए गए क़ायदे-क़ानून
रेवरेंड क्लौडियस ब्यूकैनैन	प्राचीन ग्रीक, लैटिन और अँगरेज़ी साहित्य (क्लैसिक्स)

१८ सितंबर की विज्ञप्ति में कौंसिल के सदस्यों के नाम प्रकाशित हुए—

रेवरेंड डेविड ब्राउन, प्रोवोस्ट रेवरेंड क्लौडियस ब्यूकैनैन, वाइस प्रोवोस्ट जॉर्ज हिलैरो बार्लो एन० बी० ——, और लेफ़्टि० कर्नल विलियम कर्कपैट्रिक	कॉलेज-कौंसिल

प में, ६ जनवरी, १८०१ से रक्खा।[1] १५ नवंबर, १८०० को प्रोवोस्ट ने अरबी, फ़ारसी और हिंदुस्तानी भाषाओं पर व्याख्यान, निम्नलिखित क्रम से, सोमवार, २४ नवंबर से शुरू हो कर वर्ष (१८००) के अंत तक रहने की सूचना निकाली –

अरबी—सोमवार और बृहस्पतिवार, १० बजे ; पहला व्याख्यान सोमवार, २४ नवंबर को।

फ़ारसी—मंगलवार और शनिवार, १० बजे। पहला व्याख्यान मंगलवार, २५ नवंबर को।

हिंदुस्तानी—बुधवार और शुक्रवार, ६ बजे। पहला व्याख्यान बुधवार, २६ नवंबर को।[2]

रेग्यूलेशन के अनुसार विज़िटर ने फोर्ट विलियम कॉलेज के विधान (स्टैट्यूट्स) का प्रथम परिच्छेद स्वीकृत किया और वे उनकी आज्ञानुसार प्रोवोस्ट द्वारा १० अप्रैल, १८०१ में लागू हुए। इन नियमों के अनुसार विद्यार्थियों को दाखिला के समय कॉलेज की नियमावली का पालन और उसके वैभव, ख्याति और हितों के अनुकूल आचरण करने की शपथ लेनी पड़ती थी। शपथ लेने के बाद ही उनका नाम रजिस्टर में लिखा जा सकता था। प्रधानाध्यापकों (प्रोफ़ेसरों) और बड़े-बड़े अफ़सरों को भी पद ग्रहण करते समय अन्य बातों के साथ ईसाई धर्म की रक्षा और उसके प्रचार करने की शपथ लेनी पड़ती थी। इनके अतिरिक्त कॉलेज के पदों, व्याख्यान और परीक्षाओं, डिस्प्यूटेशन्स (वाद-विवाद, ६) प्रमाणपत्रों और उपाधियों, प्रोवोस्ट और कौंसिल के अधिकारों, विद्यार्थियों के खाने-पीने के प्रबंध और उनकी उधार लेने की प्रवृत्ति पर प्रतिबंध लगाने

कॉलेज के विधान का प्रथम परिच्छेद

---

[1] 'ऐशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर', १८०१, लंदन (१८०२), पृ० ३१-३२। अन्य विषयों के यूरोपीय अध्यापक इस प्रकार थे—

विलियम कैरे	बँगला और संस्कृत
जेम्स डिन्विडी, एल०एल०डी०	गणित
दु ब्लेसी	आधुनिक भाषाएँ
जम्सडन	फ़ारसी विभाग के सहायक अध्यापक
रॉथमैन	कॉलेज कौंसिल के मंत्री

—'वेलेज़ली डेसपैचेज़', जि० २, परिशिष्ट, पृ० ७३९

हारिंगटन न्यायशास्त्र और क़ानून पढ़ाते थे।

शुरू में चौंसठ विद्यार्थियों का कॉलेज में दाखिला हुआ। उनमें से कुछ ने आगे चल कर बड़ा नाम पैदा किया।

६ जनवरी, १८०१ को ऐडवर्ड स्कॉट वारिंग हिंदुस्तानी विभाग में सहायक अध्यापक नियुक्त हुए।

२७ नवंबर, १८०१ को मज़हर अली ख़ाँ की हिंदुस्तानी विभाग में नियुक्ति हुई।

[2] 'एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर'- १८०१, लंदन (१८०२) पृ० ४४

के संबंध में विविध नियम बने। १६ अप्रैल को गवर्नर-जनरल ने विधान की एक प्रति बोर्ड के पास भेजी जिस पर बोर्ड ने अपनी स्वीकृति दे दी।[1]

२६ अप्रैल, १८०१ के अधिवेशन में कौंसिल[2] ने फ़ारसी, अरबी, हिंदुस्तानी और बँगला विभागों में एक-एक मीर या प्रधान (चीफ़) मुंशी, एक-एक सहायक (सेकेंड) मुंशी और विद्यार्थियों की संख्या देखते हुए आवश्यकतानुसार अन्य मुंशी रक्खे जाने का प्रस्ताव स्वीकार किया। परंतु कुल मिलाकर, प्रधान और सहायक मुंशियों सहित, पचास से अधिक नहीं रक्खे जा सकते थे। उनका पूरा विवरण और उनके वेतनों का लेखा इस प्रकार है—

प्रधान (चीफ़) मुंशी	फ़ारसी	... १ मुंशी,	वेतन, २००	सिक्का रुपए मासिक
	हिंदुस्तानी	... १ ,,	,, २००	,, ,, ,,
	बँगला	... १ ,,	,, २००	,, ,, ,,
	अरबी	... १ ,,	,, २००	,, ,, ,,
		४	८००	
सहायक (सेकेंड) मुंशी	फ़ारसी	... १ मुंशी,	वेतन, १००	,, ,, ,,
	हिंदुस्तानी	... १ ,,	,, १००	,, ,, ,,
	बँगला	... १ ,,	,, १००	,, ,, ,,
	अरबी	... १ ,,	,, १००	,, ,, ,,
		४	४००	

---

[1] फ़ो० वि०, १६ अप्रैल, १८०१, हो०, प०, ओ० सी० नं० १, २, इं० रे० डि०
कॉलेज के चार पक्ष इस प्रकार रक्खे गए—
पहला, ६ फ़रवरी से लेकर मार्च के अंत तक,
दूसरा, ४ मई से लेकर जून के अंत तक,
तीसरा, १ अगस्त से लेकर सितंबर के अंत तक, और
चौथा, १ नवंबर से लेकर दिसंबर के अंत तक।

दो परीक्षाएँ होती थीं—दूसरे और चौथे पक्ष के अंत में। एक या एक से अधिक पूर्वीय भाषाओं का अध्ययन करना अनिवार्य था। कुल शिक्षावधि बारह पक्षों की अर्थात् तीन साल की थी। इस अवधि के अंत में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र इत्यादि दिए जाते थे। किसी पूर्वीय भाषा या साहित्य या भारतीय धर्मशास्त्र या शरअ् मुहम्मदी में विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को एक 'डिग्री ऑव ऑनर' दी जाती थी। प्रमाणपत्र मिलने से पूर्व प्रत्येक विद्यार्थी को यह दिखाना पड़ता था कि उसे किसी का ऋण नहीं देना।

[2] २४ अप्रैल, १८०१ में प्रोवोस्ट, वाइस-प्रोवोस्ट के अतिरिक्त गवर्नर-जनरल ने कौंसिल के निम्नलिखित सदस्य नियुक्त किए—

ऑन० हेनरी वेलज़्ली, जी० एच० बार्लो और एन० बी० एडमॉन्स्टन

	फ़ारसी	२० मुंशी वेतन	४० सि० ६० मा०		८००
मुंशी	हिंदुस्तानी ...	१२ ,,	,, ४० ,, ,,	,,	...४८०
	बँगला ...	६ ,,	,, ४० ,, ,,	,,	...२४०
	अरबी ...	४ ,,	,, ४० ,, ,,	,,	...१६०
		४२			१६८०
		५०			२६८०

कौंसिल ने इसी अधिवेशन में व्याख्यानों के दिन भी बदल दिए—

फ़ारसी और अरबी ... सोमवार और बृहस्पतिवार
हिंदुस्तानी ... मंगलवार और शनिवार
बँगला ... बुधवार और शुक्रवार[1]

[1] फ़ो० वि० २६ अप्रैल, १८०१, हो०, मि०, जि० १, २६ अप्रैल, १८०१—४ सितंबर, १८०१, पृ० १-३, इं० रे० वि०

मुंशियों के विषय में इस प्रकार का दिलचस्प वर्णन मिलता है—

"मुंशी मुसलमान ही होते हों, यह बात नहीं है; हिन्दू मुंशी भी होते हैं, लेकिन बहुत कम। इनका कार्य न तो परंपरागत है और न किसी संप्रदाय या उसकी किसी जाति तक ही सीमित है। साधारणतः मुंशी लोग इस बात की बहुत कोशिश करते हैं कि उनके लड़के पढ़ाने योग्य बन जायँ। लेकिन इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उन्हें ऐसे अनेक धनी व्यक्तियों का मुक़ाबला करना पड़ता है जो अपने लड़कों को अच्छी तरह पढ़ा सकते हैं। इसमें ख़र्च ज़रूर थोड़ा अधिक पड़ता है, पर मेहनत बहुत कम करनी पड़ती है। मुंशियों का साधारण ज्ञान बहुत सीमित होता है। क़ुरान के लंबे लंबे उद्धरण सुनाने और फ़ारसी भाषा की जो कुछ किताबें भारतवर्ष में मिलती हैं उनके साधारण ज्ञान, अधिकतर महापुरुषों की जीवनियों या हाफ़िज़ की कविताओं के ज्ञान के अतिरिक्त सुन्दर लिखना, प्रांतीय मुहावरों की जानकारी रखना, और हस्तलिखित पोथियों की, जिनका पाठ लगभग पढ़ी न जा सकने वाली अँगरेज़ी रचनाओं की भाँति अस्पष्ट होता है, अनेकरूपता समझाने के लिए प्रस्तुत रहना, बस इतनी ही बातें पूर्व में विद्वान् कहलाए जाने के लिए ज़रूरी कही जा सकती हैं! विज्ञान की ओर वे न केवल ध्यान ही नहीं देते, बल्कि घृणा करते हैं।

"मुंशी प्रति दिन नाश्ते के वक़्त से खाना खाने के वक़्त तक पढ़ाता है; और, कभी-कभी शाम को भी। उसका वेतन उसके स्वामी के पद या उत्साह पर निर्भर रहता है; दस रुपए से लेकर चालीस या पैंतालीस रुपए मासिक तक। वह सब नौकरों का प्रधान समझा जाता है। दूसरे नौकर उसकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं। अधिक उदार विद्यार्थियों में से बहुत-से तो उसे जूता पहने ही कमरे में आ जाने देते हैं। क्योंकि यदि कोई दूसरा नौकर जूता पहने कमरे में चला आवे तो घृणा और अनादरसूचक समझा जाने के कारण उसे कठोर दंड दिया जाता है।

"सरकारी विभागों में जो सैकड़ों मुंशी काम करते हैं उनका आम तौर से बहुत ही कम वेतन होता है। इसी के मुताबिक़ वे अपनी पोशाक की तरफ़ से बेख़बर रहते हैं। वे न तो कोई अधिक सम्मानित व्यक्ति होते हैं और न उनकी जानकारी ही बहुत अच्छी रहती है।

उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार ४ मई, १८०१ की बैठक में फ़ारसी, हिंदुस्तानी, बंगला और संस्कृत, और अरबी के प्रधान (चीफ) मुंशी, सहायक (सेकेंड) मुंशी, मौलवी और मुंशी अर्थात् कॉलेज के अध्यापक नियुक्त हुए। हिंदुस्तानी भाषा के निम्नलिखित अध्यापक थे—

प्रधान (चीफ़) मुंशी ...	मीर बहादुर अली ...	मासिक वेतन,	२०० सिक्का रुपए
सहायक (सेकेंड) मुंशी ...	तारिणी मित्र ...	,,	१०० ,,
मुंशी .	मुर्तजा खाँ ..	,,	४० ,,
,, ...	गुलाम अकबर	,,	४० ,,
,, ...	नसरुल्लाह ...	,,	४० ,,
,, ...	मीर अम्मन ...	,,	४० ,,
,, ...	ग़ुलाम अशरफ ..	,,	४० ,,
,, ...	हिलालुद्दीन	,,	४० ,,
,, ...	मुहम्मद सादिक	,,	४० ,,
,, ...	रहमतुल्लाह खाँ	,,	४० ,,
,, ...	गुलाम ग़ौस ...	,,	४० ,,
,, ...	कुन्दनलाल ...	,,	४० ,,
,, ...	काशीराज .	,,	४० ,,
,, ...	मीर हैदरबख्श	,,	४० ,,

केवल रविवारो को छोड कर, प्रधान (चीफ) और सहायक (सेकेंड) मुंशियों को छुट्टियों में भी कॉलेज मे सुबह १० बजे से १ बजे तक उपस्थित रहना पडता था, ताकि विद्यार्थी जब चाहे तब उनसे मदद ले सके। छुट्टी उन्हे केवल प्रोवोस्ट ही मंजूर कर सकता था। जितने भी मुशी थे वे सब चीफ़ मुंशी के मातहत थे। इस प्रबंध के अतिरिक्त कौसिल ने यह व्यस्था भी रक्खी कि विद्यार्थी, यदि जरूरत हो तो, कॉलेज के अध्यापक-वर्ग से बाहर के अध्याको से भी काम ले सकते हैं, लेकिन उन्ही अध्यापको से जिन्हे अधिकारियों की तरफ़ से पढ़ाने का प्रमाणपत्र मिल चुका हो। कॉलेज में जितने भी मौलवी और मुशी रक्खे गए उन मे लगभग सभी अँगरेज़ी भाषा से अनभिज्ञ थे। इसलिए प्रत्येक विभाग के प्रधानाध्यापक (प्रोफ़ेसर) को कौसिल की उनके संबंध की सब बाते अनुवाद कर उन्हे बतानी पड़ती थीं। परीक्षक भी कौंसिल नियुक्त करती थी। कौंसिल की इस बैठक में जी० एच० बार्लो, एन० बी० एड्मॉन्स्टन और एच० टी० कोलब्रुक कॉलेज के दूसरे पक्ष के अंत मे होने वाली परीक्षा के परीक्षक और प्रधान (चीफ़) और सहायक (सेकेंड) मुंशी उनके सहायक नियुक्त हुए। किसी विशेष कार्य की विवशता के कारण जब तक उन्हें पद-त्याग न करना पड़े तब तक एक बार नियुक्त किए हुए परीक्षक ही बने रहते थे।

किसी संबोधित व्यक्ति की उपाधियों से अच्छी तरह परिचित होना, (देशी लोगों में, ख़ास तौर से बड़े लोगों में, उपाधियों के प्रति स्पर्द्धा देख कर बड़ा ताज्जुब होता है। किसी लंबी लिफ़ाफ़े का $\frac{९}{१०}$ भाग तो उनकी उपाधियों से भर सकता है), और तेज़ पढ़ने के साथ साथ जल्दी लिखना उनके सबसे अच्छे गुण समझे जाते हैं

कॉलेज की पहली परीक्षा १८ जून, १८०१ से ३० जून, १८०१ तक रही। ६ जुलाई १८०१ को उसकी रिपोर्ट अधिकारियों के पास भेज दी गई।[1] १० अप्रैल, १८०१ वाले विधान के पाँचवें नियम (परीक्षा-संबंधी) के अनुसार कोई भी विद्यार्थी अपनी किसी विषय की विशेष योग्यता पर पुरस्कार पाने का अधिकारी था। ऐसे पुरस्कार प्रत्येक वर्ष की चौथी मई को घोषित किए जाते थे। दूसरी परीक्षा के अंत में पुरस्कार पाने वाले विद्यार्थियों के नाम अधिकारियों के पास भेज दिये जाते थे और प्रत्येक वर्ष की ६ जनवरी को पुरस्कार वितरित कर दिए जाते थे। थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ बहुत दिनों तक यह व्यवस्था बनी रही। विद्यार्थियों को सुलेख लिखने के लिए प्रोत्साहन देने की दृष्टि से भी पुरस्कार रक्खे गए और इस कार्य के लिए फ़ारसी-सुलेखक कल्ब अली और नागरी-सुलेखक सुन्दर पंडित नियुक्त हुए। इनका मासिक वेतन ९० सिक्का रुपए था। देशी भाषाओं में सुन्दर साहित्यिक रचना करने पर मुंशियों और मौलवियों को भी उचित पुरस्कार दिया जाता था।[2] विद्यार्थियों के लिए देशी भाषाओं से किताबें नकल कराई जाती थीं। इसमें खर्च बहुत होता था। इसलिए १८०१ में कौंसिल ने यह नियम बनाया कि प्रधानाध्यापक स्वयं विभिन्न पुस्तकों के उपयोगी अंशों का संग्रह कर उन्हें छपावें ताकि खर्च भी कम हो और विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें भी सुलभ हो जायें। छपाने से पहले संग्रह उन्हें कौंसिल के पास निरीक्षण और स्वीकृति के लिए भेजना पड़ता था। कौंसिल के इस नियम से देशी भाषाओं के अनेक संग्रह तैयार हुए।[3]

इसी वर्ष हिंदुस्तानी विभाग के मुहम्मद सादिक़, रहमतुल्लाह खाँ, काशीराज और ग़ुलाम ग़ौस नामक अध्यापकों के स्थान पर सैयद जाफ़र, मुहम्मद तक़ी, मुबारक मुहीउद्दीन और असद अली खाँ नामक अध्यापकों की नियुक्ति हुई। पहले चार अध्यापकों ने अपनी जगहें क्यों इतनी जल्दी छोड़ दीं, इसका कोई विशेष कारण ज्ञात नहीं।[3]

यह फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के जन्म की कहानी है। जिस दिन भारतवर्ष में अँगरेज़ी सत्ता का विकास हुआ उस दिन की कीर्ति स्मरणीय बनाए रखने में उसका महत्व है

"भाषाओं का अध्ययन करने वाले सज्जन के मुंशी के पास साधारणतः एक लड़का नौकर रहता है जो घर से आने-जाने के वक़्त उसके लिखने का सामान पकड़े रहने के साथ अपने स्वामी के ऊपर छाता लगाता है। इनमें से बहुत-से लड़के अपने स्वामियों की मेहनत और कृपा से टूटी-फूटी फ़ारसी भाषा जान जाते हैं और वक़्त आने पर दफ़्तरों में नौकरी करने के लिए यथेष्ट पढ़ना और लिखना सीख लेते हैं। कुछ तो बड़ी आराम की और ऊँची जगहों पर पहुँचते सुने गए हैं।

—चार्ल्स डौयले और कैप्टेन टॉमस विलियम्सन : 'दि यूरोपियन इन इंडिया', लंदन, १८१३

[1]फ़ो० वि०, ४ मई, १८०१, हो० मि०, जि० १, पृ० ४—८, इं० रे० वि०

[2]फ़ो० वि०, ३० जून और ७ जुलाई, १८०१, हो०, मि०, जि० १, पृ० क्रमशः ३ और १२, इं० रे० वि०

[3]फ़ो० वि० २ नवंबर १८०१, हो०, मि० जि० १, पृ० १४१५, इं० रे० वि०

किसी भी रूप में विद्या-दान करने वाले को यदि संसार के इतिहास में यश प्राप्त हो सकता है तो वेलेज़ली पूर्णरूप से उसके भागी हैं। अपनी हृद्गत प्रिय आयोजना को मूर्त-रूप देने के लिए जो बीज उन्होंने बोया था उस में विशाल वट-वृक्ष छिपा हुआ था। उसे अंकुरित होते देख कर उनके हृदय में आनन्द, उत्साह और पूर्ण आशा का सचार हुआ। परंतु क्या अच्छा होता यदि मनुष्य के लिए भविष्य बोधगम्य होता!

२

बंगाल सेमिनरी

कॉलेज और साम्राज्य

१२ अगस्त, १८०२ को लॉर्ड वेलेज़ली ने फ़ोर्ट विलियम से डेविड स्कॉट को एक निजी पत्र लिखते हुए कहा था : 'दि कॉलेज मस्ट स्टैंड, ऑर दि एम्पायर मस्ट फ़ॉल'[1]। बाद के कुछ इतिहासकारों ने लिखा था : 'दि एम्पायर स्टैंड्स ऐंड दि कॉलेज हैज़ फ़ॉलेन'[1]। परंतु यदि वास्तव में देखा जाय तो 'नन हैज फ़ॉलेन, बोथ स्टैंड'[1]। कोर्ट के डाइरेक्टरों की नीति के फलस्वरूप वेलेज़ली की वृहत् आयोजना के अनुसार कॉलेज का रूप बना न रह सका और आगे चल कर लगभग पचास वर्ष के बाद रहे-सहे कॉलेज का अस्तित्व भी विलीन हो गया, यह ठीक है। किंतु संचालकों ने वेलेजली का फ़ोर्ट विलियम कॉलेज ग्रहण न कर वेलेज़ली की नीति ग्रहण की और उसी से आज भारत में अँगरेजी साम्राज्य की सत्ता बनी हुई है।

कॉलेज के संबंध में वेलेज़ली का पत्र-व्यवहार और विभिन्न मत

वेलेजली के शासन-सूत्र ग्रहण करते समय कंपनी के कर्मचारियों की कितनी शोचनीय अवस्था थी और कोर्ट के डाइरेक्टरों की उदासीन नीति का अवलम्बन ग्रहण न कर वेलेजली और उनके पूर्ववर्ती शासकों ने कर्मचारियों की दशा सुधारने के लिए कितना अथक परिश्रम किया यह फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के संक्षिप्त इतिहास में दिखाया जा चुका है। कॉलेज की स्थापना कर्मचारियों के लाभ तथा भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव सुदृढ़ बनाने के लिए की गई थी। उसकी आयोजना वेलेज़ली जैसे महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ के मस्तिष्क की उपज थी। संचालकों की स्वीकृति बिना मिले उनकी आयोजना के अनुसार कॉलेज का प्रत्येक कार्य शुरू भी हो गया था। परंतु इससे हम उन्हें स्वेच्छाचारी शासक नहीं कह सकते। वास्तव में वे कॉलेज को संसार का सर्वोत्कृष्ट शिक्षा-केंद्र बनाना चाहते थे और अपनी सर्वप्रिय आयोजना को पल्लवित और पुष्पित होते देखने की उनमें इतनी प्रबल उत्कंठा थी कि वे संचालकों की स्वीकृति प्राप्त करने तक का धैर्य धारण न कर सके। साम्राज्य-हित की जिस उत्कट इच्छा ने कॉलेज-संस्था के विचार को जन्म दिया था उस विचार को कार्यरूप में परिणत करने की आतुरता वेलेजली जैसे व्यक्ति के लिए क्षम्य है। जिस संस्था के संबंध में उनका विचार था कि :—

---

[1] क्रमशः 'कॉलेज बना रहना चाहिए, नहीं तो साम्राज्य का पतन हो जायगा', 'साम्राज्य बना रहा और कॉलेज का पतन हो गया', 'किसी का पतन नहीं हुआ दोनों बने हुए हैं'।

"शांति स्थापित हो जाने पर समस्त संसार इस संस्था के विषय में विचार करेगा। वर्तमान परिस्थिति मे चाहे जो कुछ हो, परतु इसके उद्देश्यों का प्रचार करने से और इसके भविष्य पर विचार करने तथा इसके यश की विमल पताका फहराने से ब्रिटिश हितों और चरित्र को महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त हो सकते हैं। हमारे अपने देश को इस सस्था की विशेष आवश्यकता, इस देश मे इसका विशेष स्थान, एशिया के अंधकार में इसका प्रकाश और यूरोप के सुहृद्समाज मे इसका नवीन रूप—ये सब बाते शीघ्रातिशीघ्र इस सस्था का महत्व सिद्ध कर इसे ऐसी दृढ़ नींव पर स्थापित कर सकेंगी जिसे ब्रिटिश साम्राज्य को हटाए बिना कोई हिला नहीं सकता।"[1]

ऐसी संस्था के सबंध में उन्हें पूर्ण आशा थी कि सम्राट्, संचालकगण तथा अन्य सभी अनुभवी शासक कपनी के कर्मचारियों का सुधार करने वाली आयोजना सहर्ष स्वीकार करेंगे। इसी आशा से प्रेरित होकर उन्होंने सचालकों के पास अपने 'नोट्स' जरा देर से भेजे। साथ ही उन्होंने कॉलिज-संबंधी अपने 'नोट्स', विधान इत्यादि अनुभवी राजनीतिज्ञों के पास उनकी सम्मत्यर्थ भेजे थे। पिट को एक पत्र लिखते समय विल्बर्फ़ोर्स ने वेलेज़ली की आयोजना की सराहना करने के साथ-साथ उनसे कॉलेज के विद्यार्थियों के अभ्यास-कार्य की पुस्तक सम्राट् को भेंट-स्वरूप देने का अनुरोध किया था।[2] १८ अगस्त, १८०० को वेलेज़ली ने लॉर्ड टेनमथ को एक पत्र में सिविल सर्विस की बुराइयों और कठिनाइयों की ओर निर्देश करते हुए लिखा था—

"ईस्ट इडिया कंपनी की सिविल सर्विस के सुधार-कार्य के सबध में कौंसिल द्वारा स्वीकृत विधान की एक प्रति मैं आपके पास भेज रहा हूँ। इस विधान के उद्देश्य का अत्यधिक सार्वजनिक महत्व होने से मुझे भी इस संस्था की, जिसकी स्थापना करना मेरा कर्त्तव्य था, सफलता का उतना ही अधिक ध्यान है। मैंने कोर्ट के डाइरेक्टरों से प्रार्थना की है कि वे सस्था की आयोजना के सबध मे इसके सिद्धातों का परिचय देने वाले मेरे निजी 'नोट्स' आपके पास भेज दे। यदि आप इस रोचक विषय मे मुझसे सहमत हों तो सभापति या कोर्ट को संबोधित करते हुए आपके एक सार्वजनिक वक्तव्य से इगलैंड में इस संस्था को अत्यधिक प्रभावशाली रूप में सहायता पहुँच सकेगी।

"आप सिविल सर्विस की प्रारंभिक अवस्था की बुराइयों और कठिनाइयों पर अत्यत योग्यता और प्रतिष्ठा के साथ विजय पा चुके हैं। इसलिए आपसे बढ़ कर इस सस्था का मूल्य और कोई नहीं आँक सकता। इस नियम पर, जिसे मैं आपके पास भेजने का साहस कर रहा हूँ, आपकी सम्मति अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।"[3]

---

[1] आर० आर० पीयर्स; 'मेम्वायर्स ऐंड कॉरेसपौंडेंस ऑव दि मोस्ट नोबिल रिचर्ड मार्क्विस वेलेज़ली', जि० २ लंदन, १८४६, पृ० २०५-२०६

[2] वही, पृ० २००-२०१

[3] लॉर्ड टेनमथ 'मेम्वायर्स ऑव दि लाइफ ऐंड कॉरेसपौंडेंस ऑव जॉन लॉर्ड टेनमथ', जि० २, लंदन, १८४३, पृ० २५-२६

३० मार्च, १८०१ को लॉर्ड टेनमथ ने ग्रांट महोदय के नाम एक पत्र लिखते समय अपने विचार प्रकट किए। उनका कहना है : कंपनी के कर्मचारियों की त्रुटिपूर्ण शिक्षा-पद्धति के संबंध में लॉर्ड वेलेज़ली के जो विचार हैं उनका मेरे अपने और लॉर्ड कॉर्नवालिस के अनुभव से पूर्ण समर्थन होता है। कर्मचारियों में प्रचलित दोषों से सरकारी मशीन के गिर जाने या समय-समय पर साफ करने की आवश्यकता पड़ती रहेगी। किसी भी सरकार को अपने कर्मचारियों के ही गुण या दोषों से यश या अपयश प्राप्त होता है। यह बात भारतीय शासन-व्यवस्था के संबंध में पूर्णरूप से लागू होती है। आज कंपनी के कर्मचारियों का उत्तरदायित्व केवल व्यापार तक ही सीमित नहीं है। अब तो एक अपार जनसमूह का सुख, उसकी शांति और समृद्धि, कंपनी के कर्मचारियों पर ही निर्भर है। भारत में ब्रिटिश चरित्र का दिन-पर-दिन पतन होता जा रहा है। अतः इस समय प्रतिभाशाली और गुणसंपन्न व्यक्तियों के हाथों में शासन-भार सौंपने से ही भारतीय जनता को शांति और राज्य-व्यवस्था को स्थिरता प्राप्त हो सकेगी। यह कार्य दूरदर्शिता और संगठित प्रयास से ही सकता है। सरकारी कर्मचारियों के लिए धार्मिक और नैतिक शिक्षा, भारतीय साहित्य एवं विभिन्न भाषाओं का अध्ययन तथा साधारण ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए फ़ोर्ट विलियम कॉलेज एक उपयुक्त साधन है।

किंतु वेलेज़ली के अन्य सभी विचारों का समर्थन करते हुए लॉर्ड टेनमथ उनके कुछ विचारों से सहमत नहीं थे। प्रथम, भारतीय रीति-रस्मों और आचार-विचारों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए लॉर्ड टेनमथ कॉलेज में अध्ययन करने की अपेक्षा जनता के साथ संपर्क बढ़ाना अधिक उपयोगी समझते थे। दूसरे, लॉर्ड टेनमथ बंगाल, मद्रास और बंबई के विद्यार्थियों के लिए केवल एक ही केंद्रीय शिक्षा-संस्था के पक्ष में नहीं थे। आयोजना की सफलता के संबंध में उनका मत था कि यह बहुत कुछ गवर्नर-जनरल तथा कॉलेज के अन्य पदाधिकारियों की सतर्कता, सच्ची लगन, अनवरत परिश्रम और देख-रेख पर निर्भर है। अच्छा तो उन्होंने यही समझा कि कॉलेज के उद्देश्यों की यथेष्ट पूर्ति तक मार्क्विस वेलेज़ली भारतवर्ष में ही रहते। उस समय उनके सब संदेह दूर हो जाते। क्योंकि यहाँ कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो कॉलेज का काम करने से जी चुराते। अंत में वेलेज़ली की आयोजना के सब पहलुओं पर गंभीरता-पूर्वक विचार करते हुए लॉर्ड टेनमथ ने उनकी प्रतिज्ञा की अत्यंत प्रशंसा की। ऐसे एक अनुभवी शासक का सहयोग प्राप्त कर वेलेज़ली को बड़ा सुख हुआ।[१]

सैनिक दृष्टि से कॉलेज जैसी एक संस्था की आवश्यकता बताते हुए कैप्टेन राबर्टसन ने रेवरेंड क्लौडियस ब्यूकैनैन के पास एक पत्र में लिखा था :

"मेरे तुच्छ विचार में इस संस्था की स्थापना करने में सरकार का प्रधान उद्देश्य नवयुवक अफ़सरों को हिंदुस्तानी और फ़ारसी भाषाओं की शिक्षा देने के साथ-साथ जिन सैनिकों का उन्हें नेतृत्व करना है उनके चरित्र, प्रकृति, रीति-रस्मों तथा धार्मिक विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त कराना है। इस बात की आवश्यकता का प्रत्येक विचारवान व्यक्ति अनुभव करेगा। और विशेष रूप से उस समय जब कि

[१]वही, पृ० ११ २

नवयुवक कर्मचारी इस देश में आते ही सेना में अपने अपने पदों पर नियुक्त कर दिए जाते हैं और उनकी तरक्की भी हो जाती है।

"ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार ने नवयुवकों को देर से अपने-अपने पदों पर नियुक्त करने की आवश्यकता का अनुभव किया है, और साथ ही एक ऐसी संस्था की स्थापना करने के लिए प्रस्तुत ही नहीं, चिंतित भी है। वह एक ऐसी प्रणाली अपनाना चाहती है जो नवयुवकों को आगे और भी सुधार का अवसर देकर अपनी-अपनी सेना में पहुँच कर यश संचित करले और जिस कार्य पर नियुक्त हों उसे भली भाँति संपादित करने योग्य बन सकें।"[1]

वेलेज़ली की आयोजना का समर्थन करने वाले अनुभवी और सुयोग्य शासकों में वारेन हेस्टिंग्ज के विचार ध्यान देने योग्य हैं :—

"लगभग तीस वर्ष पूर्व मैंने ऑक्सफ़र्ड विश्वविद्यालय में फ़ारसी भाषा की शिक्षा देने के संबंध में एक प्रस्ताव रक्खा था और उसकी छपी हुई प्रतियाँ कंपनी के संचालकों के पास भेजी थीं। विश्वविद्यालय के चांसलर महोदय ने उसकी प्रशंसा की थी। स्वर्गीय डॉ० जॉनसन ने उसके तै हो जाने पर नियमावली प्रस्तुत करने का वचन दिया था। लेकिन प्रोत्साहन न मिलने पर उसका विचार छोड़ दिया गया। इस बात का ज़िक्र कर मैं केवल यही दिखाना चाहता हूँ कि प्रस्तुत विषय पर मैं जो कुछ लिख रहा हूँ वह क्षणिक भावावेश का परिणाम नहीं है, वरन् यह मेरी बहुत समय से चली आ रही और निश्चित धारणा का फल है। और न मैं लॉर्ड वेलेज़ली से पूर्णतया सहमत होने का इससे अधिक पुष्ट प्रमाण ही दे सकता हूँ कि यद्यपि हमारे साधन भिन्न थे, तो भी सैद्धांतिक रूप से उनकी आयोजना का उद्देश्य बहुत पहले मेरा अपना ही था। मैंने इस बात की सिफ़ारिश की थी कि नौकरी मिल जाने पर कंपनी के राइटरों को यूरोपीय ज्ञान की शाखाओं और ऑक्सफ़र्ड विश्वविद्यालय में फ़ारसी भाषा का अध्ययन करने के लिए एक निश्चित समय के लिए रोक लेना चाहिए। श्रीमान् (वेलेज़ली) ने एक बड़े पैमाने पर वही आयोजना प्रस्तुत की है, और बंगाल उसका केंद्र बनाया है। यह तो और भी अच्छा है। क्योंकि बड़ी अवस्था पर जाने की अपेक्षा अल्पवयस्क विद्यार्थी अधिकारियों की पूरी देख-रेख में रहने, जलवायु से अभ्यस्त होने और समाज के रहन-सहन से परिचित होने का लाभ उठा सकते हैं। भाषाएँ, विशेष रूप से सर्वसाधारण में प्रचलित भाषाएँ, कम उम्र में सबसे जल्दी सीखी जा सकती हैं, क्योंकि इस अवस्था में उनके उच्चारण सीखने और उन के विचार समझने और स्मरण रखने में बड़ी आसानी पड़ती है।"[2]

लॉर्ड टेनमथ और वारेन हेस्टिंग्ज जैसे अनुभवी शासकों का समर्थन ही वेलेज़ली आयोजना का महत्त्व घोषित करने के लिए यथेष्ट था। परंतु इतने पर भी वेलेज़ली ने

---

[1] वही, पृ० २०२-२०५

[2] 'दि मार्क्विस वेलेज़ली' नामक ग्रंथ से उद्धृत

इँगलैंड के मंत्रि-मंडल तथा भारतीय शासन से संबंध रखने वाले अन्य सुयोग्य व्यक्तियों में अपने 'नोट्स', विधान इत्यादि वितरित कर कॉलेज-स्थापना के पक्ष में सम्मतियों का संग्रह किया। और अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रायः सभी ने उनके साथ सहयोग प्रकट किया। ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भी अपने धर्म-प्रचार की दृष्टि से उनकी आयोजना की सराहना की।[1] किंतु, १८०१ की अठारहवीं पार्लामेंट के पाँचवें अधिवेशन की ईस्ट इंडिया हाउस डिबेट में कॉलेज-संबंधी जो विवाद हुआ उससे कोर्ट के डाइरेक्टरों और कुछ प्रोप्राइटरों के रुख़ का कुछ और ही पता चलता है। उस समय जो विवाद हुआ था वह इस प्रकार है। लॉर्ड किनेअर्ड ने कॉलेज का ज़िक्र करते हुए कहा था : यह विषय कंपनी के लिए अत्यंत महत्त्व का है क्योंकि बड़े पैमाने पर बनाए जाने के कारण इसमें बहुत रुपया ख़र्च होगा। यह विषय अभी कोर्ट के डाइरेक्टरों के विचाराधीन है। आशा की जाती है कि वे इसे उचित रूप से और दूरदर्शिता के साथ तै करेंगे। और इस संबंध में प्रोप्राइटर उनका साथ देंगे। इस पर श्री हिंचमैन ने उठ कर कहा : मालूम होता है अन्य प्रोप्राइटरों की अपेक्षा आपको भी इस संबंध में जानकारी अधिक है, नहीं तो इस विषय में आप अपना कोई मत निश्चित न करते। मार्किस वेलेजली के विरुद्ध झूठी बातें फैलाना ठीक नहीं। कॉलेज के साथ-साथ और बातों के आधार पर मार्किस को अपने शासन में अपव्यय का दोषी ठहराया जा रहा है। ऐसे व्यक्ति पर इस प्रकार से दोषारोपण नहीं करना चाहिए। राष्ट्र और कंपनी के प्रति उनकी महान् सेवाओं से आभारी होकर हमें उनके इस अप्रत्यक्ष विरोध से उनकी रक्षा करनी चाहिए। यदि गवर्नर-जनरल से असंतुष्ट होने का कोई कारण है तो उसे साफ़ साफ़ कहना चाहिए, ताकि उसका उचित उत्तर दिया जा सके। तब सभापति ने उठ कर कहा कि यह विषय अभी कोर्ट के डाइरेक्टरों के विचाराधीन है, परंतु अभी वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके।[2]

कोर्ट के डाइरेक्टरों का विरोधी रुख़

चार्ल्स थियोफ़िलस मेटकाफ़ १८०१ की पहली जनवरी को भारतवर्ष आए थे। उस समय कॉलेज अव्यवस्थित अवस्था में था।[3] इसलिए एक ओर तो कॉलेज का कार्य सुचारु रूप से संचालित करने के लिए वेलेज़ली ने १० अप्रैल, १८०१ को कॉलेज के विधान का प्रथम परिच्छेद[4] (फ़र्स्ट चैप्टर) स्वीकृत किया, उधर दूसरी ओर कंपनी के संचालकों की एक बड़ी संख्या उनके विरुद्ध षड्यंत्र रच रही थी। ऐसी हालत में उनका शासन-भार ग्रहण किए रहना कठिन ही था। इसलिए १ जनवरी, १८०१ को उन्होंने पद-त्याग करने की सूचना कोर्ट के डाइरेक्टरों के पास भेज दी और दिसंबर, १८०२ या जनवरी

---

[1] १४ सितंबर, १८०१ का चार्ल्स ग्रांट का वेलेज़ली के नाम पत्र। देखिए, आर० आर० पीअर्स : 'मेम्वायर्स', पृ० २६७

[2] 'एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर', १८०१, लंदन, १८०२, पृ० २११-२१२

[3] जॉन विलियम के : 'लाइव्ज़ ऑव इंडियन ऑफ़िसर्स', जि० १, लंदन, १८६७ पृ० २८० १८१

[4] 'एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर, १८०१ लंदन १८०२ पृ० ११ (स्टेट पेपर्स)

१८०३ मे यूरोप के लिए रवाना हो जाने का विचार प्रकट किया।[1] किंतु राजनीतिक एवं सामरिक घटना-चक्र के कारण कोर्ट ने उनसे जनवरी, १८०४ तक भारत मे रहने की प्रार्थना की।[2] इस पर वेलज़ली ने कानपुर से फिर १० जनवरी, १८०२ को राइट ऑनरेबुल हेनरी ऐडिंगटन (फ़र्स्ट लॉर्ड ऑव ट्रेज़री) के नाम एक पत्र लिखा और कहा कि भारत में रहने की जो अवधि मै अपने पहले पत्र में निश्चित कर चुका हूँ उससे अधिक यहाँ ठहरना मेरे लिए अब असभव है। जब कोर्ट का मुझमें अविश्वास बढ़ता जा रहा है और वह मेरे स्थानीय शासन-प्रबध में हस्तक्षेप करने लगा है, साम्राज्य-हित के लिए बनाई गई मेरी आयोजनाओं को जब उसने रद्द कर दिया है, तब मेरा यहाँ ठहरना शासन-नीति के विरुद्ध है। और १३ मार्च, १८०२ को उन्होने फिर बनारस से अपना पद-त्याग करने का निश्चय लिख भेजा।[3] इसके थोड़े ही दिन बाद वेलज़ली के आत्म-सम्मान पर कुठाराघात हुआ। कोर्ट का २७ जनवरी, १८०२ का लिखा हुआ एक पत्र उन्हें कलकत्ते में मिला जिसमे उनको एकदम कॉलेज तोड़ देने की आज्ञा दी गई। आख़िर वेलेज़ली का डर सच साबित हुआ। पत्र के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जाते है:—

कॉलेज तोड़ देने के लिए कोर्ट का आज्ञापत्र

"फ़ोर्ट विलियम में एक कॉलेज स्थापित करने के संबंध में हमने मार्क्विस वेलेजली की आयोजना तथा कारणो पर काफ़ी विचार किया है। यद्यपि हमें मार्क्विस की आयोजना का न्यायोचित मूल्य मान्य है जो उदार और उच्च भावना से ओतप्रोत और महान् योग्यता से सयुत है; तो भी कपनी की वर्तमान परिस्थिति में जब कि भारत में उस पर अभूतपूर्व क़र्ज़ लदा हुआ है और जब कि धनाभाव वहाँ इतना है कि जिसका पहले कभी अनुभव नही किया गया, और जिसके फल-स्वरूप कंपनी की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचा है, और बहुत से काम या तो घटा दिए गए हे या बिलकुल ही बन्द कर दिए गए हैं—हम, अपने कर्तव्य का ध्यान रखते हुए, एक संस्था की तुरत स्थापना पर जिसके कुछ अश चाहे हमें पसंद ही हो, अपनी सहमति प्रकट कर स्वीकृति नहीं दे सकते। सस्था की स्थापना से कपनी के व्यय का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। यह धन कपनी के हितसाधक किसी अन्य कार्य मे लगाया जा सकता है।

"इस प्रकार के बड़े-बड़े काम उठाने से पहले खर्च का लेखा लगाने की रीति चली आई है। इस कार्य के लिए यह उपयुक्त समय था ताकि हम उसके खर्च का ठीक-ठीक अनुमान लगा लेते।

"हम को बिना सूचित किए कॉलेज की स्थापना करने के संबध में गवर्नर-जनरल ने जो कारण दिए हैं उन पर हमने विशेष ध्यान-पूर्वक विचार किया है। उनकी भावना प्रशसनीय हैं। लेकिन एक स्थापित प्रणाली से विमुख होने की आज्ञा हम कभी नही दे सकते। इस प्रवृत्ति मे इस देश मे वैधानिक रूप से संस्थापित सत्ता

---

[1] 'वेलेज़ली डेस्पैचेज़', पत्र नं० १६६, पृ० ६१४-६१६

[2] वही, जि० २, भूमिका, पृ० २५

[3] वही, भूमिका पृ० १ २४

को ठेस पहुँचती है। क्योंकि एक बार जब काम शुरू हो जाता है तो, चाहे सरकार को उसमें विश्वास हो या अधिक खर्च होता हो, ऐसे मामलों में फिर सभी महत्त्वपूर्ण अवसरों पर शासन-सत्ता का लोप हो जाता है। इसलिए इस नियम का पालन करना भविष्य में आपका सर्वप्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए।

"गवर्नर-जनरल की आयोजना पर कोई विशेष वाद-विवाद न कर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि हमारी सम्मति में कंपनी की वर्तमान अवस्था और परिस्थिति में यह वश से बाहर की बात है।

"दिसंबर, १७९८ में डॉ० गिलक्राइस्ट ने ज्ञान की शिक्षा के लिए एक सेमिनरी संस्था[1] स्थापित करने का प्रस्ताव रक्खा था। उसी के सिद्धांतों के आधार पर बड़े पैमाने पर एक संस्था स्थापित करने से हमारी सम्मति में उन बहुत से उपयोगी कार्यों पर प्रभाव पड़ेगा जिनकी आशा गवर्नर-जनरल अपनी प्रस्तावित संस्था से करते हैं। इस सेमिनरी में पढ़ने वाले सज्जनों की जून, १८०० की परीक्षा के फल से हमारी यह धारणा और भी पक्की हो जाती है। विद्यार्थियों की हिंदुस्तानी और फ़ारसी भाषाओं के ज्ञान के संबंध में परीक्षा एक कमेटी के सामने हुई थी जो इस कार्य के लिए नियुक्त की गई थी। उनके भाषा-संबंधी ज्ञान से कमेटी ने पूर्ण संतोष प्रकट किया था। यहाँ तक कि कुछ को तो कमेटी की आशा से कहीं अधिक सफलता मिली थी। इसलिए इस संस्था की पुनर्स्थापना पर विचार करने के लिए हम आपको आज्ञा देते हैं। क्योंकि हमारी सम्मति में कंपनी के बिना किसी अधिक खर्च से इसका संचालन किया जा सकता है।

"७ मई, १८०० के पत्र में हमने श्री गिलक्राइस्ट द्वारा प्रस्तावित संस्था और गवर्नर-जनरल का उसे विस्तृत रूप देने का विचार जरूर पसंद किया था, किन्तु हमें यह पता नहीं था कि श्रीमान् का विचार एक ऐसी वृहत् आयोजना प्रस्तुत करने का है जिसका परिचय उन्होंने अपनी अगस्त, १८०० की मिनिट्स में दिया है। उस समय हमारा मतलब केवल उन सिद्धांतों को स्वीकृति देना था जिनके आधार पर प्रचलित हिंदुस्तानी, या बोलचाल की बोली का अधिकाधिक और साधारण, और प्राचीन फ़ारसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए श्री गिलक्राइस्ट की सेमिनरी का निर्माण हुआ था। इन भाषाओं के अध्ययन के साथ-साथ गवर्नर-जनरल का सेमिनरी में भारतीय प्रदेशों के शासन के लिए सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत क़ायदे-क़ानूनों की शिक्षा देने का विचार भी मालूम होता था। इन क़ायदे क़ानूनों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना हम कर्मचारियों के लिए कर्त्तव्य-पालन करने की दृष्टि से उपयोगी ही नहीं वरन् अत्यंत आवश्यक समझते हैं, विशेष रूप से उस समय जब कि उन्होंने अपने भावी जीवन-क्रम के अनुकूल यूरोप में शिक्षा प्राप्त की हो।"[2]

---

[1] कोर्ट के डाइरेक्टरों ने इस संस्था को 'गिलक्राइस्टस् सेमिनरी' के नाम से पुकारा है वास्तव में इसका नाम 'ओरिएंटल सेमिनरी' था

तत्पश्चात् कोर्ट के डाइरेक्टरों ने केवल हिंदुस्तानी, फ़ारसी और बँगला भाषाओं और भारतीय प्रदेशों के सुशासन के लिए पास किए गए क़ायदे-क़ानूनों के पूर्ण ज्ञान और यूरोपीय शिक्षा पर ज़ोर दिया है। उनका विचार था कि इन्हीं गुणों के आधार पर उनके कर्मचारी जनसाधारण और राज्य का हित-साधन करने में समर्थ हो सकेंगे। उन्होंने अपने पत्र में गणित के ज्ञान का विशेष रूप से उल्लेख किया है। इस प्रकार वेलेज़ली की आयोजना पर विचार करते हुए उन्होंने निश्चय किया :

> "चूँकि हमारा इस समय मार्क्विस वेलेज़ली द्वारा प्रस्तावित नई कॉलेज-संस्था के निर्माण के स्थान पर श्री गिलक्राइस्ट की सेमिनरी की पुनर्स्थापना करने का विचार है, इसलिए इस पत्र के मिलने के बाद इस संबंध में जितने भी ख़र्च हों वे सब बंद कर दिए जायँ और इसके साथ दूसरे अहातों से बुलाए गए विद्यार्थी भी जल्दी से जल्दी वापिस भेज दिए जायँ। और एक ऐसी आयोजना को जन्म देने एवं उसकी व्यवस्था करने के लिए, जो कंपनी की अच्छी आर्थिक परिस्थिति में अत्यंत गंभीरता-पूर्वक विचार करने योग्य थी, मार्क्विस वेलेज़ली की सार्वजनिक भावना और कुशाग्र बुद्धि की प्रशंसा किए बिना हम यह विषय समाप्त नहीं कर सकते।"[१]

कोर्ट के आज्ञा पत्र की अनेक विद्यार्थियों में ख़ूब चर्चा फैली जिससे अधिकारियों को आशंका हुई कि कॉलेज के तुरंत स्थगित होने की बात सुन कर नवयुवक विद्यार्थियों का कहीं अनुशासन शिथिल न हो जाय और वे फिर कहीं प्रलोभनों और कुव्यसनों में न पड़ जायँ। क्लॉडियस ब्यूकैनैन, वाइस-प्रोवोस्ट, ने शीघ्र ही १४ जून, १८०२ को उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने बताया : कोर्ट के डाइरेक्टरों ने मार्क्विस वेलेज़ली की आयोजना की अत्यंत सराहना की है। उन्हें केवल उसके व्यय के संबंध में आपत्ति है। वे केवल दो या तीन भाषाओं के अध्ययन के अतिरिक्त और बाकी सब ख़र्च घटा कर कॉलेज छोटे पैमाने पर चलाना चाहते हैं, किंतु कॉलेज एकदम स्थगित कर देने के भयावह परिणाम से गवर्नर-जनरल महोदय भली प्रकार परिचित हैं। उन्हें आशा है कि कोर्ट के डाइरेक्टर उनकी आयोजना स्वीकार कर लेंगे। इस बीच में कॉलेज के पूर्णतया स्थापित हो जाने तक दूसरे अहातों से विद्यार्थियों का आगमन रोकने के लिए उन्होंने कॉलेज ३१ दिसंबर, १८०३ को स्थगित करने का निश्चय किया है। उस समय तक संस्था अपने वर्तमान रूप में चलती रहेगी और प्रस्तुत विधान समान रूप से लागू रहेगा। विधान के अनुसार १७९९ और १८०० में बंबई और मद्रास से आए हुए विद्यार्थी १८०२ के अंत में और १८०१ में आए हुए विद्यार्थी १८०३ के अंत में कॉलेज छोड़ने के अधिकारी होंगे।[२]

कोर्ट के आज्ञापत्र का प्रभाव

ब्यूकैनैन के इस पत्र का कुछ अच्छा प्रभाव अवश्य पड़ा, किंतु, जैसा कि वाइकाउंट वैलेंशिया कृत 'वौयेजेज़ ऐंड ट्रैवेल्स टु इंडिया, सीलोन, दि रेड सी, ऐबीसीनिया ऐंड ईजिप्ट इन दि ईयर्स १८०२, १८०३, १८०४, १८०५ ऐंड १८०६' से

ज्ञात होता है, कॉलेज के विद्यार्थियों में कुव्यसनों और कुप्रवृत्तियों का प्रचार बढ़ता ही गया। कोर्ट के आज्ञा-पत्र से कॉलेज के अनुशासन पर जो वज्रपात हुआ उससे विद्यार्थियों में घुड़दौड़ में दाव लगाने, उधार लेने की प्रवृत्ति आदि कुव्यसन बढ़ने लगे। वेलेज़ली का विचार था कि गिलक्राइस्ट वाली सेमिनरी जैसी संस्थाओं से विद्यार्थियों के चरित्र-सुधार का एक महत्त्वपूर्ण कार्य कदापि नहीं किया जा सकता। कोर्ट ने उनकी आशाओं के विरुद्ध उनकी संस्था गिलक्राइस्ट वाली सेमिनरी के पद पर ला खड़ी कर दी। परिणाम वही हुआ जो होना था और जिसके भय से और जिसकी त्रुटियों पर भली प्रकार सोच-विचार कर वेलेज़ली ने अपनी बृहत् आयोजना प्रस्तुत की थी। कोर्ट के आज्ञा-पत्र के बाद वेलेज़ली ने ३१ दिसंबर, १८०३ तक कॉलेज का पूर्ववत् संचालन करने का निश्चय किया। इसी बीच में उन्होंने ५ अगस्त, १८०२ को कोर्ट के आज्ञा-पत्र का एक अत्यंत विस्तृत उत्तर भेजा। कोर्ट के आज्ञा-पत्र के सामने मार्क्विस वेलेज़ली के इस पत्र की आवश्यकता नहीं थी। तो भी साम्राज्य के हित की दृष्टि से और इस आशा से कि संभव है वे अपनी जबरदस्त तर्क-प्रणाली से कोर्ट द्वारा अपनी आयोजना स्वीकार कराने में सफल हो सकें, उन्होंने पत्र लिखने का निश्चय किया।

आर्थिक कठिनाई का उत्तर देते हुए मार्क्विस वेलेज़ली ने अपने पत्र में लिखा है: अब कंपनी के ऊपर कर्ज़ बहुत थोड़ा रह गया है। पिछले नौ महीने के हिसाब से कोर्ट के डाइरेक्टरों को और भी संतोष हो जायगा। साथ ही आमदनी के

वेलेज़ली का उत्तर

ज़रिये भी बढ़ गए हैं। इन सब बातों से धनाभाव के विषय में चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। कंपनी की प्रतिष्ठा भी अब बढ़ती जा रही है। बंगाल, मद्रास और बंबई में जो रुपया खर्च हो रहा है उससे लाभ ही लाभ है। वहाँ रुपये की बचत करना ठीक न होगा। भारतीय राजनीतिक परिस्थिति भी इस समय सुधरी हुई है। अतः घटने के स्थान पर कंपनी का कोष बढ़ता ही जायगा। कॉलेज पर खर्च किए गए धन के उपयोग का अनुमान संस्था के उद्देश्यों और उससे होने वाले अतीव लाभ से लगाया जा सकता है। धन का इससे अच्छा उपयोग और कोई नहीं हो सकता। संस्था-संबंधी प्रारंभिक व्यय अवश्य अधिक होगा। किंतु बाद को यह व्यय भी कम हो जायगा। १८०२-३ के वर्ष में चार लाख व्यय का अनुमान है। भविष्य में इससे अधिक व्यय कभी न होगा। ३१ अक्तूबर, १८०१ तक के प्रथम वर्ष का व्यय छः लाख तीस हज़ार रुपया है। इसमें से कॉलेज-स्थापना से पहले के बहुत से खर्च कम हो जाएँगे। मुंशियों का वेतन और राइटर्स बिल्डिंग्स का किराया, जो लगभग सत्तर हज़ार रुपया होता है, कम हो जाने से कुल खर्च तीन लाख तीस हज़ार रुपया रह जाता है। तीन सौ सिक्का रुपए मासिक राइटरों का भत्ता दिया जाता है। मद्रास और बंबई के राइटरों को कुछ अधिक भत्ता मिलता है। लेकिन बंगाल के राइटरों को कम भत्ता मिलने से यह खर्च बराबर हो जाता है। मेरे ३० जुलाई, १८०१ वाले पत्र के अनुसार यदि अलग-अलग मद्रास और बंबई भेजने के स्थान पर सब राइटरों को सीधा कलकत्ते भेज दिया जाय तो आने जाने का खर्च भी कम हो सकता है कॉलेज का रोज़मर्रा का खर्च गवर्नर द्वारा लगाए गए कुछ नए करों से निकल सकता

। १८०१-२ में इन नए करों से बारह लाख सत्तर हजार रुपए की आय हुई है। अगले वर्ष में चौदह लाख की आशा की जाती है। यदि कर वसूल करने का प्रबंध ठीक तरह से किया जाय तो आय और भी बढ़ सकती है। ८ जुलाई, १८०२ को इस ओर प्रयत्न किया भी गया है। इसलिए कंपनी के बंगाल-कोष से कुछ और अधिक व्यय नहीं होता। नवीन कर-पद्धति के असफल हो जाने से भी कॉलेज के लिए धनाभाव का अनुभव न होगा। उसके लिए अन्य बहुत से साधन हमारे पास मौजूद हैं। कॉलेज के चलते रहने या टूटने से कंपनी के रुपयों की लागत पर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। अब केवल सोचने की बात यह है कि नए साधनों से प्राप्त रुपयों में से तीन लाख तीस हजार रुपया या तो कॉलेज के ऊपर खर्च किया जाय या कोष में जमा कर दिया या 'सिंकिंग फ़ंड' में चला जाय। मेरे विचार से यह धन यदि कॉलेज पर खर्च किया जाय तो साम्राज्य को बहुत लाभ होगा। आगे के लिए तीन खर्च रह जाते हैं :—

१. प्रोफ़ेसरों की संख्या बढ़ाना;
२. प्रोफ़ेसरों तथा अन्य पदाधिकारियों की पेंशन, और
३. स्थायी रूप से कॉलेज की एक इमारत।

मैं पूर्वीय साहित्य और कायदे-क़ानूनों को कॉलेज में अध्ययन का मुख्य विषय बनाना चाहता हूँ। एक ही प्रोफ़ेसर कई विषय पढ़ावेगा। प्रोफ़ेसरों की अवस्था का विचार किया जाय तो पेंशन आदि के संबंध में भी चिंता की कोई बात नहीं है। परंतु इसमें समयानुकूल परिवर्तन भी किए जा सकते हैं। इमारत बनवाने के लिए ज़मीन खरीद ली गई है किंतु उसका बनवाना अभी शुरू नहीं हुआ। उसका शुरू का खर्च बहुत अधिक नहीं होगा। गार्डेन रीच में कॉलेज की अपनी इमारत होने से बहुत लाभ होगा। जो खर्च होगा वह पाँच या छः साल में बाँट दिया जायगा। स्वर्गीय जनरल मार्टिन (लखनऊ) से मिला हुआ तीन लाख रुपया कोष में तुरत जमा भी कर दिया जायगा।

यहाँ तक मार्क्विस वेलेज़ली ने केवल यही दिखलाया है कि कॉलेज कंपनी के लिए एक आर्थिक भार कभी प्रमाणित नहीं हो सकता, जिसका कोर्ट के डाइरेक्टरों को विशेष भय था।

डाइरेक्टरों द्वारा उल्लिखित गिलक्राइस्ट की सेमिनरी के संबंध में मार्क्विस वेलज़ली का कहना है : कोर्ट ने अपने १२ मार्च, १८०२ के पत्र में मद्रास और बंबई में संस्थाएँ स्थापित करने की इच्छा प्रकट की थी। परंतु भाषा-विषयक अध्ययन की सुविधा, मितव्ययिता, प्रोफ़ेसरों की संख्या, शासन और सुव्यवस्था की दृष्टि से कलकत्ता, मद्रास और बंबई में अलग-अलग संस्थाएँ स्थापित करने के बजाय कंपनी के समस्त नवागत कर्मचारियों के लिए कलकत्ते में केवल एक केंद्रीय संस्था अधिक लाभदायक सिद्ध होगी। अलग-अलग संस्थाएँ स्थापित करने से एक ही कार्य के लिए तिगुना खर्च होगा। इतना ही नहीं यदि हिसाब लगा कर देखा जाय तो एक-एक संस्था का खर्च फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के पूरे खर्च से कहीं अधिक होगा। और फिर गवर्नर-जनरल की २१ दिसंबर, १७९८ की मिनिट्स में प्रत्यक्ष रूप से यह प्रकट कर दिया गया था कि गिलक्राइस्ट वाली आयोजना को भविष्य में विस्तृत रूप दिया जायगा प्रस्तुत आयोजना उससे कहीं अधिक

परिपक्व, नियमबद्ध और व्यवस्थित है सिविलियन कर्मचारियों की शिक्षा क्षेत्र में गिलक्राइस्ट महोदय की सेवाएँ स्मरणीय है। किंतु उनका कार्य इस संस्था की स्थापना के दृष्टिकोण से प्रारंभिक मात्र था। कोर्ट ने अपने ७ मई, १८०० के पत्र में २१ दिसबर, १७६८ वाली मिनिट्स के सिद्धातों को सराहा था और एक बड़ी आयोजना प्रस्तुत करने की आवश्यकता स्वीकार की थी। हो सकता है कोर्ट का आशय समझने में मुझे कुछ कठिनाई हुई हो। किंतु कोर्ट का ध्येय कॉलेज के अतिरिक्त और किसी संस्था से पूरा नहीं हो सकता। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में ही विद्यार्थियों की उचित देखरेख और उन पर कठोर अनुशासन रक्खा जा सकता है। केवल गिलक्राइस्ट महोदय की शिक्षा से यह क्षेत्र अछूता ही पड़ा रह जाता। परन्तु ये बातें साम्राज्य के हित के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस समय गिलक्राइस्ट महोदय अपनी संस्था में पढ़ाते थे उस समय शिक्षा ही शिक्षा थी, अनुशासन नहीं था। क़ायदे-क़ानूनों का ज्ञान नहीं था और ईसाई धर्म के महान् सिद्धातों का पालन नहीं था। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज ने इन सभी बातों पर ध्यान रक्खा जाता है। इतने कठोर अनुशासन के बिना अँगरेज जाति के चरित्र पर कलक का टीका लगने की आशका है। कोर्ट यदि इन सब बातों पर गंभीरतापूर्वक विचार करे तो उसे ज्ञात होगा कि फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की केंद्रीय संस्था ही सिविलियन कर्मचारियों का सुधार कर सकती है। इस संस्था की स्थापना मैंने अपने निजी अनुभव से की है। कोर्ट की आयोजना को व्यावहारिक रूप देने में लाभ की अपेक्षा हानि होने की संभावना अधिक है। सेमिनरी फिर से स्थापित कर देने और अनुशासन के नियम बरतने से खर्च में किसी प्रकार की कमी न पड़ेगी। वहाँ भी वे सब बातें करनी होंगी जो इस समय हम फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में कर रहे हैं। अस्तु, कॉलेज को तीन सेमिनरियों में बिभाजित करने से समस्त कार्य अव्यवस्थित और भयावह हो जायगा और खर्च तिगुना पड़ेगा।

पूर्वीय भाषाओं और साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के विद्यार्थियों ने जो उन्नति की है वह कपनी के राज्यातर्गत अभूतपूर्व है। कई उपयोगी ग्रंथ भी प्रकाशित हो चुके हैं। पूर्वी विद्वान् स्वेच्छा और उत्साह के साथ हमें हर प्रकार की सहायता दे रहे हैं। कॉलेज की महानता और प्रसिद्धि के कारण ही बार्लो, हारिंगटन, एडमॉन्स्टन, ककपैट्रिक, कोलब्रुक आदि विद्वान् अपना सहयोग प्रदान कर रहे हैं। यदि कॉलेज सेमिनरियों में विभाजित कर दिया गया तो ये विद्वान् इस ओर आकृष्ट न होंगे। विद्यार्थियों में स्पर्धा बढ़ना भी कॉलेज के लिए शुभ लक्षण है। यहाँ मैं आप ही के हित की एक बात का उल्लेख कर देना चाहता हूँ। भारत में आने पर नवयुवक सिविलियन कर्मचारियों में मैंने जिन कुप्रवृत्तियों और कुव्यसनों का प्रचार देखा था उनमें से अनेक का निवारण तो हो भी चुका है। आपके जो नवागत कर्मचारी कुव्यसनों में फँस कर अपनी जाति का सिर नीचा करते थे, वे ही अब अपने परिश्रम, मितव्ययिता, नैतिकता, धार्मिकता, ज्ञानोपार्जन आदि गुणों से अपना और अपने देश का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं। मुझे यह कहने में तनिक भी सकोच नहीं कि कॉलेज के वर्तमान विद्यार्थी कोई भी उलझी हुई शासन-व्यवस्था सँभालने योग्य हो सकेंगे। इस समय जब कि मद्रास और बंबई का शासन-प्रबंध बढ़ता और पेचीदा होता जा रहा है, कॉलेज की शिक्षा ही कंपनी

कर्मचारियों को उसका भार ग्रहण करने योग्य बना सकेगी सब को समान शिक्षा देने से सरकार को अत्यंत लाभ पहुँचेगा।

जिन सिद्धांतो के आधार पर कॉलेज स्थापित किया गया है उन सिद्धातों की सराहना स्वयं कोर्ट ने अपने २७ जनवरी, १८०२ के पत्र में की है। उनकी आपत्तियों का मैंने संतोषजनक उत्तर देने का प्रयत्न किया है। मैंने जो कुछ कहा है उसके ठीक होने में मुझे पूर्ण विश्वास है। इसलिए मैं चाहता तो इस समय कोर्ट की आज्ञा शिरोधार्य न कर इस महत्त्वपूर्ण विषय पर फिर से विचार करने के लिए मैं कोर्ट को लिख देता। मेरे कर्त्तव्य ने मुझे यह सुझाया भी था। किंतु अपना और कोर्ट का विचित्र संबंध और परिस्थिति देख कर मैंने कोर्ट की आज्ञानुसार सभी बातें पूरी करने का निश्चय कर लिया है। परिषद् की सम्मति से २४ जून, १८०२ को मैंने कॉलेज तोड़ने के संबंध में आज्ञा-पत्र प्रकाशित कर दिया है।

परंतु चूँकि विद्यार्थियो, प्रोफ़सरो और देशी अध्यापकों की आशाओ, उन के भविष्य और उनकी कुशलता और कॉलेज का घनिष्ठ संबध है, चूँकि कॉलेज के एकदम बंद कर देने से विद्यार्थियों के चरित्र और अनुशासन पर अत्यंत बुरा प्रभाव पड़ेगा (ब्यूकैनेन के १४ जून के पत्रानुसार वेलेज़ली का विचार ठीक निकला), चूँकि गिलक्राइस्ट वाली सेमिनरी की पुनर्स्थापना करने और विद्यार्थियो मे अनुशासन बनाए रखने के लिए कॉलेज के वर्तमान पदाधिकारियों की ज्यों-की-त्यो आवश्यकता पड़ेगी, जिससे खर्च मे किसी प्रकार की भी कमी न होगी, और चूँकि अनेक सुयोग्य विद्यार्थियों के अध्ययन और पाठ्य-क्रम के प्रवाह को अटूट बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है, तथा कंपनी के हितो की दृष्टि से अन्य अनेक विषयो में सोच-समझ कर काम करना है, इसलिए दिसंबर, १८०३ तक कॉलेज अपने वर्तमान रूप मे स्थित रहेगा।

देशी विद्वानो को एकदम कॉलेज से अलग कर देने में कंपनी की बड़ी बदनामी है। ये लोग जब अपने-अपने देश लौट कर जाएँगे तो कहेंगे कि ब्रिटिश सरकार ज्ञान और सद्गुणों की वृद्धि के लिए स्थापित एक संस्था का खर्च न सह सकी और धनाभाव के कारण हमने उनके साथ विश्वासघात किया। वे कहेंगे कि हमारी हालत इतनी बिगड़ गई है कि हम सिविलियन कर्मचारियों को देशी जनता के हितकारी सुशासन की शिक्षा देने वाली संस्था न चला सके।

इन सब पहलुओं और सिद्धातो को दृष्टि मे रखते हुए, कंपनी के नाम एवं विद्यार्थियों, अध्यापकों और प्रोफ़ेसरों की सुविधा तथा अन्य अनेक विषयो पर विचार करते हुए मैंने निश्चित किया है कि सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा प्रकाशित आज्ञा-पत्र पर ३१ दिसंबर, १८०३ तक कोई कारवाई न की जाय।

इस बीच मे कॉलेज को धीरे-धीरे बंद करने के संबंध मे सब प्रबंध कर लिए जाएँगे। साथ ही कोर्ट को भी इस विषय पर फिर से विचार करने के लिए पर्याप्त समय मिल जायगा।

इन सब बातों से अगले वर्ष कॉलेज का खर्च बहुत कम हो जायगा। नए विद्यार्थियों का तो अब दाखिला नहीं होगा, किन्तु बंगाल प्रांत में नियुक्त राइटरों के

कॉलेज के बन्द होने की अवधि तक अपना दाखिला कराने की व्यवस्था मैंने जारी रक्खी है।

फिर से सोच-विचार करने पर भी यदि कोर्ट ३१ दिसंबर, १८०३ से पहले ही कॉलेज शीघ्र बंद कर देने की आज्ञा देगा तो मैं उसे विश्वास दिलाता हूं कि भारत की स्थानीय परिस्थिति और मेरे विचार और व्यवहार की संचालक मेरी भावनाओं के पूर्ण ज्ञान पर आधारित उस आज्ञा का अक्षरशः पालन किया जायगा। परंतु इससे मुझे अपने दृढ़ विश्वास छोड़ने पड़ेंगे, अपने दिल के अरमान राख कर देने होंगे और सार्वजनिक हित की एक आयोजना का अंत होते देख कर मुझे अत्यंत दुःख और क्षोभ होगा।

इतना सब कुछ होते हुए भी मैं कोर्ट द्वारा फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के पुनरुद्धार होने की या कम-से-कम घर लौटने पर व्यक्तिगत रूप से जब तक मैं कॉलेज के संबंध में कोर्ट से बात-चीत न कर लूं उसके वर्तमान अवस्था में स्थित रहने की आशा का परित्याग नहीं करूंगा।

अंत में मुझे पूर्ण आशा है कि भविष्य में जब तक कोई और आज्ञा-पत्र न भेजा जाय तब तक कोर्ट कॉलेज को उसकी वर्तमान अवस्था में जारी रखने की शीघ्र ही आज्ञा देगा। और यद्यपि अपना त्याग-पत्र भेज देने से मुझे इन मूल्यवान प्रदेशों को कोई लाभ पहुंचाने की आशा नहीं है, तो भी मैं यही भावना लेकर भारतवर्ष छोड़ूंगा कि मेरे बाद आने वाले सज्जन कोर्ट की कॉलेज-पुनरुद्धार की आज्ञा का उसी उत्साह और सार्वजनिक भावना से पालन करेंगे जिससे मैंने संस्था की स्थापना की थी।[1]

कोर्ट को पत्र लिखने के साथ उन्होंने ५ अगस्त, १८०२ को ही एक पत्र राइट ऑनरेबुल दि अर्ल ऑव डार्टमथ को भी लिखा जिसमें उन्होंने कंपनी की आशाजनक आर्थिक अवस्था और कंपनी के राज्य में सुख-शांति की व्यवस्था का उल्लेख किया है। कोर्ट को लिखे गए पत्र की एक प्रति उन्होंने डार्टमथ के पास भी भेजी और उनसे प्रार्थना की कि कॉलेज के पुनरुद्धार के संबंध में आपसे जो कुछ हो सके उसे अत्यंत प्रभावोत्पादक रूप में करें और जहाँ तक हो सके संस्था के पुनरुद्धार के संबंध में शीघ्र ही आज्ञा-पत्र भिजवाने का प्रयत्न करें नहीं तो मेरे अपने २४ जून के निर्णय के अनुसार कॉलेज तोड़ दिया जायगा। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि : यदि कोर्ट ने अपना निर्णय न बदला तो इंगलैंड लौटने पर मैं तुरंत ही पार्लामेंट में इस संबंध में एक प्रस्ताव रक्खूंगा। इस संस्था की आवश्यकता का मुझे इतना दृढ़ विश्वास है कि उसके पुनरुद्धार के लिए मैंने अपना शेष राजनीतिक जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा इसी संस्था से हो सकती है। कंपनी यह खर्च अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकती है। जन-मत लेने पर जनता भी इस खर्च की स्वीकृति दे देगी। सिविल सर्विस के कर्मचारियों की शिक्षा और अनुशासन की व्यवस्था के बिना हम अपना विशाल भारतीय साम्राज्य किसी प्रकार भी नहीं बचा सकते। न्यायोचित रूप में जहाँ भी रुपये की बचत हो सकती थी, वहीं मैंने

अपने पक्ष-समर्थन के लिए वेलेज़ली द्वारा अन्य व्यक्तियों को पत्र

[1] वही, १८०१, सदन, १८०४, पृ० १ २६ (होम पेपर्स)

रुपया बचाया है। इतने पर भी कोर्ट का हस्तक्षेप असहनीय है। कंपनी की आर्थिक दशा इस समय कितनी अच्छी है, इस बात का विवरण मैं लगभग एक के मास अन्दर आपके पास भेज दूँगा। एक समाचारपत्र द्वारा मुझे ज्ञात हुआ है कि कोर्ट ने स्थानापन्न गवर्नर-जनरल के रूप मे श्री बार्लो की नियुक्ति की है। कोर्ट के नाम पत्र मे मैंने जनवरी, १८०३ से आगे भारतवर्ष में रहने की सभावना का उल्लेख नहीं किया। किंतु १२ मार्च, १८०२ के आपके और श्री ऐडिंगटन के नाम पत्रो मे व्यक्त मेरे विचारो मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कॉलेज तोडने के सबध में कोर्ट के आज्ञा-पत्र से मेरी सत्ता को कितनी ठेस पहुँची है, इसका आप स्वय अनुभव कर सकते हैं। और यदि सम्राट् के मत्रि-मडल से पूर्ण सहायता का वचन न मिला तो मै शासन-भार ग्रहण करने के लिए असमर्थ हूँ और शीघ्र ही मैं उसे श्री बार्लो को सौंप दूँगा। अत मे मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कॉलेज के सबध मे कोर्ट को लिखे गए पत्र की एक-एक प्रति आप मेरे भाई, श्री पोल, श्री डुडाज, श्री पिट और श्री डेविड स्कॉट के पास भिजवा दे। मुझे विश्वास है कि ऐडिंगटन उसे सरकारी तौर पर देख लेंगे। लेकिन मुझे डर है कि लीडन-हॉल-स्ट्रीट के पदाधिकारी उसे दबा देने का प्रयत्न करेंगे। मैं इस बात के लिए भी विशेष चितित हूँ कि उक्त सज्जन कपनी के आय-व्यय का लेखा भी देखें। उनकी एक प्रति श्री डुडाज के पास भेजने का मेरा विचार है।[1]

वेलेज़ली के सभी निर्णयो के साथ बोर्ड का भी पूर्ण सहयोग था।[2] कोर्ट के व्यवहार से वेलेज़ली को अत्यत दुःख हुआ था। अपने महत्त्वपूर्ण पक्ष के समर्थन के लिए उन्हे अनेक लबे-लबे पत्र लिखने पड़ते थे जिससे बहुत से सरकारी काम अधूरे रह जाते थे और निजी पत्रों का उत्तर देने का तो उन्हे समय ही नहीं मिलता था। एक सार्वजनिक हित के कार्य के लिए उन्हे अत्यधिक मानसिक क्लेश उठाना पडा। कभी-कभी तो वे झुँझलाहट और क्रोध के वशीभूत भी हो जाते थे। इन सब बातो का उल्लेख करते हुए १२ अगस्त, १८०२ को डेविड स्कॉट के नाम पत्र लिखते हुए उन्होंने उनसे भारत में ग्रेट ब्रिटेन के पुनीत कार्य के लिए सहायता माँगी और कॉलेज और साम्राज्य के बीच घनिष्ट सबध स्थापित किया।[3] अक्तूबर, १८०२ और फिर जनवरी, १८०३ मे उन्होने अपने पद-त्याग की सूचना भेजी। परतु इँगलैंड के मत्रि-मडल और कोर्ट के डाइरेक्टरो की प्रार्थना पर वे रुक गए। मरहठा राज्य तथा अन्य राजनीतिक परिस्थितियो के कारण उन्हें भारतवर्ष ही म रक्खा गया।

११ मार्च, १८०३ को डेविड स्कॉट ने वेलेज़ली के नाम एक पत्र लिखा। इस पत्र से ज्ञात होता है कि कॉलेज के पुनरुद्धार के लिए वेलेज़ली कितने उत्कठित थे और किस प्रकार पार्लामेंट के सदस्यों तथा अन्य अनुभवी शासको और राजनीतिज्ञो का मत-सग्रह कर अपना पक्ष मज़बूत बना रहे थे।[4]

---

[1] आर० आर० पीअर्स: 'मेम्वायर्स', पृ० २१२-२१७

[2] 'वेलेज़ली डेसपेचेज़', पृ० ६३६-६४०

[3] आर० आर० पीअर्स 'मेम्वायर्स' पृ० २११-२१२

[4] वही, पृ० २१८-२१०

१६ जून, १८०४ को एक मित्र के नाम पत्र लिखते हुए वेलेज़ली ने कोर्ट के प्रति घृणा प्रकट की और लिखा कि देश लौटने पर मैं हाउस ऑव लॉर्ड्स में सम्राट् और अपने देशवासियों से न्याय की भीख माँगूँगा। इस पत्र से वेलेज़ली की आहत भावनाओं का अत्यंत सुन्दर परिचय मिलता है।[1]

वेलेज़ली के शासन-काल में कॉलेज

कोर्ट और वेलेज़ली के बीच में 'बोर्ड ऑव कंट्रोल' के हस्तक्षेप करने से वेलेज़ली के शासन-काल में कॉलेज ज्यों-का-त्यों बना रहा। १८०४ में यह सुसमाचार प्राप्त हुआ कि जब तक कोई दूसरा आज्ञा-पत्र प्रकाशित न किया जाय तब तक कॉलेज न तोड़ा जाय। लेकिन मद्रास और बंबई के विद्यार्थियों के विद्याध्ययन की व्यवस्था बिलकुल हटा दी गई। यह पहले कहा जा चुका है कि वेलेज़ली ने अठारह महीने तक कॉलेज तोड़ना स्थगित कर दिया था। अवज्ञा का यह दूसरा उदाहरण कोर्ट को असह्य था। परंतु पिट के प्रधान मंत्री होने से कोर्ट वेलेज़ली का कुछ भी न बिगाड़ सका। और यद्यपि पिट के प्रभावांतर्गत कोर्ट को अपना एकदम कॉलेज तोड़ देने वाला आज्ञा-पत्र वापिस लेना पड़ा, तो भी मद्रास और बंबई के विद्यार्थियों के विद्याध्ययन की व्यवस्था हटा देने से वेलेज़ली की इच्छा भी पूर्ण न हो सकी। १८०५ में वेलेज़ली के इंगलैंड लौट जाने पर वहाँ भी उनमें और डाइरेक्टरों में यह वाद-विवाद बना रहा। परंतु उनकी जी तोड़ कोशिश कॉलेज को न बचा सकी। उनकी मूल बृहत् आयोजना काट-छाँट कर छोटी कर दी गई। भविष्य में उसका यही छोटा रूप चलता रहा।

वेलेज़ली की ख्याति और उनकी असफलता के कारण

परंतु स्वार्थत्यागी, उत्साही और पुरुषार्थी व्यक्ति अपने निश्चित किए हुए मार्ग से कभी विचलित नहीं होते। प्रतिकूलता ही उनकी सफलता की साधक बन जाती है। ऐसे ही व्यक्तियों को विपत्तियाँ निराश नहीं करतीं और प्रत्यक्षतः सारा परिश्रम व्यर्थ जाने पर भी संसार में उन्हें यश और ख्याति प्राप्त होती है। कोर्ट की प्रतिकूलता से वेलेज़ली को क्षोभ अवश्य हुआ, परंतु अपने सिद्धांत पर उन्हें अटल विश्वास बना रहा। गुण-ग्राहकों ने उनकी और उनकी आयोजना की भूरि-भूरि प्रशंसा की। विशाल हृदय की विभूति के सामने कोर्ट की संकीर्णता को विजय प्राप्त हुई, किंतु वेलेज़ली का इससे और भी सम्मान बढ़ा। विलियम कैरे,[2] डेविड ब्राउन,[3] माकिनटोश,[4] विल्बर्फ़ोर्स,[5]

---

[1]वही, पृ० २२४-२२५

[2]कॉलेज के १८०४ के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिया गया भाषण। दे०, आर० आर० पीअर्स : 'मेम्वायर्स', पृ० २२०-२२४

[3]११ जनवरी और २५ मई, १८०५ को चार्ल्स ग्रांट के नाम लिखे गए पत्र। दे०, जॉन विलियम के : 'लाइव्ज़ ऑव इंडियन ऑफ़िसर्स', जि० १, परिशिष्ट, लंदन, १८६७, पृ० क्रमशः ४७६-४८४ और ४८५-४८६

[4]१६ जुलाई, १८०५ का लिखा हुआ वेलेज़ली के नाम पत्र। दे०, आर० आर० पीअर्स : 'मेम्वायर्स', पृ० ३७६-३८४

[5]नवम्बर, १८०७ का मार्क्विस वेलेज़ली के नाम पत्र दे० वही, पृ० २२६

विलियम ब्टर्वर्थ बेली[१] प्रभृति सज्जनों ने वेलेज़ली की आयोजना की महानता, उनके चरित्र और ध्येय का अपने-अपने दृष्टिकोण से[२] बार-बार गुणगान किया और कोर्ट की संकीर्णता पर दुःख प्रकट किया। स्वयं कोर्ट ने ईस्ट इंडिया कॉलेज (१८०६), हेलबरी की स्थापना कर वेलेज़ली को सैद्धांतिक विजय प्रदान की, यद्यपि इस संस्था के संबंध में विद्वानों के दो मत हैं। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के विद्यार्थियों ने आगे चल कर जो ख्याति प्राप्त की उससे वेलेज़ली की दूरदर्शिता और उनकी आयोजना की उपयोगिता सिद्ध हुई। अपनी संस्था के छोटे-से रूप के महान् परिणाम देख कर वे अपने जीवन के संध्या-काल में प्रसन्नता के कारण गद्गद् हो उठते थे।[३] परिश्रम और तत्परता का फल मीठा होता है।

इतिहासकारों का कहना है कि शासक की हैसियत से वेलेज़ली अद्वितीय थे, किन्तु कर्मचारी की हैसियत से वे दुःखदायी और परेशान करने वाले थे। किसी विचार के दृढ़ हो जाने पर वे उसे तुरन्त व्यावहारिक रूप में परिणत करते समय अपने उच्च पदाधिकारियों के विचारों की चिन्ता न करते थे। उच्च पदाधिकारियों के मतभेद या विरोध प्रकट करने पर भी वे अपने ही विचार पर अटल रहते थे। अनेक कारणों में से इस प्रवृत्ति के कारण भी उन की आयोजना कोर्ट द्वारा अस्वीकृत हुई। बार्लो के स्थानापन्न गवर्नर-जनरल नियुक्त होने पर (बाद को लॉर्ड कॉर्नवालिस उनकी जगह दुबारा गवर्नर-जनरल नियुक्त हुए) लॉर्ड कॉर्न-वालिस ने उन को सलाह दी थी : आप भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का शासन-भार ग्रहण करने पर कोर्ट की अवहेलना कभी न करें। विधान के अनुसार जिन मामलों में कोर्ट को हस्तक्षेप करने का अधिकार है उनके सम्बन्ध में कोर्ट की आज्ञा लेकर उसका पालन करना अत्यंत आवश्यक है। कोर्ट के प्रति सदैव शिष्टता का भाव रखना चाहिए। लॉर्ड वेलेज़ली और लॉर्ड क्लाइव के अवहेलनापूर्ण व्यवहार और अशिष्टता से मंत्रियों और 'बोर्ड ऑव कंट्रोल' को अत्यंत दुःख हुआ है। सार्वजनिक हित के लिए आप चाहे जो कुछ करें, किन्तु कोर्ट की सत्ता पर आक्रमण करना ठीक नहीं। लॉर्ड कैसिलरीआ ने बड़े ज़ोरों के साथ कॉलेज का समर्थन किया है। और जहाँ तक बंगाल प्रांत से कॉलेज का संबंध है वहाँ तक वे सफल भी हुए हैं। मैं स्वयं लॉर्ड वेलेज़ली के विचारों से पूर्णतया सहमत हूँ। परन्तु क्या अच्छा होता यदि वे कोर्ट के साथ ज़रा होशियारी से काम लेते। उस समय वे अपनी कॉलेज की या कोई अन्य परिमित आयोजना स्वीकार करा सकते थे।[४] कोर्ट ने वेलेज़ली को

---

[१] कोर्ट के सभापति की हैसियत से इंडिया हाउस में १७ मार्च, १८४१ का भाषण। दे०, वही, जि० ३ परिशिष्ट, पृ० ४११-४३६ आदि।

[२] उदाहरणार्थ, ईसाई धर्म-प्रचारकों के दृष्टिकोण के लिए दे०, वही, जि० २, ग्यारहवाँ अध्याय।

[३] १८ और २१ मार्च, १८४१ को बेली के नाम वेलेज़ली के दो पत्र। दे०, जॉन विलियम के : 'लाइव्ज़ ऑव इंडियन ऑफ़िसर्स', जि० १, परिशिष्ट, लंदन १८६७, पृ० क्रमशः ४८६-४८८ और ४८८ ४८९

[४] वही, पृ० १२१

महत्त्वाकांक्षी और अवज्ञाकारी समझ कर उनकी आयोजना रद्दी के टोकरे में फेंक दी।

वेलेज़ली की आयोजना की असफलता का यह एक, किन्तु महत्वपूर्ण, कारण था।

वास्तव में वेलेजली एक अच्छे शासक तो थे परन्तु कूटनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री अच्छे न थे।

उधर कोर्ट के डाइरेक्टरों में राजनीतिक भावना जाग्रत हो रही थी, किन्तु उनका ध्यान अब भी आर्थिक लाभ पर लगा हुआ था। १७७३ और १७६८ के चार्टरों में भेद होते हुए भी वे व्यापारी ही बने रहना चाहते थे।

डाइरेक्टरों और हेस्टिंग्ज़ में भी मतभेद हो जाया करता था। डाइरेक्टरों की सिफ़ारिशें बहुत चलती थीं और हेस्टिंग्ज़ उन्हें नापसन्द करते थे। कोर्ट का यह व्यवहार वे अन्यायपूर्ण और भद्दा समझते थे। लेकिन वे बड़ी होशियारी से अपना काम चला लेते थे। उनके व्यक्तिगत व्यय की भी कोर्ट के डाइरेक्टर कड़ी आलोचना किया करते थे।

वास्तव में वेलेजली की अवध-नीति, हेनरी वेलेज़ली की नियुक्ति, बेसीन की सन्धि, मरहठों के साथ युद्ध, निजी व्यापार की समस्या और अत्यधिक सरकारी खर्च और अंत में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज—इन सब बातों से कोर्ट उनसे असंतुष्ट रहता था। हर विषय में वह वेलेज़ली पर दोषारोपण करने का प्रयत्न करता था। उसने उन पर जो अपराध लगाए वे ये हैं: '(१) वैधानिक सत्ता और कौंसिल के अधिकारों की अवहेलना; (२) इंगलैंड की सरकार की आज्ञा के बिना बड़े-बड़े कामों में हाथ डालना, उस समय जब कि आज्ञा प्राप्त करने के लिए काफ़ी समय रहता है; (३) अनुचित अधिकार ग्रहण करना; (४) अहातों के शासन-प्रबन्ध की ज़रा-ज़रा सी बातों में हस्तक्षेप करना; और (५) अनुचित नियुक्तियाँ और क़ानून-भंग करना।' परन्तु अनेक इतिहासकारों का मत है कि वेलेज़ली पर लगाए गए अपराध कभी साबित नहीं हुए।

जिस समय कॉलेज तोड़ने का आज्ञा-पत्र प्राप्त हुआ था उस समय 'बोर्ड ऑव कंट्रोल' के एक सदस्य ने वेलेज़ली से कहा था: 'निजी व्यापार (प्राइवेट ट्रेड) के संबंध में आपके पत्र ने आपके कॉलेज का नाश कर दिया।' शुरू में तो सुनने वालों को यह बात अजीब-सी लगी। बाद को पता लगा उस सदस्य की बात ठीक थी।

इन सब बातों के अतिरिक्त आपस की दलबन्दी ने भी कॉलेज का सर्वनाश कर दिया। कोर्ट में वेलेज़ली के विरोधी दल का बहुमत था।

कॉलेज को घर के चराग़ से भी आग लगी। कंपनी के पुराने कर्मचारी कॉलेज से घृणा करते थे। प्रत्यक्ष रूप से तो वे वेलेज़ली की आयोजना की प्रशंसा ही नहीं अपना पूर्ण सहयोग भी प्रदान करते थे, परंतु परोक्ष रूप से वे सदैव उसका विरोध करते रहे। उसके विरुद्ध

कॉलेज की उपयोगिता और उसके द्वारा साम्राज्य के हित के सम्बन्ध में वेलेज़ली के बाद के गवर्नर-जनरलों के विचारों से परिचय प्राप्त करने के लिए टॉमस रोएबक द्वारा सम्पादित 'दि ऐनल्स ऑव दि कॉलेज ऑव फ़ोर्ट विलियम' (१८१६) में संग्रहीत भाषण देखिए।

लंबे-लंबे लेख लिखे और उनकी बदनामी की। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि कॉलेज से निकले हुए कर्मचारियों में हम पिछड़ जाएँगे—सरकारी नौकरी में उन्नति करने की दृष्टि से ही नहीं, मानसिक प्रगति की दृष्टि से भी। पुराने कर्मचारियों में सर जॉर्ज बार्लो ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने सच्चे हृदय से कॉलेज का समर्थन किया। मॉरीशस में फ्रांसीसियों ने कुछ पत्र भारत भेजे थे और कुछ उन्होंने वहीं प्रकाशित किए थे। उनसे पता चलता है कि किस प्रकार वेलेज़ली के निकट कर्मचारियों ने ही उनके साथ विश्वासघात किया। ये पत्र पढ़ कर डेविड ब्राउन को अत्यंत मानसिक पीड़ा हुई थी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वेलेज़ली के विरुद्ध षड्यन्त्रकारियों ने क्या-क्या किया। कॉलेज के कुछ नवयुवक विद्यार्थी अनुचित व्यवहार कर बैठते थे। किंतु ऐसे अनुचित व्यवहारों के अब बहुत कम उदाहरण पाए जाते थे। डेविड ब्राउन का एक स्थान पर कथन है कि जो अनैतिकता एक समय राइटर्स बिल्डिंग्स में देखी जाती थी अब उसका नाम-निशान तक नहीं रह गया। केवल कुछ विद्यार्थियों के अनुचित व्यवहार के आधार पर कॉलेज की ख्याति कलंकित करना मानवोचित नहीं है। सुयोग्य पदाधिकारियों का अभाव भी कॉलेज के पतन का कारण बना। इस संबंध में लॉर्ड टेनमथ की आशंका ठीक ही निकली।

कॉलेज का छोटा रूप और बार्लो द्वारा रेग्यूलेशन में परिवर्तन

१८०५ के लगभग शुरू में डेविड ब्राउन, प्रोवोस्ट, को कॉलेज छोटे पैमाने पर कर देने की आज्ञा मिली। आखिर वही हुआ जो कोर्ट के डाइरेक्टर चाहते थे—'बंगाल सेमिनरी', जैसी कुछ समय पूर्व गिलक्राइस्ट के तत्वाधान में संचालित होती थी। नाम फ़ोर्ट विलियम कॉलेज ही बना रहा। विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों में उदासी छा गई। परिवर्तन का यह तीव्र चक्र देख कर देशी अध्यापक आश्चर्य-चकित रह गए। वे अब अपनी सोचने लगे। वेलेज़ली ने जिस विशाल वट-वृक्ष के बीज बोए थे वह पल्लवित होकर बढ़ रहा था कि कोर्ट ने कुठाराघात किया। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज अब वेलेज़ली के विचारों का कंकाल मात्र था। वेलेज़ली ने उसे उसके वास्तविक वैभव के साथ बचाना चाहा। किंतु वे असफल रहे।

१८०० ईसवी के रेग्यूलेशन ९ में से ३, १०, ११, १३, १५, १७ और २५ धाराएँ तथा कुछ और विषय निकाल कर डेविड ब्राउन ने १८०६ ईसवी का रेग्यूलेशन बना कर फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की एक परिमित आयोजना प्रस्तुत की। ३१ दिसंबर, १८०६ को गवर्नर-जनरल बार्लो ने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी।[1]

---

[1] फ़ो० वि०, २४ दिसंबर, १८०६—२० जनवरी, १८०७, हो०, मि०, जि० २, पृ० २०१ २२२ इं० रे० डि०

जॉन बौथविक गिलक्राइस्ट

(अगस्त, १८००—फ़रवरी, १८०४)

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का कार्य सुचारु रूप से सञ्चालित करने के लिए वेलेज़ली ने १० अप्रैल, १८०१ को कॉलेज-विधान का प्रथम परिच्छेद स्वीकृत किया था। वे उसे एशिया का एक महान शिक्षा-केंद्र बना कर संसार के इतिहास में ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटिश जाति को गौरवपूर्ण पद पर बिठाना चाहते थे। ऐसा सुनहरा स्वप्न लेकर उन्होंने क़दम आगे बढ़ाया ही था कि कोर्ट के डाइरेक्टरों तथा अन्य षड्यंत्रकारियों ने उनका प्रशस्त मार्ग कंटकाकीर्ण बना दिया। वेलेज़ली को इसकी आशा भी नहीं थी। उन्हें नहीं मालूम था कि पारस्परिक राजनीतिक मतभेद और धन-लोभ का संकुचित दृष्टिकोण भी उनकी दूरदर्शितापूर्ण, उदार, पक्षपात-रहित, सर्व-हितकारिणी एवं साम्राज्य-हित की संरक्षिणी आयोजना के फलीभूत होने में बाधा उपस्थित करेंगे। अपनी सर्वप्रिय आयोजना के संबंध में कोर्ट का व्यवहार देख कर वेलेज़ली का उत्साह भग्न हृदय क्षुब्ध होकर चीत्कार कर उठा था।

वेलेज़ली के शासन में कॉलेज का पूर्ववत् संचालन

परंतु तो भी एक ओर जहाँ वेलेज़ली और कोर्ट के डाइरेक्टरों में अत्यंत खेदजनक पत्र व्यवहार चल रहा था, वहाँ दूसरी ओर कॉलेज की स्थिति के विषय में अंतिम निर्णय पर पहुँचने के समय तक—दिसंबर, १८०२ तक—उन्होंने साहसिक की भाँति कॉलेज का पूर्ववत् संचालन करने का निश्चय कर अपना मनोनीत कार्य आगे बढ़ाया।

व्यावहारिक राजकीय दृष्टिकोण से कॉलेज के विद्यार्थियों के लाभार्थ पाठ्य-पुस्तकों की अत्यंत आवश्यकता थी। कुछ समय तक तो देशी भाषाओं से पुस्तकें नक़ल कराई गईं। किंतु शीघ्र ही कॉलेज कौंसिल ने यह व्यवस्था बदल दी। नक़ल कराने वाली व्यवस्था में एक तो अशुद्धियाँ रह जाती थीं, दूसरे उसमें व्यय भी अधिक होता था। इसलिए नवंबर, १८०१ में कौंसिल ने यह निश्चित किया कि प्रधानाध्यापक स्वयं विभिन्न पुस्तकों के उपयोगी अंश संग्रहीत कर उन्हें छपावें ताकि दोष न रहें और विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें भी सुलभ हो जायें। पुस्तक प्रकाशित करने से पूर्व उन्हें अपना संग्रह कौंसिल के पास निरीक्षण और स्वीकृति के लिए भेजना पड़ता था। कौंसिल के इस नियम के अनुसार विभिन्न विभागों के प्रधानाध्यापक देशी भाषाओं के संग्रह प्रस्तुत करने में दत्त-चित्त हुए। आवश्यकतानुसार भारत की प्रायः प्रत्येक भाषा के संग्रह तैयार किए गए। किंतु इनमें फ़ारसी, बँगला और हिंदुस्तानी भाषाओं के संग्रहों का विशिष्ट स्थान था। यहाँ हम केवल हिंदुस्तानी विभाग में किए गए कार्य का उल्लेख करेंगे।

पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था

हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट थे। हिंदुस्तानी भाषा के संबंध में उनके अपने विचार थे,[1] और उन्हीं विचारो को उन्होंने कार्यरूप में परिणत किया। उन्होंने १२ जनवरी, १८०२ को एक पत्र कौंसिल के पास भेजा जिसमें हिंदुस्तानी भाषा के संग्रह प्रकाशित करने के संबंध में कुछ विचार प्रकट किए हैं। कौंसिल ने उस समय उनका पत्र विचाराधीन रक्खा। उस समय केवल मिसकीन कृत 'मर्सिया' की पाँच सौ प्रतियाँ छपाने के लिए गिलक्राइस्ट के तीन सौ पचहत्तर रुपए के बिल पर स्वीकृति दी गई। अपने १२ जनवरी, १८०२ के पत्र में गिलक्राइस्ट ने लिखा था : अभ्यास-पुस्तको की दो सौ या तीन सौ प्रतियाँ छपाने में कम-से-कम आठ सौ और ज़्यादा से ज़्यादा एक हज़ार रुपए खर्च होंगे। इन अभ्यास-पुस्तकों में कॉलिज के मुंशियों और विद्यार्थियों के लाभार्थ समस्त प्रस्तावित प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर रहेंगे। इस प्रकार एक हज़ार रुपए के वार्षिक व्यय से हम शीघ्र ही हिंदुस्तानी भाषा-रचना के समस्त नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। इन नियमों की सहायता से देशी अध्यापकों को पढ़ने में सुविधा होगी। इससे उन्हें अपना कर्त्तव्य पालन करने मे भी सफलता प्राप्त होगी। किसी दूसरी आयोजना से हम यह कार्य सिद्ध नहीं कर सकते। हिंदुस्तानी में ऐसे ग्रंथों का नितांत अभाव है जिनका थोड़ा-बहुत भी सहारा लिया जा सके। इसलिए मुझे निम्नलिखित पुस्तकें हिसाब लगाए गए भिन्न-भिन्न खर्च की दर से छपाने के लिए मजबूर होना पड़ा है। इस कार्य के लिए मैंने कलकत्ते के प्रायः सभी छापेखानों से सहायता ली है ताकि थोड़े-से समय में हम अपना उद्देश्य पूर्ण कर सकें। मुझे आशा है कि कॉलेज कौंसिल इसे नितांत आवश्यक समझ कर यथाविधि प्रोत्साहन देगी—विशेष रूप से उस समय जब कि वर्षों तक उनके नए संस्करणों की आवश्यकता न होने के कारण कॉलिज का कोई और व्यय भी न होगा, और फिर जब कि आधी प्रतियों की बिक्री से ही पूरी प्रतियों के दाम निकल आवेंगे। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि छपाई का व्यय अपेक्षाकृत कम करने की दृष्टि से प्रतियों की संख्या पाँच सौ कर दी गई थी। यदि कॉलिज कौंसिल, कंपनी के हिसाब में, इन रचनाओं की बिक्री ब्रिटिश भारत के हितों के लिए उपयोगी समझे, तो मैं भविष्य में पाँच सौ के स्थान पर एक हज़ार प्रतियाँ छपाने की सिफ़ारिश करूँगा। कारण प्रत्यक्ष है।

गिलक्राइस्ट और हिंदुस्तानी ग्रंथों का प्रकाशन

इसी पत्र के साथ गिलक्राइस्ट ने छपी हुई पुस्तकों का विवरण और उनके हिसाब का एक चिट्ठा बन कर भेजा। इसमें उन्होंने यह भी लिख दिया था कि कॉलिज के लिए छपाई का कार्य अगले वर्ष तक चलता रहेगा। यह हिसाब उन्होंने रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर लगाया था।[2]

१८०२ में हिंदुस्तानी विभाग में संग्रह और छपाई का व्यय तिरसठ हज़ार रुपया बैठता था इसलिए कॉलेज कौंसिल ने यह निश्चय कर को लिखा कि भविष्य

म जब तक हस्तलिखित प्रति कौंसिल को न दिखा दी जाय तथा छपाए जाने वाले अंश, प्रतियों की संख्या और व्यय के चिट्ठे के संबंध में स्वीकृति न ले ली जाय, तब तक और पुस्तकों का कार्य न उठाया जाय और न उन पर कोई व्यय हो। ३० जून, १८०१ को कौंसिल ने एक यह प्रस्ताव स्वीकार किया था कि अब आगे कॉलेज के खर्च पर विद्यार्थियों को पुस्तकें न दी जायँ। इस संबंध में उसने व्यय के लेखे के साथ छपे हुए ग्रंथों का हिसाब भी गिलक्राइस्ट से माँगा।

इसके उत्तर में गिलक्राइस्ट ने १२ जनवरी के पत्र का हवाला देते हुए उसमें दिए गए चिट्ठे की ओर संकेत किया। २० जनवरी, १८०२ तक उन्होंने केवल पंद्रह रुपए की लागत की किताबें प्रेस भेजी थीं। हिंदुस्तानी साहित्य बहुत थोड़ा होने के कारण वे हर प्रकार के ग्रंथ स्वयं प्रस्तुत करने के लिए अपना विशेष उत्तरदायित्व समझते थे। हिंदुस्तानी अभी प्रसवकाल में थी। इसलिए अत्यधिक मितव्ययता वे उसके लिए घातक समझते थे। 'चार दरवेश' के साठ पृष्ठ तैयार करने में उन्हें छः या आठ महीने लगे थे। लगभग इतने ही उसे पूर्ण करने लिए जरूरी थे। ऐसी दशा में उन्हें सरकारी वादविवादों द्वारा अपनी प्रगति में हस्तक्षेप रुचिकर प्रतीत न हुआ। वे डरते थे कि सरकार के साथ पत्र-व्यवहार करने में कहीं और समय नष्ट न हो जाय। अपने विभाग पर सरकारी व्यय भी वे बढ़ाना नहीं चाहते थे। अतएव पूरे कार्य का भार उन्होंने अपने ऊपर लेकर व्यापारिक दृष्टिकोण से अपनी निम्नलिखित शर्तें कॉलेज कौंसिल के पास लिख भेजीं :

गिलक्राइस्ट की प्रकाशन संबंधी आयोजना

१. ग्रंथकर्ता और प्रकाशक के रूप में मुझे प्रोत्साहन देने के लिए सरकार विद्यार्थियों के उपयोग के लिए प्रकाशित मेरे प्रत्येक ग्रंथ की सौ प्रतियाँ बाज़ार भाव पर लेगी।

२. कॉलेज के लिए मेरे द्वारा लिए गए और प्रकाशित किए जाने वाले प्रत्येक ग्रंथ के रूप और उसके साधारण विषय की पूर्व-स्वीकृति के लिए मैं उसे कौंसिल के सम्मुख उपस्थित करूँगा।

३ उपर्युक्त प्रतियाँ या तो संसार के विभिन्न कॉलेजों में मुफ़्त बाँटी जाएँगी या पूरे संस्करण के चुक जाने तक कॉलेज में सुरक्षित रहेंगी।

४. इन सुरक्षित प्रतियों में से आवश्यक प्रतियों की लागत सरकार को देते ही वे मेरी समझी जाएँगी।

५. हिंदुस्तानी कक्षा में आवश्यक ग्रंथों की एक-एक प्रति प्रत्येक विद्यार्थी को बाज़ार भाव पर ख़रीदनी होगी।

६. जब तक मैं स्वयं अपने विद्यार्थियों की माँग पूरी कर सकता हूँ, तब तक मैं चाहे जिस समय ये ग्रंथ बेचने की स्वतंत्रता रक्खूँगा, और इस संबंध में ग्रंथकर्ता की हैसियत से मुझे प्रत्येक स्वत्व और विशेषाधिकार प्राप्त रहेगा।

७. रचना, अनुवाद और प्रतिलिपि का पूरा खर्च मैं इस शर्त पर दूँगा जब कि सरकार मीर शेरअली को अपने खर्च पर हिंदुस्तानी साहित्य के संशोधक के उनके वर्तमान पद पर मेरी म बनाए रक्खेगी, और उनके पद-त्याग करने या उनकी मृत्यु हो

जाने पर एक दूसरा सुयोग्य व्यक्ति रक्खेगी जिसका वेतन वही रहेगा जो अब है अर्थात् दो सौ रुपए मासिक।

८. यदि कुछ विद्यार्थी तीनों वर्ष तक कक्षा में उपस्थित या अनुपस्थित रह कर पढ़ना चाहें और मेरे विभाग में विदित की जाने वाली पुस्तकें माँगें तो ऐसी हालत में मेरी प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए किताबों का खर्च प्रथम वर्ष में पचास रुपए मासिक, द्वितीय में तीस रुपए मासिक, और तृतीय में बीस रुपए मासिक से अधिक किसी हालत में नहीं होगा।

९. विद्यार्थियों की पुस्तकों की माँग पूर्ण करने वाले और प्रकाशक की हैसियत से मेरे व्यवहार का निरीक्षण करने का पूरा अधिकार कॉलेज कौंसिल को होगा, किन्तु साथ ही वह विद्यार्थियों के कॉलेज छोड़ने से पहले उनसे मेरा उधार का रुपया वसूल करने में मेरी हर प्रकार की समुचित सहायता करेगी।

१०. चूँकि अनेक ग्रंथ जो इस समय छप रहे हैं भिन्न परिस्थिति में दिए गए हैं, इसलिए उनका ठीक-ठीक हर्जाना भी दिया जाय।

अपनी इन दस शर्तों के अतिरिक्त गिलक्राइस्ट कोई अन्य सरकारी शर्त भी यथा-संभव मानने के लिए तैयार थे। वे सरकार को यह सुझाना चाहते थे कि यह नवीन आयोजना मान लेने में उसका लाभ ही लाभ है। अनेक विद्यार्थी तो इतने लापरवाह थे कि सरकार की ओर से मिली हुई पुस्तकें या तो खो देते थे या उनके एक या दो पृष्ठ फाड़ डालते थे। इस प्रवृत्ति से चालीस या पचास रुपए की लागत का एक ग्रंथ बेकार हो जाता था। इसमें सरकारी व्यय अधिक होने की संभावना थी। यह व्यय रोकने के दो ही उपाय थे। या तो सरकार गिलक्राइस्ट के विचारानुसार उनकी पुस्तक-प्रकाशन आयोजना स्वीकार कर लेती, या लापरवाह विद्यार्थियों को ग्रंथ देना बंद कर दिया जाता। यह दूसरी बात विद्यार्थियों की उन्नति और प्रगति में बाधक सिद्ध होती। इसलिए गिलक्राइस्ट इस कठोर नियम का पालन करना नहीं चाहते थे। वे केवल इस बात के इच्छुक थे कि तीन वर्ष के लिए उनके विभाग की पुस्तकों का प्रकाशन-प्रबंध उनके हाथ में रहने दिया जाय और सरकार उनकी शर्तें मान ले, विशेष रूप से २, ५, ६, ७, ८, ९, १० शर्तों को। विद्यार्थियों का हिंदुस्तानी भाषा का ज्ञान पूर्ण बनाने और कॉलेज की तीन वर्ष की अवधि तक उनका अभ्यास लगातार बनाए रखने की दृष्टि से वे सरकार से तीन हज़ार रुपया वार्षिक पेशगी पाने पर हिंदुस्तानी रचनाओं का एक वृहत् और विविध संग्रह प्रकाशित करने के लिए राज़ी थे। अपनी आयोजना के विषय में वे इतने आशावादी थे कि पत्र में अस्पष्ट स्थलों को स्वयं व्यक्तिगत रूप से कॉलेज कौंसिल में जाकर स्पष्ट करने के इच्छुक थे। किंतु शायद सरकार ने उनकी यह आयोजना विशेष आकर्षक न समझी। गिलक्राइस्ट ने अपने २० जनवरी, १८०२ के पत्र में इस आयोजना का उल्लेख किया था। २५ जनवरी, १८०२ तथा बाद के सरकारी पत्रों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। २५ जनवरी के पत्र में उनके पास केवल एक सरकारी प्रस्ताव की सूचना भेजी गई जिसमें उनसे चुनी हुई पुस्तकों का विवरण और उनकी छपाई में अनुमानित व्यय का लेखा माँगा गया किंतु

गिलक्राइस्ट को कालेज कौंसिल के इस प्रस्ताव पर आपत्ति थी उनका कहना था कि हिंदुस्तानी विभाग के विद्यार्थियों के लिए रचनाओं की प्रतिलिपि भर करा कर कार्य समाप्त करा देने से निश्चय ही लाभ की अपेक्षा हानि होने की अधिक संभावना है। हिंदुस्तानी भाषा में उन्हें कोई ऐसा ग्रंथ भी नहीं मिला था जिसे वे अपने विद्यार्थियों के लिए उपयोगी समझते। ऐसी दशा में किसी भी हिंदुस्तानी रचना की प्रतिलिपि करा कर कौंसिल के पास भेजने का कार्य वे बालू में से तेल निकालना समझते थे। जहाँ तक हिंदुस्तानी कविता से संबंध था वह केवल इस भाषा के पंडितों के पारायण के योग्य थी। कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए वह समय अभी दूर था। आर्थिक दृष्टिकोण से भी ग्रंथों की केवल प्रतिलिपि कराने की अपेक्षा उनके छपाने में कॉलेज को अधिक लाभ था, क्योंकि प्रारंभिक व्यय के बहुत शीघ्र भर जाने की संभावना थी। इसलिए कॉलेज कौंसिल का प्रस्ताव गिलक्राइस्ट के लिए अत्यंत निराशाजनक सिद्ध हुआ। निराश होने की बात भी थी। क्योंकि एक तो हिंदुस्तानी भाषा में उन्हें कोई ऐसा उत्तम ग्रंथ नहीं मिला जो विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होता। इस अभाव की पूर्ति वे स्वनिर्मित ग्रंथों से करना चाहते थे। दूसरे, अपनी आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण वे कुछ धनोपार्जन भी कर लेना चाहते थे। अपने २७ जनवरी, १८०२ के पत्र में उन्होंने दस हज़ार से बीस हजार रुपए तक प्रारंभिक व्यय के रूप में कौंसिल से माँगा—इस शर्त पर कि यदि इतना खर्च करने पर भी कोई अच्छा परिणाम न निकले तो हिंदुस्तानी विभाग में मितव्ययता का सिद्धांत लागू किया जा सकता है। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा कि यदि इतने पर भी कौंसिल मेरा प्रस्ताव अग्राह्य समझे तो मैं छपाई तुरत बंद करा दूँगा और एक ऐसी भाषा से, जिसमें विद्यार्थियों के लिए एक भी उपयोगी ग्रंथ नहीं है, एक या दो जिल्दों में संग्रह प्रस्तुत कर कौंसिल के पास मुद्रणार्थ भेज दूँगा। वास्तव में जो ग्रंथ गिलक्राइस्ट लिख रहे थे उनके पूर्ण होने तक वे कॉलेज कौंसिल का प्रस्ताव असामयिक समझते थे। अपूर्ण रचनाओं से संग्रह प्रस्तुत करना वे अनुपयुक्त मानते थे। हिंदुस्तानी भाषा के ग्रंथ छापने या छपाने के सभी साधन उनके पास थे। धनाभाव ही उनके मार्ग में रोड़ा अटका रहा था। सार्वजनिक कार्य के लिए छपाई में अपना रुपया लगा कर वे एक बार आर्थिक संकट भुगत चुके थे। इसलिए अब वे केवल अपना रुपया लगा कर कोई कार्य करना नहीं चाहते थे। इस संबंध में उनको इतना कटु अनुभव हो चुका था कि प्रकाशकों और ब्रिटिश भारत को अत्यंत लाभ पहुँचते देख कर भी उन्हें अपना रुपया लगाने का साहस न होता था। उनके इस विचार की परीक्षा का एक ही उपाय था। १८०२ के अंत तक हिंदुस्तानी साहित्य के जितने भी ग्रंथ निकलते उन्हें एक निश्चित मूल्य पर ग्राहकों को बेचने के संबंध में विज्ञापन करने का अधिकार गिलक्राइस्ट को दे दिया जाता। विद्यार्थियों से मूल्य लिए या न लिए जाने की समस्या हल करने का भार कौंसिल पर रहता। गिलक्राइस्ट ऐसा चाहते भी थे। ग्राहकों से आशानुकूल चंदा मिलने पर अन्य सभी भार ग्रहण करने के लिए वे तैयार थे। उनके विचार में इतने कम या अंत में नहीं के बराबर व्यय से न केवल कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए हिंदुस्तानी भाषा के ग्रंथ कुछ ही मास में सुलभ हो जाते वरन् कंपनी के समस्त कर्मचारियों में भी इस भाषा का प्रचार

करना अत्यन्त सुगम कार्य हो जाता गिलक्राइस्ट की इस आयोजना के सम्बन्ध में दो-तीन महीनों के भीतर निश्चय हो जाना आवश्यक था।

इन सब बातों के उत्तर में कॉलेज कौंसिल ने १ फरवरी, १८०२ को एक पत्र गिलक्राइस्ट के पास भेजा। हिंदुस्तानी विभाग के विद्यार्थियों के लाभार्थ उसने गिलक्राइस्ट के १२ जनवरी वाले पत्र के साथ दी गई सूची में उल्लिखित पुस्तकों के मुद्रित अंशों का, या उन्हें उन दूसरे अंशों के साथ जिन्हें गिलक्राइस्ट अपने विद्यार्थियों के लिए उपयोगी समझें, पाँच सौ पृष्ठों का केवल एक संग्रह प्रस्तुत कराना ही उचित समझा। यह ग्रंथ एक या अधिक भागों में विभाजित किया जा सकता था। वह पाँच सौ प्रतियों पर दस हज़ार सिक्का रुपए से अधिक खर्च करना नहीं चाहती थी। इनमें मर्सिया-इ-मिसकीन' का खर्च भी शामिल था। हिंदुस्तानी विभाग की पाठ्य-पुस्तकों के लिए उसने केवल दस हज़ार रुपया ही रक्खा। किंतु गिलक्राइस्ट-कृत 'हिंदुस्तानी प्रिंसिपिल्स' ('हिंदुस्तानी भाषा के सिद्धांत') और अभ्यास-पुस्तकों की उपयोगिता समझकर कौंसिल ने अधिक से अधिक पाँच हज़ार सिक्का रुपए की लागत पर पाँच सौ प्रतियाँ और छपाने की आज्ञा दी। हिंदुस्तानी-प्रचार-आयोजना के संबंध में मितव्ययता के सिद्धांत के कारण गिलक्राइस्ट को अधिक प्रोत्साहन न मिल सका। जहाँ तक ग्राहकों से चंदा लेकर ग्रंथ छपाने की बात थी, कौंसिल 'चार दरवेश' और 'गुलिस्ताँ' या उन अन्य ग्रंथों के, जिन्हें हिंदुस्तानी के ज्ञान के प्रसार की दृष्टि से गिलक्राइस्ट उचित समझते थे, छप जाने पर केवल कॉलेज के लिए अधिक से अधिक पाँच हज़ार सिक्का रुपए में उनकी पाँच सौ प्रतियाँ खरीदने के लिए सरकार को लिख सकती थी। अंत में कौंसिल ने कॉलेज के लिए छापी गई पुस्तकों का, या जो पुस्तकें छप रही थीं, उनका विवरण और लेखा बना कर गिलक्राइस्ट के पास भेज दिया।[1]

कौंसिल का उत्तर

गिलक्राइस्ट द्वारा १२ जनवरी, १८०२ वाले पत्र के साथ भेजे हुए विवरण और उपर्युक्त विवरण में जो अंतर है वह दोनों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जायगा। कौंसिल ने व्यय कितना कम कर दिया है यह बात ध्यान देने योग्य है। इसके बाद फिर गिलक्राइस्ट ने इस संबंध में कोई पत्र न लिखा। कौंसिल का रुख देख कर उन्हें कितना दुःख हुआ होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

उपर्युक्त विवरणों से एक बात का और पता चलता है। उनमें 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी', 'शकुन्तला नाटक' और 'माधवानल' (कामकंदला), का उल्लेख है। ये चारों ग्रन्थ लल्लूलाल की कहाँ तक स्वतंत्र रचनाएँ हैं, इसकी चर्चा मैं नहीं करूँगा। उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है:

'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पचीसी', 'शकुन्तला नाटक', और 'माधवानल'

"एक दिन साहिब ने कहा कि 'ब्रजभाषा में कोई अच्छी कहानी हो उसे रेखते की बोली में कहो।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा, पर इसके लिये कोई पारसी लिखने वाला दीजे, तो भली भाँति लिखी जाय।' उन्होंने दो शाइर मेरे तैनाथ किये, मजहर अली खान विला और काजिम अली जवाँ। एक बरस में

[1] दे० परिशिष्ट ख

चार पोथी का तरजुमा ब्रजभाषा से रेख़ते की बोली में किया। सिंहासनबत्तीसी बेताल पच्चीसी। सकुंतला नाटक। औ माधोनल। संवत १८५७ में आजीविका कंपनी के कालेज में स्थित हुई।....''

साहिब ने किससे कहा और कौन किसके तैनात हुआ तथा तरजुमा किसने किया, इस संबंध में विवरणों से पाठक स्वयं अपना निष्कर्ष निकाल सकते हैं। यहाँ इन चारों ग्रन्थों के विषय में इतना कहना यथेष्ट होगा कि हस्तलिखित रूप में उनकी रचना १८०१ में हो चुकी थी और १२ जनवरी, १८०२ तक 'सिंहासन बत्तीसी' के छत्तीस पृष्ठ और 'शकुंतला नाटक' के चौबीस पृष्ठ क्रमशः हरकारा प्रेस और कलकत्ता प्रेस में प्रकाशित हो चुके थे। कौंसिल द्वारा तैयार किया गया विवरण १ फरवरी, १८०२ का है और केवल व्यय की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ग्रन्थों के प्रकाशन की दृष्टि से गिलक्राइस्ट वाला विवरण मान्य है।

ग्रंथों की तरफ़ से ध्यान हटा कर गिलक्राइस्ट ने अपने विभाग के मुंशियों की ओर ध्यान दिया। नवंबर, १८०१ तक हिंदुस्तानी विभाग में साठ विद्यार्थियों से कम किसी हालत में नहीं थे। इन साठ विद्यार्थियों के पढ़ाने का कार्य बारह मुंशियों के हाथ में था, जो चालीस रुपया मासिक वेतन पाते थे। अतः कार्य अधिक होने के कारण गिलक्राइस्ट ने गुलाम अशरफ़ को, जो विभाग से अलग कर दिए गए थे, फिर विभाग में ले लिया। इसके अतिरिक्त कुछ सर्टिफ़िकेट (प्रमाण-पत्र प्राप्त) मुंशी[1] भी, जिन्हें हिंदुस्तानी भाषा का ज्ञान अच्छा न होने के कारण विभाग से अलग कर दिया था, फिर ले लिए गए। कॉलेज-स्थापना के प्रारंभिक काल में फ़ारसी विभाग को कुछ अधिक महत्त्व दे दिया गया था। उस समय फ़ारसी भाषा के अधिक महत्त्व प्राप्त होने का यह कारण था कि लोगों में हिंदुस्तानी भाषा सीखने के लिए अवकाश, चाव या योग्यता नहीं थी। एक नए विषय का ज्ञान प्राप्त करने के संबंध में प्रायः ऐसा हो जाया करता है। दूसरे, एक कारण यह भी था कि अरबी और फ़ारसी भाषाओं के विद्वान् तो अत्यधिक संख्या में मिल सकते थे और मिल जाते थे, किंतु हिंदुस्तानी या बंगला भाषा का वैज्ञानिक ज्ञान रखने वाले विद्वान् बहुत कम मिलते थे। अस्तु, गिलक्राइस्ट ने ५ नवंबर, १८०१ को कॉलेज कौंसिल से बारह के अतिरिक्त आठ मुंशी और, अर्थात् अपने विभाग के लिए चालीस रुपया मासिक वेतन पर कुल बीस मुंशी माँगे। हिंदुस्तानी विभाग के कुछ मुंशियों को छोड़ कर ऐसे मुंशी ही अधिक थे जिनका हिंदुस्तानी भाषा का ज्ञान अपरिपक्व था। कॉलेज में नौकरी करने से पूर्व उन्हें हिंदुस्तानी भाषा के सिद्धांतों का वैज्ञानिक अध्ययन करने का अवसर कभी न मिला था। उनका ज्ञान युवावस्था में सीखी गई भाषाओं तक ही सीमित था। अतएव उन्हें हिंदुस्तानी भाषा

गिलक्राइस्ट द्वारा मुंशियों की माँग

---

[1] सर्टिफ़िकेट मुंशी कॉलेज में अध्यापन-कार्य नहीं करते थे। वे या तो विद्यार्थियों के घर पर उनके अध्ययन में सहायता करते थे या स्वयं प्रधानाध्यापक उनसे काम लिया करते थे

ा ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने और फिर उनसे सुचरु ढंग से काम लेने की दृष्टि से ही गिलक्राइस्ट ने नए और पुराने सब मुंशियों का चालीस रुपया मासिक वेतन रक्खा था। आठ नए मुंशियों के वेतन का खर्च भी कुछ अधिक नहीं था। बहुत से मुंशियों को स्वयं गिलक्राइस्ट रोमन और नागरी लिपियों और हिंदुस्तानी व्याकरण की शिक्षा देते थे। मुंशियों की संख्या बढ़ाने में गिलक्राइस्ट कृतकार्य हुए। १९ फ़रवरी, १८०२ को कॉलेज कौंसिल ने इस संबंध में अपनी स्वीकृति दे दी।

विद्यार्थियों को सुलेख लिखने के लिए प्रोत्साहन देने की दृष्टि से कॉलेज में सुलेखकों की नियुक्ति होनी थी। इनका मासिक वेतन बीस सिक्का रुपए था। सर्वप्रथम सुंदर पंडित नागरी सुलेखक और कल्ब अली फ़ारसी सुलेखक नियुक्त हुए थे।

सुलेखक और क़िस्सा-ख़ाँ की माँग

किंतु कुछ समय बाद व्यवस्था बदल गई। फ़ारसी सुलेखक हिंदुस्तानी और फ़ारसी दोनों विभागों में काम करने और सौ रुपया मासिक वेतन पाने लगा। नागरी सुलेखक कोई न रहा। इसलिए ४ जनवरी, १८०२ को गिलक्राइस्ट ने पचास सिक्का रुपया मासिक वेतन पर एक नागरी सुलेखक (खुशनवीस) माँगा। सुलेखक के साथ-साथ उन्होंने एक क़िस्सा-ख़ाँ भी माँगा। क़िस्सा-ख़ाँ प्रत्येक विद्यार्थी के घर जाकर हिंदुस्तानी में क़िस्से सुनाया करता था। इससे विद्यार्थियों का भाषा-संबंधी ज्ञान बढ़ता था। इसका वेतन उन्होंने चालीस रुपए मासिक रक्खा। एक चतुर क़िस्सा-ख़ाँ न मिलने पर उन्होंने बीस-बीस रुपया मासिक वेतन पर दो क़िस्सा-ख़ाँ रखने की अनुमति माँगी। उनकी दोनों माँगें ठीक थीं और १९ फ़रवरी, १८०२ को उन्हें कौंसिल की स्वीकृति भी मिल गई।

किंतु उपर्युक्त पत्र में इन दोनों माँगों से भी अधिक महत्वपूर्ण उनकी माँग थी भाषा ('भाखा')-मुंशी की; गिलक्राइस्टी हिंदुस्तानी में अरबी-फ़ारसी शब्दों का बाहुल्य रहता था। किंतु इसका भवन हिंदी (आधुनिक प्रचलित अर्थ में) की नींव पर खड़ा हुआ था। इसलिए बिना हिंदी-ज्ञान के हिंदुस्तानी का ज्ञान प्राप्त करना कठिन था। कॉलेज के मुंशियों का हिंदी-ज्ञान शून्य के बराबर था। इससे गिलक्राइस्ट को बड़ी कठिनाई होती थी। स्वयं उन्हीं के शब्दों में :

'भाखा'-मुंशी की माँग और लल्लूलाल की नियुक्ति

"मूल में हिंदुस्तानी और ब्रजभाषा का इतना घनिष्ठ संबंध है कि मुंशियों को ब्रजभाषा का बहुत ही अपूर्ण ज्ञान होने के कारण इस अंश के संबंध में समुचित सहायता के अभाव में मुझे प्रायः कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसलिए कॉलेज के कामों में सहायता करने के लिए मैं पचास रुपए वेतन पर एक सुयोग्य व्यक्ति रखने की प्रार्थना करता हूँ।"[1]

१९ फ़रवरी, १८०२ को कॉलेज-कौंसिल ने उनकी यह 'भाखा'-मुंशी की माँग सहर्ष स्वीकार की। कहना न होगा कि इस पद पर लल्लूलाल की नियुक्ति हुई। कौंसिल ने २५ फ़रवरी, १८०२ को नागरी सुलेखक और 'भाखा'-मुंशी को १ अगस्त, १८०१ से ३१

---

[1] प्रो० वि०, हो०, मि०, जि० १, पृ० १२, इं० रे० डि०

जनवरी, १८०२ तक का पिछला वेतन दे देने की भी स्वीकृति दी इससे पता चलता है कि अब तक लल्लूलाल सा फिक मुंशी की हैसियत से कालेज में काम कर रहे थे

इस प्रकार अपने विभाग की व्यवस्था कर गिलक्राइस्ट निश्चिंत हुए और प्रतिदिन का कार्य-क्रम सुचारु रूप से चलने लगा।

संशोधित विवरण और अनुमान-पत्र के अनुसार कौंसिल ने हिंदुस्तानी पाठ्य पुस्तकों के लिए दस हज़ार सिक्का रुपए की स्वीकृति दी थी। इसमें से २६ मार्च, १८०२ को एक हज़ार सिक्का रुपए 'सिंहासन बत्तीसी' की पाँच सौ प्रतियों के मुद्रक लथियोर (लथोर?) को दे दिए गए। इसी वर्ष की १२ अप्रैल को 'चार दरवेश' की छपाई का मूल्य एक हज़ार तीन सौ तैंतीस रुपया भी चुका दिया गया। २६ अप्रैल को 'हिंदी मैनुअल' (गिलक्राइस्ट कृत) बेचने के संबंध में गिलक्राइस्ट को आज्ञा मिल गई। २४ मई को 'गुलिस्ताँ' की छपाई के एक हज़ार बासठ रुपए आठ आने और 'बैताल पच्चीसी' की छपाई के पाँच सौ रुपए भी चुका दिए गए। यह सब रुपया मिला कर एक साथ प्रेस को दिया गया।

'सिंहासन बत्तीसी' 'हिंदी मैनुअल' और 'बैताल पच्चीसी'

इस प्रकार जब एक ओर कॉलेज का कार्य दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था, तो दूसरी ओर कोर्ट का २७ जनवरी, १८०२ का लिखा हुआ एक पत्र वेलेज़ली को कलकत्ते में मिला जिसमें उन्हें एकदम कॉलेज तोड़ने की आज्ञा दी गई थी। अच्छी तरह से सोच-विचार करने के बाद वेलेज़ली ने ३१ दिसंबर, १८०३ तक कोर्ट की आज्ञा का पालन करना स्थगित रक्खा। इस का उल्लेख पहले हो चुका है। इसी बीच में ३१ मई, १८०२ को कौंसिल ने कॉलेज के विभिन्न विभागों में आवश्यक और व्यावहारिक रूप से कमी करने का निश्चय किया। और पहली जून से कॉलेज में काम करने वाले खानसामों, रसोइयों, खिदमतगारों, मशालचियों, फ़र्राशों, भिश्तियों, धोबियों, मेहतरों आदि की संख्या और उनके वेतनों में कमी करने के साथ-साथ कौंसिल ने फ़ारसी और हिंदुस्तानी विभागों के प्रधानाध्यापकों से पूछा कि प्रधान और सहायक मुंशी क्या काम करते हैं और क्या उनका विभागों में रहना बहुत ज़रूरी है। एन० बी० एडमॉन्स्टन तथा जे० बेली ने फ़ारसी विभाग और गिलक्राइस्ट ने हिंदुस्तानी विभाग की ओर से क्रमशः ६ और ७ जून, १८०२ को पत्र लिख कर प्रधान और सहायक मुंशियों की उपस्थिति अनिवार्य बताई। इन मुंशियों का कार्य विद्यार्थियों के लिए पाठ्य पुस्तकों के रचना-क्रम का निरीक्षण कर उन्हें शुद्ध करना, व्याकरण के विभिन्न विषयों के लिए संग्रह प्रस्तुत करना, दूसरे मुंशियों की देखभाल करना और किसी रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए नवागत मुंशी की परीक्षा लेना, और प्रधानाध्यापकों की सहायता करना तथा उनकी कठिनाइयाँ सुलझाना था। विद्यार्थी भी उनकी सहायता ले सकते थे। रविवार छोड़ कर प्रत्येक दिन ६ बजे सुबह से ५ बजे शाम तक उन्हें कॉलेज ही में रहना पड़ता था। गिलक्राइस्ट के 'हिंदुस्तानी प्रिंसिपिल्स' नामक ग्रंथ की रचना मुंशियों की सहायता से ही पूर्ण हो सकी थी। साथ ही मुंशी प्राय काहिल होते थे और काम से जी चुराते थे उनके लिए गिलक्राइस्ट को प्रतिदिन

कॉलेज की व्यवस्था में कमियाँ

आज्ञा-पत्र निकालने पड़ते थे। इन आज्ञा-पत्रों में मुंशियों को शिक्षकों के रूप में अपने कर्त्तव्य का उचित रूप से पालन करने के संबंध में जो शिक्षाएँ दी जाती थीं, वे व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हिंदुस्तानी में लिखी जाती थीं। प्रधानाध्यापक की अध्यक्षता में यह कार्य प्रधान और सहायक मुंशी ही किया करते थे। वे देशी अध्यापकों की डायरियों का निरीक्षण भी करते थे। परीक्षाओं का भार भी प्रायः इन्हीं दो मुंशियों पर रहता था। प्रधान मुंशी के अथक परिश्रम के ही कारण हिंदुस्तानी विभाग के अन्य समस्त मुंशियों ने रोमन तथा नागरी लिपियों और 'हिन्दी', अरबी और फ़ारसी व्याकरणों के सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। मीर बहादुर अली को गिलक्राइस्ट भारतवर्ष में हिंदुस्तानी भाषा का सर्वश्रेष्ठ विद्वान् समझते थे। तारिणीचरण मित्र हिंदुस्तानी के अच्छे विद्वान् होने के अतिरिक्त फ़ारसी और अँगरेज़ी का भी अच्छा ज्ञान रखते थे और गिलक्राइस्ट के रोमन-लिपि संबंधी सिद्धांत से पूर्णतया परिचित थे।

पुनर्निर्मित हिंदुस्तानी विभाग

इसलिए जब प्रधान और सहायक मुंशियों की उपस्थिति अनिवार्य समझी गई तो कॉलेज में और जगहों पर कमी कर कौंसिल ने ७ जून, १८०२ को हिंदुस्तानी विभाग का इस प्रकार पुनर्निर्माण करने का निश्चय किया :

अनुवादक	मीर शेर अली	...	२०० रु० मा०	
	काज़िम अली ख़ाँ	..	८० ,, ,,	
	मज़हर अली ख़ाँ	...	८० ,, ,,	३६०
मीर बहादुर अली, प्रधान मुंशी		...	२०० ,, ,,	
तारिणीचरण मित्र, सहायक मुंशी		...	१०० ,, ,,	
२० स्थायीरूप से नियुक्त मुंशी, प्रत्येक को ४० रु० मा०		....	८०० ,, ,,	
२० सर्टिफ़िकेट प्राप्त मुंशी, प्रत्येक को ३० रु० मा०		...	६०० ,, ,,	
श्री लाल कवि, 'भाखा'-मुंशी		...	५० ,, ,,	
क़िस्सा-ख़्वाँ		....	४० ,, ,,	
मुहम्मद (? महानंद), नागरी सुलेखक		....	५० ,, ,,	२२००

कोर्ट की नीति के फल-स्वरूप हिंदुस्तानी विभाग में इस समय कोई कमी न होकर कॉलेज के अन्य छोटे-छोटे कार्य-क्षेत्रों में बहुत-कुछ कमी हुई। किंतु गिलक्राइस्ट की बढ़ी हुई उमंगों के लिए भी भविष्य अधिक आशाजनक नहीं था।

'टेबिल्स ऐंड प्रिंसिपिल्स'

७ जून, १८०२ को कॉलेज की व्यवस्था में जो कमी की गई थी उससे एक ही दिन पहले, अर्थात् ६ जून, १८०२ को गिलक्राइस्ट ने अपने पत्र के साथ हिंदुस्तानी 'तालिका और सिद्धांत' ('टेबिल्स ऐंड प्रिंसिपिल्स') नामक रचना कॉलेज कौंसिल के पास प्रकाशन-अनुमति प्राप्त करने के लिए भेजी थी १४ जून के अधिवेशन में कौंसिल ने उसे लौटा

दिया और रचयिता को उसे प्रकाशित करने के अधिकार से वंचित रक्खा। किंतु गिलक्राइस्ट की सिफ़ारिश पर मीर अम्मन को पांच सौ सिक्का रुपए पारिश्रमिक रूप में देना स्वीकृत हुआ। उन्होंने 'चार दरवेश' का हिंदुस्तानी में अनुवाद किया था। इसके बाद विला और किस्सा-ख़ाँ की आवश्यकता न समझ उन्हें क्रमशः ३० और ३१ सितंबर १८०२ को कॉलेज से अलग कर दिया गया। वेतन के अतिरिक्त विला को लखनऊ तक जाने का ख़र्च और मिला। लेकिन इन सब बातों का यह तात्पर्य नहीं है कि आर्थिक बंधनों के सामने कौंसिल हिंदुस्तानी का महत्व भुला बैठी था। आवश्यकतानुसार वह हिंदुस्तानी विभाग के प्रधानाध्यापक को सदैव आर्थिक सहायता देती रहती थी। १३ नवंबर, १८०२ को गिलक्राइस्ट ने स्वरचित 'पालीग्लॉट' की एक नमूने की प्रति कौंसिल के पास निरीक्षणार्थ भेजी और संस्कृत के जिस पंडित ने उनकी सहायता की थी उसके लिए एक अनिश्चित अवधि तक तीस रुपया मासिक वेतन माँगा। कॉलेज कौंसिल ने उनका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर उनके कार्य की सराहना की। इतना ही नहीं, कार्य की अधिकता देख कर उसने २६ नवंबर, १८०२ को एर्जिनियर्स विभाग के श्रीयुत मकडूगल को सहायक हिंदुस्तानी प्रोफेसर भी नियुक्त किया। १२ जनवरी, १८०३ को गिलक्राइस्ट ने कौंसिल के पास एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी 'गुलिस्ताँ' का पूर्ण अनुवाद प्रकाशित करने में समर्थ हो सकने की सूचना दी। 'गुलिस्ताँ' और उसके साथ-साथ 'पद-नामा' का अनुवाद भी उन्होंने कौंसिल के पास भेजा था। वे चाहते थे कि 'गुलिस्ताँ' और 'चार दरवेश' के लिए जो पांच हज़ार रुपया नियत हुआ था, उसमें 'गुलिस्ताँ' और 'पदनामा' ख़रीद लिया जाय। फ़ी प्रति का मूल्य वैसे बत्तीस रुपया रक्खा गया था, लेकिन चूँकि गिलक्राइस्ट केवल 'गुलिस्ताँ' की एक प्रति का मूल्य ग्राहकों से पचीस रुपया लेना चाहते थे, इसलिए उन्होंने बत्तीस रुपए के स्थान पर कॉलेज द्वारा निर्धारित मूल्य लेना स्वीकार किया। 'चार दरवेश' के समाप्त होने की अभी कुछ महीनों तक आशा नहीं थी। साथ ही छपाई के कार्य में उन्हें इतना नुकसान उठाना पड़ रहा था कि कौंसिल की सहायता के बिना उनका आगे बढ़ाना कठिन ही था। व्यापारिक दृष्टिकोण से उनकी आशाओं पर तुषारापात हो चुका था। ऐसा भारी काम अपने ऊपर लेने की उनमें अब हिम्मत नहीं थी। वे चाहते थे कि जिस कार्य के लिए उन्होंने कौंसिल से किसी भी प्रकार की आर्थिक याचना नहीं की, उसके लिए वह आपत्ति के समय उनकी कुछ सहायता करे। उधर कुछ विद्यार्थियों ने भी उनका ऋण न चुकाया था। इन आर्थिक संकटों के कारण गिलक्राइस्ट को कौंसिल से सहायता की प्रार्थना करनी पड़ी। कौंसिल ने 'गुलिस्ताँ' और 'पदनामा' की सौ प्रतियाँ तीस रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से ख़रीदीं। गिलक्राइस्ट ने उसे इस कार्य के लिए धन्यवाद दिया। सच देखा जाय तो कौंसिल की आर्थिक सहायता के बिना गिलक्राइस्ट का हिंदुस्तानी-प्रचार और शिक्षा-कार्य का सूत्रपात भी न हो सकता था। यह कार्य कोर्ट के विरोधी रुख के होते हुए भी संपन्न हुआ।

'पौलीग्लॉट'

'स्टोरी टैलर'

३१ जनवरी, १८०३ को गिलक्राइस्ट ने फिर अपने 'दि हिंदी स्टोरी टैलर' के पूर्ण होने की सूचना दी और कौंसिल से 'चार दरवेश'

(अपूर्ण) के स्थान पर उसकी दो सौ प्रतियाँ ख़रीद लेने की प्रार्थना की। 'स्टोरी टैलर' तीन विभिन्न लिपियों में छापा गया था। अतः गिलक्राइस्ट ने मूल्य बारह रुपया रक्खा। हिंदुस्तानी प्रचार की दृष्टि से ग्रंथ की उपयोगिता देखते हुए वे इसे साधारण मूल्य समझते थे। और फिर 'गाइड', 'लिंग्विस्ट' के द्वितीय संस्करण, और 'एंटी-जार्गोनिस्ट' के लिए भी तो, यद्यपि ये कॉलेज से प्रकाशित होने वाले ग्रंथों की सूची में शामिल थे, सरकार या कॉलेज ने उन्हें कोई आर्थिक सहायता नहीं दी थी। 'चार दरवेश' के लिए नियत दो हज़ार रुपए में से एक हज़ार में 'स्टोरी टेलर' की सौ प्रतियाँ ख़रीद कर उनकी प्रार्थना स्वीकार की गई। इस प्रकार जहाँ तक हो सकता था सरकार या कालेज कौंसिल गिलक्राइस्ट की सहायता करने में कभी कोई संकोच न करती थी।

'एंटी-जार्गोनिस्ट'

कॉलेज की स्थापना हुए दो वर्ष पूर्ण हो चुके थे, और अब तीसरा चल रहा था। इस बीच में कॉलेज ने प्रधानाध्यापकों तथा अन्य अध्यापकों की सहायता से संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, बँगला, हिंदुस्तानी, तामिल मराठी आदि भाषाओं के अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए। हिंदुस्तानी ग्रंथों की रचना अँगरेज़ी और हिंदुस्तानी दोनों भाषाओं में हुई। अँगरेज़ी में हिंदुस्तानी ग्रंथों की रचना का श्रेय गिलक्राइस्ट को है। ४ अप्रैल, १८०३ तक हिंदुस्तानी भाषा के अनेक ग्रंथ निर्मित हुए या हो रहे थे।[1]

अप्रैल, १८०३ तक हिंदुस्तानी में निर्मित या निर्मित होने वाले ग्रंथ

तीन वर्ष से भी कम समय में ग्रंथों की रचना और विषयों की विविधता से कॉलेज कौंसिल की आयोजना और हिंदुस्तानी-प्रचार संबंधी उत्सुकता पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। गिलक्राइस्ट ने कुछ तो व्यापारिक और कुछ हिंदुस्तानी प्रचार के दृष्टिकोण से अपना सहयोग प्रदान किया। धन-संबंधी उनकी माँगें कौंसिल ने स्वीकार कीं। और यह सब कुछ कोर्ट की इच्छा के प्रतिकूल हो रहा था। मार्क्विस वेलेज़ली अभी भारतवर्ष ही में थे। हिंदुस्तानी विभाग में कार्य बहुत देख कर उन्होंने कैप्टेन मोअट (Mouat) को प्रथम सहायक के रूप में नियुक्त करने की कौंसिल को स्वीकृति भी दी। उनकी नियुक्ति २ मई, १८०३ को हुई। वैसे भी देखा जाय तो कॉलेज के इतिहास में उसके प्रथम तीन वर्ष हिंदुस्तानी भाषा-संबंधी रचनाओं की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहे। कॉलेज में रचनाएँ सदैव होती रहीं, किंतु जितनी रचनाएँ इन प्रथम तीन वर्षों में हुईं उतनी फिर आगे कभी न हुईं। इस उदासीनता के कारण अनेक थे जिनमें प्रधान कारण था कोर्ट के डाइरेक्टरों का विरोधी रुख। वेलेज़ली के चले जाने के बाद आगे आनेवाले गवर्नर-जनरलों का इस ओर उत्साह भी कम रहा। किंतु हिंदुस्तानी विभाग के प्रकाशन-कार्य के मंद पड़ जाने के कारण का सूत्रपात गिलक्राइस्ट के निम्नलिखित पत्र से हुआ, जो उन्होंने कालेज कौंसिल के मंत्री चार्ल्स रॉथमैन के नाम लिखा था :

कैप्टेन मोअट प्रथम सहायक के रूप में

---

[1] दे०, परिशिष्ट ड

कृपया कॉलेज कौंसिल को यह सूचना दे दीजिए कि सम्भवत दिसंबर मास में यूरोप लौट जाने के अपने विचार से मैं उसे इतनी जल्दी परिचित करा देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। इधर कुछ दिनों से मैं सिर दर्द, बुखार और कष्टप्रद जुकाम से निरंतर और अत्यंत पीड़ित रहता हूँ। मेरे इरादे का प्रधान उद्देश्य समय रहते अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना है। मेरे कारण विभाग में जो कठिनाई उत्पन्न होगी—देर से सूचित करने का यही परिणाम होता—उसका प्रबंध करने के लिए कॉलेज कौंसिल के पास यथेष्ट समय है, क्योंकि १८०३ के बाद बंगाल में ठहरना न तो मेरी अपनी अधिकाधिक कुशलता और न घर पर मेरे परिवार और निजी कारोबार के हित की दृष्टि से अच्छा होगा।"

गिलक्राइस्ट का यूरोप लौट जाने का विचार

गिलक्राइस्ट ने ११ अप्रैल, १८०३ को यह पत्र लिखा जो २ मई, १८०३ की बैठक में कॉलेज कौंसिल के सामने रक्खा गया। किंतु कौंसिल उस समय किसी अंतिम निर्णय पर न पहुँच सकी।

२० जून, १८०३ को गिलक्राइस्ट ने फिर एक पत्र कॉलेज कौंसिल के मंत्री के पास भेजा, जिसमें उन्होंने हिंदुस्तानी छापे में सुधार करने के सबंध में अपने प्रयत्नों का उल्लेख किया, और कौंसिल से आर्थिक सहायता की प्रार्थना की। साथ ही उन्होंने 'ओरिएंटल फैब्यूलिस्ट', 'हिंदी मोरल प्रीसेप्टर' आदि कुछ हिंदुस्तानी भाषा संबंधी रचनाओं के नमूने कौंसिल के निरीक्षण के लिए भेजे। इनके लिए भी उन्होंने पाँच हजार वार्षिक वाली रकम में से रुपया माँगा। हिंदुस्तानी ग्रंथकर्ता का श्रेय प्राप्त करने के उत्साह में वे कौंसिल द्वारा स्वीकृत धन प्राप्त किए बिना अपने पास से रुपया खर्च कर देते थे। क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास था कि हिंदुस्तानी विभाग की रचनाएँ हिंदुस्तानी भाषा को किसी दिन गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने में सफल हो सकेंगी, और देशी विद्वान् उसका उसी प्रकार आदर करेंगे जिस प्रकार वे किसी अन्य प्राचीन भारतीय भाषा का करते है। इँगलैंड में ग्रीक और लैटिन का बहुत कुछ आदर उनकी प्राचीनता के कारण था, न कि उपादेयता के कारण। उपयोग की दृष्टि से फ्रेंच भी बोलचाल की भाषा की अपेक्षा अधिक महत्व नहीं रखती थी। इसी तुलना के आधार पर वे हिंदुस्तानी भाषा को, यदि वह किसी असामान्य और अलक्षित कारण से दब न गई, उसी पद पर प्रतिष्ठित होते देखना चाहते थे जिस पद पर उनके अपने देश में अँगरेजी प्रतिष्ठित थी। स्वयं कौंसिल के कई सदस्य साहित्यिक अभिरुचि रखते थे। वे गिलक्राइस्टी प्रयत्नों का मूल्य निर्धारित करने के लिए पूर्ण रूप से समर्थ थे। उन्होंने कौंसिल की २७ जून, १८०३ की बैठक में १ फ़रवरी, १८०२ को स्वीकृत पाँच हज़ार रुपए की रकम में से एक हजार रुपया 'ओरिएंटल फैब्यूलिस्ट' और 'हिंदी मोरल प्रीसेप्टर' के लिए दिया। साथ ही उन्होंने उन नौ हिंदुस्तानी रचनाओं के लिए भी, जिनके नमूने गिलक्राइस्ट ने कौंसिल के निरीक्षणार्थ भेजे थे, पाँच हज़ार रुपए देना स्वीकार किया और गिलक्राइस्ट को प्रत्येक रचना की बीस-बीस प्रतियाँ कॉलेज को देने का आदेश दिया।

'ओरिएंटल फैब्यूलिस्ट' और 'मोरल प्रीसेप्टर'

कौंसिल की इसी बैठक में गिलक्राइस्ट का १५ जून, १८०३ का लिखा हुआ एक

गौर पत्र पेश हुआ। इस पत्र से उनकी हिंदुस्तानी भाषा की शुद्धता, उसके महत्व और आर्थिक सहायता के संबंध मे चिंता प्रकट होती है। गवर्नर-जनरल से मिलने के बाद उन्होंने यह पत्र लिखा था। उनका कहना है : "श्रीमान् गवर्नर-जनरल पहला अवसर मिलते ही इस विषय पर विचार करने को उत्सुक थे। मेरे भेजे हुए १ और २ सम्बद्ध वाउचरों से कॉलेज कौंसिल को स्वयं ज्ञात हो जायगा कि २१ जुलाई, १८०० से लेकर अब तक मैं आशा करता रहा हूँ कि सरकार के समस्त हिंदुस्तानी अनुवाद मेरे विभाग द्वारा होंगे। क्योंकि मेरा विश्वास है कि पूरे कोड के अत्यंत कठिन रेग्यूलेशनों में से एक के अनुवाद से मैंने उसके साथ पूर्ण न्याय किया था। यद्यपि उसके कारण मैंने अत्यंत कष्ट सहन किया और उस समय का अधिकांश भाग नष्ट किया जिसे दूसरे लोग आनंद मनाने और निद्रा देवी की गोद मे व्यतीत करते हैं, तो भी सरकार ने न तो मुझे आज तक कोई पारिश्रमिक ही दिया और न इतनी कठिनाइयों के बाद किए जाने वाले कार्य के लिए कोई सराहना ही की। अभी थोड़े समय पहले श्री फ़ॉर्स्टर ने जिस परिस्थिति में हिंदुस्तानी अनुवादक की हैसियत से काम किया है वह किसी भी व्यक्ति को, जिसे मेरी अपेक्षा अन्य किसी प्रसिद्ध पूर्व विद्याविद् की सफलता का कहीं अधिक कम ध्यान होता, एक ऐसी बात पर जोर देने से रोक देती जिससे उस समय उसकी सीमित आशाओं पर पानी फिर जाता। बुद्धिमान सरकार की उदारता और न्यायप्रियता से अब उन आपत्तियों का निवारण हो जाने पर अंत में सरकारी अनुवादों के वे अंश माँगना जो स्पष्ट रूप से हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर को मिलने चाहिए अपने व्यक्तिगत चरित्र के अयोग्य नहीं समझता। यदि एक विभिन्न परिस्थिति में रहनेवाले व्यक्ति की अपेक्षा एक ऐसा व्यक्ति जिसे सुंदर हिंदुस्तानी बोलने और लिखने का गर्व हो और जो उसका मुख्य कार्य हो सच्चा और सुंदर रूपांतर कर सकता है, तो मैं आशा करता हूँ कि कॉलेज कौंसिल श्री फ़ॉर्स्टर से भी कहीं अधिक अच्छा हिंदुस्तानी अनुवादक रखने की आज्ञा देने में किसी प्रकार का संकोच न करेगी, और प्रत्येक दृष्टिकोण से अपने लिए इतने बड़े दिलचस्प विषय के संबंध में इतने दिनों से गंभीरतापूर्वक शांति धारण किए रहने पर मुझे कुछ श्रेय देगी। जब कि सिविल सर्विस के बहुत कम कर्मचारी भारत की लोकप्रिय भाषा का ज्ञान रखते थे उस समय यह कोई चिंता की बात नहीं थी कि सरकारी रेग्यूलेशन किसने कब और किस प्रकार उपयोगी भाषा में रूपांतरित किए, और बहुत कुछ संभव है कि इस दृष्टि से श्री फ़ॉर्स्टर के रूपांतर जिस काम के लिए कराए गए थे अच्छे सिद्ध हों। विचारशील सरकार के खूब सोच-विचार कर लेने के पश्चात् स्थानीय बोलियों के संबंध में अब बातें दूसरी हैं, तथा दिन-प्रति-दिन उन्हें और भी ऐसा होना चाहिए जब कि हम देखते हैं कि कॉलेज के इस पक्ष में कम से कम ऐसे सौ विद्यार्थी भारत के विभिन्न अहातों में कॉलेज से भेजे गए हैं जो कई पूर्वीय भाषाएँ अच्छी तरह जानते हैं। ऐसी हालत में मेरा विचार है कि भारत की सर्वोच्च सरकारी संस्था की आज्ञा से भविष्य में प्रकाशित सभी पूर्वीय भाषाओं के रूपांतरों के रूप और उनकी रचना का ब्रिटिश भारत के वास्तविक हित, जाति

गिलक्राइस्ट का पत्र : कौंसिल द्वारा अस्वीकृत

के मान और कॉलेज संस्था के संरक्षक के उच्च पद और उसके समस्त सदस्यों के यश के साथ घनिष्ठ संबंध है। मैंने स्वयं श्रीमान् से कहा था कि मेरे विद्यार्थियों से ईसप् की कहानियों का अनुवाद कराने के बजाय, जैसा कि इस समय मैं कराता हूँ, उन्हें धीरे-धीरे सरकारी नियम अनुवाद करने के लिए देने चाहिए। इस प्रकार मैं उन्हें अभ्यास के लिए तीस या चालीस सर्वोत्तम चीज़ें दूँ और सरकार की ओर से स्वयं उन्हें अंत में शुद्ध कर ग्रहण करने योग्य बनाऊँ। उदार संरक्षक को मेरे विभाग की इस अध्ययन-पद्धति के लाभ इतने रुचे कि मुझे कोई सफ़ाई देने की ज़रूरत न पड़ी। इसलिए एक ऑरिएंटल कॉलेज की कौंसिल के सामने यह विषय विस्तार के साथ रखने में और भी बुद्धिमत्ता होगी—और एक ऐसी कौंसिल के सामने जो अपने स्थानीय और साहित्यिक ज्ञान के कारण एक ऐसी शिक्षा-आयोजना की बारीकियाँ तुरंत समझने योग्य हो सकेगी जो सरकारी कर्मचारियों के लिए इतनी फलदायक है। यदि मैं अब भी पूर्वीय भाषाशास्त्र का एकमात्र प्रोफ़ेसर रहता, जैसा कि मैं पहले था, तो जितना वेतन मुझे उस समय मिलता था, और जिसे कॉलेज संस्था ने किसी प्रकार से नहीं बढ़ाया, मैं उसी में संतुष्ट रहता और सरकार को इस विषय में कष्ट देना कभी न्यायोचित न समझता। उस समय कुछ ऐसी ही हालत में इसी कॉलेज के मुझसे बहुत छोटे पूर्व विद्याविदों को चाहे जो कुछ वेतन मिलता। मुझे मालूम हुआ है कि अरबी भाषा के प्रोफ़ेसर की हैसियत से मिलने वाले सोलह सौ मासिक वेतन के अतिरिक्त श्रीयुत बेली को अरबी अनुवादक की हैसियत से एक हज़ार रुपया और मिला करेगा। वह भी जब से कॉलेज स्थापित हुआ है तब से मिलेगा और भविष्य में भी निश्चित वेतन के रूप में मिलता रहेगा। तो क्या मेरा ऐसा ही कुछ सानुपातिक संरक्षण माँगना निंदनीय ठहराया जायगा? वह भी एक ऐसे विभाग के लिए जो, मेरे द्वारा शिक्षितों की गणना करने पर, अरबी की अपेक्षा भारतवर्ष के लिए दसगुना अधिक लाभदायक है, विशेष रूप से जब कि हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर को दी गई आर्थिक सहायता का घनिष्ठ संबंध सिविल सर्विस के कर्मचारियों को देशी जनता में मजिस्ट्रेट, व्यापारी, अफ़सर-माल इत्यादि की हैसियत से भली भाँति कार्य करने योग्य बनाने वाले कॉलेज के महान् सरकारी ध्येय से है। मैं तो यूरोप जाने वाला था। श्रीमान् ने कॉलेज में निश्चित समय के बाद तक मेरी उपस्थिति अनिवार्य समझ कर मुझे सम्मानित किया है। सरकारी इच्छा तुरत स्वीकार कर लेने के फलस्वरूप मुझे आशा है कि जब तक मैं इस देश में हूँ कॉलेज कौंसिल किसी अवसर पर मुझे मेरे सहयोगी प्रोफ़ेसर के बराबर वेतन देकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाएगी। यदि श्रीमान् गवर्नर-जनरल ने कॉलेज की स्थापना के समय फ़ारसी में नाम पैदा कर लेने पर भी मुझ से वह विभाग ले लेने की ओर ध्यान दिया होता, यदि मेरी अध्यक्षता में फ़ारसी की प्राथमिक शिक्षा हिंदुस्तानी के ही साथ जुड़ी होती और फ़ारसी और अरबी साहित्य के लिए बिल्कुल दूसरा ही प्रोफ़ेसर रक्खा जाता तो संभव था कि आज मैं कॉलेज की निगाहों में इतना नीचा ठहरता और मुझे इतना कम वेतन मिलता होता कि मुझे अपनी स्थिति कम से कम अरबी प्रोफ़ेसर के बराबर बनाने के लिए श्रीमान् या कॉलेज कौंसिल को कष्ट देने पर मजबूर होना पड़ता श्रीयुत बेली के विद्वान् भाषाविद् और सुयोग्य व्यक्ति होने में कोई संदेह

ीं है लेकिन तो भी मैं अपनी और उनकी स्थिति में इतना अंतर नहीं समझ सकता ि मेरे मुकाबले में उन्हें छब्बीस सौ रुपए मासिक मिलें। इस देश में मेरा अपेक्षाकृत अधिक समय का निवास, मेरी बहुत दिनों की नौकरी, पूर्वीय भाषाओं के ज्ञाता के रूप में री अनेक रचनाएँ, उस भाषा के संबंध में मेरे मूल प्रयास जिनके अध्ययन में देशी लोगों ने मेरी कोई सहायता नहीं की, और एक ग्रंथकर्त्ता के रूप में मेरा निरंतर उत्साह, ये सब बातें मुझे इस संस्था में उदराश्रय पाने का समुचित अधिकारी बनाती हैं।

अपनी भावनाओं और स्वार्थ से अलग, मेरा यह विश्वास है कि पूर्वीय भाषाओं की सबसे अधिक उपयोगी शाखाएँ निम्नलिखित रूप से विभाजित करने में कॉलेज को और भी लाभ पहुँचेगा :

संस्कृत, बंगाली और दूसरी हिंदवी बोलियाँ;
अरबी और फ़ारसी साहित्य;
हिंदुस्तानी और प्रारंभिक फ़ारसी।

इनके तीन प्रोफ़ेसर होने चाहिए, जो वेतन आदि की दृष्टि से बराबर हों। सुविधाओं और यहाँ तक कि सरकारी बचत की किसी पूर्ण, उदार और विस्तृत आयोजना के अंतर्गत मिलने वाले किसी अधिक वेतन के बदले में विभिन्न भाषाओं के सरकारी अनुवाद भी उन्हीं को दिए जाने चाहिए।"

इस पत्र पर विचार करने के बाद कौंसिल ने गिलक्राइस्ट को सूचना दी कि हिंदुस्तानी अनुवादक का कॉलेज से कोई संबंध न होने के कारण, प्रार्थनापत्र श्रीमान् गवर्नर-जनरल के पास नहीं भेजा सकता। कौंसिल के इस उत्तर के फलस्वरूप आर्थिक दृष्टि से गिलक्राइस्ट कितने हतोत्साह हुए होंगे यह सोचने की बात है। इससे पहले भी कौंसिल उनकी आर्थिक माँग अस्वीकार कर चुकी थी।

गिलक्राइस्ट का १६ अगस्त, १८०३ का एक दूसरा पत्र कौंसिल की बैठक में पेश हुआ जिसमें उन्होंने देशी विद्वानों के परिश्रम के लिए कौंसिल के उदार संरक्षण और उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए उनके वास्ते पुरस्कार माँगे। रचनाओं की सूची और ग्रंथकर्त्ताओं के संबंध में अपनी सिफ़ारिशें उन्होंने पत्र के साथ भेजीं। उन्होंने उसे पहले ही से चेता दिया था कि रकम देखने में तो बड़ी है किंतु ध्येय की महानता और ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के हित और उसकी स्थिरता की दृष्टि से भविष्य में उसके परिणाम पर विचार करने से यही रक़म छोटी लगेगी। श्रीमान् गवर्नर-जनरल से उन्होंने हिंदुस्तानी विभाग के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रकट करने की आशा की।

लेखकों को पुरस्कार देने के संबंध में गिलक्राइस्ट का पत्र : कौंसिल द्वारा अस्वीकृत। 'प्रेमसागर' और 'चंद्रावती'

लोकप्रिय हिंदुस्तानी भाषा का अध्ययन सरल बनाने और भारतवर्ष में प्रचार तथा प्राचीन हिंदुस्तानी रचनाओं के आधार पर निश्चित सिद्धांत स्थिर करने की दृष्टि से हिंदुस्तानी विभाग में तैयार या तैयार हो रहीं चवालीस पुस्तकों की गिलक्राइस्ट द्वारा प्रेषित सूची और सिफ़ारिशों[1] के उत्तर में कौंसिल के मंत्री ने गिलक्राइस्ट को लिखा:

---

[1] दे०, परिशिष्ट ५

कौंसिल का यह इरादा कभी नहीं था कि जो देशी विद्वान कॉलेज में नियमित वेतन पाते हैं उन्हें भी पुरस्कार दिया जाय, या अपूर्ण या प्रस्तावित रचनाओं के लिए पहले से ही पुरस्कार घोषित कर दिया जाय। कौंसिल असाधारण परिश्रमी और सुयोग्य व्यक्तियों को जिन्हें कॉलेज से अच्छा वेतन न मिल रहा हो, कभी-कभी विशेष अवसरों पर पुरस्कार देने के लिए तैयार है। जिन देशी विद्वानों को कोई वेतन नहीं मिलता वे २ नवंबर, १८०१ के प्रस्ताव के अंतर्गत आते हैं। लेकिन चूँकि गिलक्राइस्ट महोदय वेतन पाने वाले लेखकों की प्रत्येक और यहाँ तक कि अपूर्ण रचनाओं पर भी पुरस्कार देना चाहते हैं इसलिए कॉलेज कौंसिल उनके भेजे हुए हिसाब पर कोई विचार नहीं कर सकती।

इस पर गिलक्राइस्ट ने अपने ६ सितंबर, १८०३ के पत्र में कौंसिल के उक्त प्रस्ताव का उल्लेख किया जो इस प्रकार है: 'स्वीकृत हुआ कि देशी भाषाओं में साहित्यिक रचनाएँ करने पर देशी विद्वानों को पुरस्कार दिए जाया करेंगे।"

गिलक्राइस्ट का दूसरा पत्र : कौंसिल द्वारा स्वीकृत

इस पर अपना विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि मेरी सम्मति में वह प्रस्ताव कॉलेज के देशी विद्वानों के संबंध में भी लागू होता है। किंतु यदि कौंसिल की इच्छा दूसरी है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। बिना किसी प्रतिबंध के देशी विद्वानों को उनके परिश्रम के लिए पुरस्कार देने का मैंने जो निश्चय किया था उसके लिए मुझे दुःख नहीं है। साथ ही यदि अपूर्ण या प्रस्तावित रचनाओं को मैं विभाग की ध्येय-पूर्ति के लिए सहायक न समझता तो रचयिताओं को पुरस्कार देने की कभी सिफ़ारिश न करता। किंतु अब भविष्य में मैं कौंसिल की इच्छानुसार ही कार्य करूँगा।

प्रस्ताव के अनुसार गिलक्राइस्ट ने एक दूसरी सूची बना कर भेजी जो कौंसिल के १२ सितंबर, १८०३ के अधिवेशन में उनके पत्र के साथ ही पेश हुई। लगभग एक महीने बाद कौंसिल ने अपने निर्णय की सूचना उनके पास भेज दी।[1]

गिलक्राइस्ट द्वारा अपने ग्रंथों के संबंध में आर्थिक सहायता की याचना : कौंसिल द्वारा आंशिक स्वीकृति

कौंसिल का उत्तर पाने के बाद फिर प्रधान सरकारी मन्त्री जॉन लम्सडन के नाम भेजे हुए २६ अगस्त, १८०३ के पत्र में पूर्वीय ज्ञान-संबंधी अनेक ग्रंथों के रचयिता होने की हैसियत से गिलक्राइस्ट ने अपने लिए आर्थिक सहायता, चंदा, प्रोत्साहन आदि पाने की प्रार्थना की। कॉलेज की स्थापना के समय से वे निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशित कर चुके थे:

पहला भाग—प्रारंभिक रचनाएँ

१. 'दि ऐंटी-जार्गोनिस्ट, ए शॉर्ट इंट्रोडक्शन टु दि हिंदुस्तानी,' ... १६ रु०
२. 'दि ओरिएंटल लिंग्विस्ट', द्वितीय संस्करण, अनेक संशोधनों सहित, ... २० रु०

---

[1] दे०, परिशिष्ट ए

३. 'दि गाइड', क्यूओडेसीम, ... ८ रु०
४ 'ए न्यू थियरी ऑव पर्शियन वर्ब्स विथ् देअर हिंदुस्तानी सिनोनिम्स' १० रु०
५. 'दि हिंदी, अरेबिक टेबिल', हिंदुस्तानी और फ़ारसी भाषाओं में प्रयुक्त अरबी भाषा का ज्ञान सरल और सुगम बनाने के लिए। ... ४ रु०
६ } विभिन्न रूपों मे रोमन, नागरी और फ़ारसी अक्षर दिखलाने
७. } वाली दो लिपियाँ .. .. ३ रु०
६१ रु०

दूसरा भाग—साहित्यिक रचनाएँ

८. 'हिंदुस्तानी गुलिस्ताँ', दो जिल्द, अठपेजी .... ३२ रु०
९. 'हिंदी स्टोरी टैलर,' एक जिल्द, अठपेजी ... ... १२ रु०
१०. 'हिंदी मौरल प्रीसेप्टर', एक जिल्द, अठपेजी ... ... २० रु०
११. 'पालीग्लोट फ़ेबिल्स' अथवा अँगरेजी, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, हिंदुस्तानी, ब्रजभाषा और बँगला में ईसप् की कहानियाँ ... ९३ रु०
१५७ रु०

इन सब ग्रंथो के लिए विभिन्न रूपों में चार हज़ार रुपया तो मिल चुका था और छः हजार मिलने को था। यह रुपया 'गुलिस्ताँ', 'स्टोरी टैलर', 'प्रीसेप्टर' और 'टेबिल्स' नामक प्रकाशित और निम्नलिखित प्रकाशित होने वाले अत्यंत लाभदायक ग्रंथों के लिए सहायता के रूप में दिया था : 'हिंदुस्तानी कुरान', 'नस्र-इ-बेनज़ीर', 'अख़लाक़-इ-हिंदी', 'हातिमताई', 'तोता कहानी', 'बाग़-ओ-बहार', 'बकावली', 'अयार-दानिश' 'नक़्लियात' २ जिल्द, और 'प्रेमसागर'। यह दस हज़ार रुपया 'गुलिस्ताँ', 'स्टोरी टैलर', 'प्रीसेप्टर', और 'टेबिल्स' की सौ (१) प्रतियों की लागत से थोड़ा ही अधिक होता था। इन प्रकाशित ग्रंथों का व्यय प्रकाशित होनेवाले ग्रंथों के एक चौथाई व्यय से अधिक नहीं था। ऐसी हालत मे गिलक्राइस्ट महोदय कॉलेज कौंसिल से आर्थिक सहायता माँगने पर बाध्य हुए थे। वे केवल ग्रंथों की बिक्री पर निर्भर रहना चाहते थे। और यद्यपि कॉलेज कौंसिल ने हिंदुस्तानी साहित्य की माँग बढ़ा दी थी, तो भी इस साहित्य के लिए सीमित समाज होने के कारण पुस्तकों की बिक्री कम होती थी और छपाने का व्यय अत्यधिक होता था। फिर नए टाइप की भी उन्हें ज़रूरत थी। अतः गिलक्राइस्ट ने अपने ग्यारह ग्रंथो के लिए सरकार से आर्थिक सहायता और माँगी। किंतु कॉलेज कौंसिल के मंत्री रॉथमैन ने २४ अक्तूबर, १८०३ के पत्र मे प्रधान सरकारी मंत्री जॉन लम्सडन को १ फ़रवरी, १८०२ के प्रस्तावानुसार स्वीकृत किए गए एक हज़ार रुपए से अधिक की सहायता देना स्वीकार न किया।

५ नवंबर, १८०३ को गिलक्राइस्ट ने एक और पत्र कॉलेज कौंसिल के पास भेजा जिसमें उन्होंने हिंदुस्तानी विभाग में कार्य बढ़ जाने के कारण अस्सी और साठ रुपया मासिक वेतन पर दो सहायक प्रधान मुंशी माँगे। कौंसिल के स्वीकार न करने

दो सहायक प्रधान मुंशियों की माँग: कौंसिल द्वारा अस्वीकृत। ईसाई धर्म-पुस्तकों का अनुवाद

पर वे चाहते थे कि मेजर आर० डब्ल्यू० कोलब्रुक के पत्रानुसार मिर्ज़ा फ़ितरत को अस्सी रुपया मासिक वेतन दिया जाय या उन्हें स्वतंत्र रूप से मेजर कोलब्रुक को चार धर्म-पुस्तकों के फ़ारसी और हिंदुस्तानी रूपांतरों के संशोधन करने और दुहराने में सहायता देने की आज्ञा दी जाय। स्वयं गिलक्राइस्ट मिर्ज़ा फ़ितरत को भेजने के लिए तैयार थे। मेजर कोलब्रुक ने अपने ३ नवंबर, १८०३ वाले गिलक्राइस्ट के नाम पत्र में चार धर्म-पुस्तकों के फ़ारसी और हिंदुस्तानी अनुवाद का उल्लेख किया था। 'उत्पत्ति की पुस्तक' का अनुवाद तो उस समय समाप्त भी हो चुका था। कार्य जल्दी समाप्त करने के ध्येय से उन्होंने फ़ितरत की सहायता माँगी थी क्योंकि सरकार की ओर से भौगोलिक निरीक्षण-कार्य में व्यस्त रहने के कारण स्वयं उन्हें अधिक समय नहीं मिलता था। तब भी वे उसमें काफ़ी लगा चुके थे। ४ नवंबर, १८०३ के पत्र में उन्होंने कॉलेज कौंसिल के नाम भेजे गए पत्र के संबंध में गिलक्राइस्ट की सराहना की। अस्सी रुपए का वेतन वे फ़ितरत के लिए कम समझते थे क्योंकि इंगलैंड-यात्रा करने के कारण उन पर कुछ कर्ज़ हो गया था। चार महीने पहले फ़ितरत से उनका परिचय हुआ था। उस समय मेजर कोलब्रुक उनके लिए सौ रुपए और उसके बाद कार्य संतोषप्रद होने पर डेढ़ सौ रुपए माँगते थे। गिलक्राइस्ट ने मेजर कोलब्रुक के ये दोनों पत्र कौंसिल के पास भेज दिए थे। कौंसिल ने ७ नवंबर, १८०३ के अधिवेशन में दो सहायक प्रधान मुंशियों की माँग तो अस्वीकार की, किंतु मिर्ज़ा फ़ितरत को अस्सी रुपए मासिक वेतन देना निश्चित किया। मिर्ज़ा फ़ितरत को मेजर कोलब्रुक की सहायता के लिए उनके पास भेजने के संबंध में उसने गिलक्राइस्ट का विचार पसंद किया और मेजर कोलब्रुक को उनके कार्य का निरीक्षण करने के लिए धन्यवाद दिया। ५ दिसम्बर, १८०३ को कौंसिल ने निश्चित किया कि मेजर कोलब्रुक द्वारा तैयार किए गए चार धर्म-पुस्तकों के फ़ारसी और हिंदुस्तानी अनुवाद, जिन्हें उस समय गिलक्राइस्ट दुहरा रहे थे, कॉलेज के खर्च से और गिलक्राइस्ट की निगरानी में छापे जायँ। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि मार्क्विस वेलज़ली ईसाई धर्म के प्रचार-कार्य में दिलचस्पी लेते थे।

गिलक्राइस्ट के पद-त्याग करने और यूरोप लौट जाने के विचार का पहले उल्लेख किया जा चुका है। उनके एक पत्र से यह ज्ञात होता है कि श्रीमान् गवर्नर-जनरल के

गिलक्राइस्ट का त्याग-पत्र

अनुरोध करने पर उन्होंने अपना यूरोप जाना स्थगित कर दिया था। किंतु इधर उनकी कई आर्थिक माँगें कौंसिल ने अस्वीकृत ठहराई थीं। इससे उन्हें, जैसा उनके पत्रों से भी ज्ञात होता है, अत्यंत निराशा हुई होगी। पत्रों से उनके अस्वस्थ रहने का हाल भी मालूम होता है। संभवतः इन सब कारणों से उन्होंने यूरोप लौट जाने का अब दृढ़ निश्चय कर लिया था। कदाचित् उनके इस दृढ़ निश्चय का पता लग जाने पर ही हिंदुस्तानी विभाग के सहायक प्रोफ़ेसर कैप्टेन जे० मोअट ने १६ जनवरी, १८०४ के एक पत्र में कौंसिल से अपने सहायक प्रोफ़ेसर की हैसियत से किए गए कार्य का गवर्नर-जनरल से सिफ़ारिश करने की प्रार्थना की वे हिंदुस्तान में कुछ समय व्यतीत कर चुके थे उन्हें

हिंदुस्तानी भाषा का अच्छा ज्ञान था और भारतीय आचार विचारों से भी वे परिचित थे। इसलिए सब प्रकार से अपने को योग्य समझ कर वे आवश्यकता पड़ने और अवसर आने पर कौंसिल द्वारा हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर के पद पर नियुक्त होना चाहते थे। जनरल सर रॉबर्ट ऐबरक्रॉम्बी ने उनकी सिफ़ारिश की थी। २३ जनवरी, १८०४ को कौंसिल के मंत्री राथमैन ने उन्हें उत्तर देते हुए लिखा कि कौंसिल इसके लिए उपयुक्त अधिकार नहीं रखता। लेकिन समय आने पर उनकी योग्यता, परिश्रम आदि की सिफ़ारिश करने का उन्होंने कौंसिल की तरफ़ से वचन दिया।

ऐसा प्रतीत होता है कि गिलक्राइस्ट को कॉलेज के सम्बन्ध में कोर्ट के डाइरेक्टरों के रुख का पता नहीं था, और यदि था भी तो वे आवश्यकता से अधिक उत्साही थे। कोर्ट के डाइरेक्टरों के रुख पर उनकी दृष्टि रहती तो कदाचित् वे इतनी खर्चीली आयोजनाएँ कौंसिल के सम्मुख उपस्थित न करते और न उन्हें इतना निराश ही होना पड़ता।

अंत में उनका त्याग-पत्र कौंसिल के पास पहुँच ही गया। २६ फ़रवरी, १८०४ की बैठक में कौंसिल के मंत्री रॉथमैन के नाम गिलक्राइस्ट का २३ फ़रवरी, १८०४ का लिखा हुआ निम्नलिखित पत्र सदस्यों के सामने रक्खा गया :

"यकायक स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण किसी तैयार खड़े जहाज़ से यूरोप जाने के लिए मैं हिज़ एक्सेलेंसी दि मोस्ट नोबिल गवर्नर-जनरल से प्रार्थना करने पर बाध्य हुआ और तदनुसार उनकी आज्ञा प्राप्त करने में सफल हो सका हूँ। इसलिए सपरिषद् हिज़ एक्सलेंसी द्वारा स्थापित कॉलेज में श्रीमान् की कृपा से ग्रहण किए हुए हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर के पद से त्याग-पत्र देना मैं उचित समझता हूँ।

"कॉलेज कौंसिल को यह सूचना देने की मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि जिस 'कलकत्ता' नामक जहाज़ से मैं यूरोप-यात्रा कर रहा हूँ उसकी रवानगी की तारीख से मेरा पद-त्याग समझा जाय।

"मुझे दृढ़ विश्वास है कि इस अवसर पर कौंसिल मेरे कार्य के संबंध में, मेरे व्यवहार और परिश्रम के विषय में हिज़ एक्सेलेंसी दि पैट्रन ऐंड विज़िटर को जिस तरह अच्छा समझे लिखेगी। कृपया आप उसे मेरी यह हार्दिक प्रार्थना जता दें कि वह मेरी अंतिम विनती ऐसी आशा लेकर स्वीकार करे जिससे मुझे कोर्ट के ऑनरेबुल डाइरेक्टरों की उदाराशयता प्राप्त करने के लिए सपरिषद् हिज़ एक्सेलेंसी की सिफ़ारिश मिल जाय।

"मेरे त्याग-पत्र देने से केवल मेरी आर्थिक व्यवस्था को ही तुरंत जबरदस्त आघात नहीं पहुँचेगा वरन् इससे मेरी उस आशा पर पानी फिर जायगा जो मैंने श्रीमान् गवर्नर-जनरल के संरक्षण में कॉलेज में रहते हुए एक दीर्घ काल के साहित्यिक परिश्रम के बाद अंत में विश्राम ग्रहण कर अपने कुटुंब के साथ आराम से जीवन व्यतीत करने की लगा रक्खी थी। इस संबंध में मुझे विश्वास है कि इस समय अपने उस अत्यधिक व्यय की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए कौंसिल मुझे क्षमा करेगी जो कॉलेज के

स्थापना-काल से हिंदुस्तानी भाषा के अपने ग्रंथों के और इनसे ज्यादा उन्हें जो प्रेस में है प्रकाशित करने में हुआ है और जिन्हें मुझे अब एक बड़ी अनिश्चित और अव्यवस्थित हालत में छोड़ जाना पड़ रहा है।

"१८०३ के गत वर्ष में ही छपाई में मेरा तेईस हजार आठ सौ से अधिक रुपया खर्च हुआ। जल्दी करने के सिवाय और कोई चारा न होने के कारण मुझे जितना नुकसान हुआ है उसका मैं अनुमान नहीं लगा सकता। मुझे इस समय बहुत कम रुपया मिलेगा। मैं एक वर्ष और यहाँ रह जाता तो शायद मुझे मेरा सब रुपया मिल जाता।

"कॉलेज में पढ़ाए जाने के लिए निर्मित हुए अपने कई ग्रंथों के संबंध में मेरा कुछ खर्च हुआ है और मुझे 'दि डाइरेक्टरी' और 'कास्केट' नामक दो ग्रंथों की बिक्री का हिसाब देना है। ये दोनों ग्रंथ कॉलेज की संपत्ति हैं। लेकिन यह हिसाब साफ़ करने का भार मैंने अब अपने एजेंट मेसर्स माकिंटोश फ़ुल्टन ऐंड कंपनी को दे दिया है। सब ज़रूरी कागजात उनके पास हैं।

"कॉलेज के प्रेस और टाइप, साथ ही अपनी अपूर्ण रचनाएँ, और हिंदुस्तानी प्रेस इस समय मैं साधारण रूप में मेसर्स माकिंटोश फ़ुल्टन ऐंड कंपनी के मेल में डॉक्टर हंटर और श्री मैक्डूगल के प्रबंध और निरीक्षण में छोड़े जा रहा हूँ।"

कॉलेज कौंसिल ने उनका त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया और गिलक्राइस्ट की इच्छानुसार गवर्नर-जनरल से उनकी सिफ़ारिश करते हुए उनके हिंदुस्तानी ग्रंथों से कॉलेज के ध्येय की पूर्ति में विशेष रूप से सहायता मिलने का उल्लेख किया। गिलक्राइस्ट के पत्र और कौंसिल के प्रस्ताव की नकलें श्रीमान् विज़िटर के पास भी भेज दी गईं।

गिलक्राइस्ट के चले जाने के बाद उनकी इच्छानुसार हिंदुस्तानी व्याकरण और साहित्य के संबंध में उनकी समस्त रचनाएँ कॉलेज को भेंट में दी गईं। साथ ही भविष्य में भी उसे इस प्रकार की भेंट मिलने का वचन प्राप्त हुआ। कॉलेज कौंसिल ने इस संबंध में एजेंट को धन्यवाद दिया। ६ अगस्त, १८०४ को कौंसिल ने मेसर्स माकिंटोश फ़ुल्टन ऐंड कंपनी को हिंदुस्तानी रचनाओं के लिए पाँच हजार रुपए देने के अपने २७ जून, १८०३ के वचन के संबंध में लिखा। रचनाओं के नमूने गिलक्राइस्ट ने कौंसिल के निरीक्षणार्थ भेज दिए थे। उनमें से चार ग्रंथ प्रकाशित हो चुके थे जिनके नाम ये हैं: 'हिंदी स्टोरी टैलर' दूसरी जिल्द, 'अख्लाक़-इ-हिंदी', 'नस्र-इ-बेनजीर' और 'गुलबकावली'। इन चार ग्रंथों और 'शकुंतला नाटक' की सौ (१) प्रतियों की बिक्री से छयालीस सौ रुपया मिला था। इसलिए २७ जून, १८०३ के प्रस्तावानुसार कौंसिल ने पाँच हजार रुपया गिलक्राइस्ट के एजेंट को देना स्वीकार किया। भविष्य में प्रकाशित होने वाले अन्य ग्रंथों के लिए भी सहायता देने का वचन दिया। इस वचन के अनुसार ३१ अगस्त, १८०४ को कौंसिल ने 'चार दरवेश', 'हिदायतुल्इस्लाम', 'तोता कहानी' और 'हिंदुस्तानी डायलॉग्स' के लिए पाँच हजार रुपया देना स्वीकार किया और 'क़ुरान 'अ गार दानिश, 'शाविमताई' और प्रेमसागर' के लिए, जो प्रेस में थे, आर्थिक

सहायता देने का वचन दिया। पहले की तरह प्रत्येक ग्रंथ की बीस-तीस प्रतियाँ उसने कॉलेज के लिए लीं।

यहाँ गिलक्राइस्ट का भारत में साहित्यिक जीवन समाप्त हो जाता है। इसके बाद, जैसा कि उनके त्याग-पत्र से भी संकेत मिलता है, उनका कार्य-क्षेत्र लंदन रहा। किंतु भारत से जाने के बाद वे कोई नवीन रचना प्रकाशित न कर सके। वे केवल सिविलियन विद्यार्थियों को कोर्ट के ईस्ट इंडिया कॉलेज, हेलीबरी की नई आयोजना के अनुसार हिंदुस्तानी भाषा की सार्वजनिक रूप से शिक्षा देते रहे। वहाँ कोर्ट की ओर से उन्हें वेतन मिलता था। तत्कालीन ईस्ट इंडिया हाउस डिबेट्स में इन बातों का सविस्तार उल्लेख मिलता है।[१]

४

जेम्स मोअट

(जनवरी, १८०६—फरवरी, १८०८)

६ मई, १८०४ को जेम्स मोअट ने कॉलेज कौंसिल के मंत्री, चार्ल्स रॉथमैन, के नाम लिखे गए पत्र में हिंदुस्तानी विभाग के लिए 'भाखा'-मुंशी लल्लूलाल और सदल मिश्र पंडित की उपस्थिति अनावश्यक समझी। उनका यह पत्र कौंसिल की ११ जून, १८०४ की बैठक में पेश हुआ और १ जुलाई, १८०४ से उन्हें वेतन मिलना बंद हो गया। दूसरे शब्दों में, वे कॉलेज से अलग कर दिए गए[1]। किंतु 'भाखा'-ज्ञान की आवश्यकता कॉलेज में बराबर हुआ करती थी। इसलिए कॉलेज कौंसिल ने १७ अक्तूबर, १८०४ की बैठक में, जिसमें ब्यूकैनैन, हारिंगटन, और कोलब्रुक उपस्थित थे, लल्लूलाल (श्री लाल कवि) और सदल मिश्र को फिर कॉलेज में ले लिया और पिछली जुलाई के बाद का वेतन भी उन्हें दे दिया[2] क्योंकि वे जुलाई में ही रक्खे समझे गए। कौंसिल ने मीर बहादुर अली के स्थान पर मीर शेर अली को हिंदुस्तानी विभाग का प्रधान मुंशी और मीर बहादुर अली को हिंदुस्तानी अनुवादक नियुक्त किया।

लल्लूलाल और सदल मिश्र

यह पहले कहा जा चुका है कि कोर्ट के डाइरेक्टर वेलेज़्ली की आयोजना से सहमत नहीं थे। धन का अपव्यय समझ कर उन्होंने उसे कम करने की आज्ञा दी थी। इसी आज्ञा के अनुसार सरकारी मंत्री, टॉमस ब्राउन, ने १६ मई, १८०५ को एक पत्र लिखा। इस पत्र के साथ उन्होंने गवर्नर-जनरल की ३० अप्रैल, १८०५ की परिषद् की कारवाई के उद्धरण भी भेजे और १ जून, १८०५ से उन्हें कार्य रूप में परिणत करने का आदेश दिया। कोर्ट के नए आज्ञा-पत्र में बंबई और मद्रास के विद्यार्थियों को वापिस भेजने, भविष्य में उचित अवसर पर प्रोवोस्ट और वाइस-प्रोवोस्ट के स्थान पर दो हज़ार रुपया मासिक वेतन पर केवल एक प्रोवोस्ट रखने, आधुनिक भाषाओं और दर्शन के अध्यापकों का पद तोड़ने, अरबी और फ़ारसी के दो अलग-अलग प्रोफ़ेसरों के स्थान पर पंद्रह सौ रुपया मासिक वेतन पर केवल एक ही प्रोफ़ेसर रखने, हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर का वेतन पंद्रह सौ रुपया मासिक निर्धारित करने, फ़ारसी और हिंदुस्तानी भाषाओं के द्वितीय

कॉलेज की व्यवस्था में परिवर्तन

---

[1] प्रो० थि०, २६ अप्रैल, १८०१—४ सितंबर १८०५, हो०, मि०, जि० १, पृ० ११०, इं० रे० वि०

[2] वही, पृ० १८२

सहायक प्रोफ़ेसरों का पद तोड़ने और उनके स्थान पर एक हज़ार रुपया मासिक वेतन पर केवल एक ही सहायक प्रोफ़ेसर रखने, कॉलेज कौंसिल के मंत्री और पुस्तकाध्यक्ष नामक दो व्यक्तियों के स्थान पर चार सौ रुपया मासिक वेतन पर केवल एक ही व्यक्ति नियुक्त करने, विभिन्न भाषाओं के भारतीय अध्यापकों की सख्या में कमी करने और पुरस्कार-वितरण, परीक्षकों, नौकरों, इमारत आदि के अन्य व्यय में कमी करने का आदेश था। उन्होंने भारतीय अध्यापकों और उनकी साहित्यिक रचनाओं पर केवल चालीस हज़ार रुपए वार्षिक का सीमित व्यय निर्धारित किया। इस संबंध में पिछले चार वर्ष में औसत व्यय इतना ही हुआ था। इन चालीस हज़ार रुपयों का कॉलेज के सामान्य व्यय से कोई संबंध नहीं था, क्योंकि भारतीय साहित्य को प्रोत्साहन देने की नीति तो सरकार की हमेशा रही थी।

कॉलेज कौंसिल की २४ जून, १८०५ की बैठक में इस विषय पर विचार हुआ और सपरिषद् गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार जहाँ-तहाँ कमी करने का निश्चय हुआ। व्यावहारिक दृष्टिकोण से भारतीय अध्यापकों की संख्या में कमी की गई। किंतु फ़ारसी और हिंदुस्तानी विभागों के मुंशियों की संख्या में कोई कमी न की गई, क्योंकि यह कार्य तो पहले ही हो चुका था। हाँ, सर्टिफ़िकेट मुंशियों की संख्या अवश्य घटा दी गई। संस्कृत, बँगला और मराठी विभाग मिलाकर एक विभाग कर दिया गया। इस प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी कौंसिल ने सुविधानुसार कमियाँ कीं। हिंदुस्तानी विभाग का विवरण इस प्रकार है :

	१ जून, १८०५ को	प्रस्तावित कमी
प्रधान मुंशी	२०० रु०	कोई कमी नहीं
सहायक मुंशी	१०० रु०	,, ,,
दो मुंशी—प्रत्येक को ८० रु० मा०	१६० रु०	,, ,,
दो मुंशी— ,, ,, ६० ,, ,,	१२० रु०	,, ,,
बारह मुंशी ,, ,, ४० ,, ,,	४८० रु०	,, ,,
'भाखा' मुंशी	५० रु०	,, ,,
सत्ताईस सर्टिफ़िकेट मुंशी, प्रत्येक को ३० रु० मा०	८१० रु०	१६ सर्टिफ़िकेट मुंशी प्रत्येक को ३० रु० मा०-४८० रु०
	१९२० रु०	१५९० रु०
		कुल कमी—३३० रु०

हिंदुस्तानी अनुवादक

१ हिंदुस्तानी अनुवादक	२०० रु०	४ हिंदुस्तानी अनुवादक, प्रत्येक को ८० रु० मा०
३ ,, ,, प्रत्येक को ८० रु० मा०	२४० रु०	३०२ रु०
	४४० रु०	कुल कमी १२० रु०

ये हिंदुस्तानी अनुवादक बड़ी दूर-दूर से बुलाए गए थे। इसलिए उन्हें एकदम न हटाया जा सका। किंतु कौंसिल ने भविष्य में नए अनुवादक न रखने का निश्चय किया। नागरी सुलेखक पहले की भाँति ही रहने दिया गया। इसके अतिरिक्त कौंसिल ने हिंदुस्तानी विभाग के क्लर्कों तथा अन्य नौकरों की संख्या और उनके वेतनों में कमियाँ कीं।[1]

२५ जुलाई, १८०५ के सरकारी पत्र में नए परिवर्तन स्वीकृत हुए। कौंसिल को उन्हें तुरत कार्य रूप में परिणत करने की इच्छा थी, किंतु प्रोवोस्ट के बीमार पड़ जाने से प्रस्तावित कमियाँ तुरत ही कार्यान्वित न हो सकीं। इसलिए २ सितंबर, १८०५ को कौंसिल ने संबंधित व्यक्तियों को सूचित करने और सितंबर के शुरू से नई आयोजना कार्यान्वित करने का प्रस्ताव स्वीकार किया।

प्रधानाध्यापक के पद पर मोअट की नियुक्ति

गिलक्राइस्ट के बाद अभी तक हिंदुस्तानी भाषा के प्रोफ़ेसर की नियुक्ति नहीं हुई थी। ७ अगस्त, १८०५ को कौंसिल ने इस आशय का पत्र सपरिषद् गवर्नर-जनरल को लिखा। द्वितीय सहायक प्रोफ़ेसर का पद तोड़ना निश्चित हो ही चुका था। किंतु कॉलेज कौंसिल यह पद अभी थोड़े दिन और बनाए रखना और हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर की नियुक्ति तक एन्साइन मैकडूगल को द्वितीय सहायक के रूप में स्थित रखना चाहती थी। फिर स्वयं ही इस संबंध में निर्णय कर उसने सपरिषद् गवर्नर-जनरल को सूचना दी कि गिलक्राइस्ट के बाद प्रथम सहायक कैप्टेन मोअट स्थानापन्न प्रोफ़ेसर की हैसियत से और द्वितीय सहायक मैकडूगल प्रथम सहायक की हैसियत से अच्छा कार्य कर रहे हैं और इन दोनों के परिश्रम से कॉलेज को यथेष्ट लाभ पहुँचा है।[2] १ जनवरी, १८०६ को मोअट के संबंध में परिषद् के उप-सभापति ने अपनी स्वीकृति दे दी।[3]

अन्य परिवर्तन

कॉलेज कौंसिल की १६ सितंबर, १८०५ की बैठक में हिंदुस्तानी और फ़ारसी विभाग के कर्मचारियों की संख्या, वेतन आदि पर विचार किया गया। २५ जुलाई को सरकार उसके प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी थी और सितंबर मास के प्रारंभ से वे कार्यान्वित होने वाले थे। इस समय कॉलेज कौंसिल ने निश्चित किया कि :

प्रधान और द्वितीय मुंशी का वेतन क्रमशः २०० रु० और १०० रु०।

दो मुंशी—प्रत्येक को ८० रु० मा०।

दो मुंशी—प्रत्येक को ६० रु० मा०।

इन मुंशियों का कर्त्तव्य प्रोफ़ेसर और सहायक प्रोफ़ेसर की सहायता करना, विद्यार्थियों के लिए अभ्यास तैयार करना तथा अन्य आवश्यक कार्य करना था।

---

[1] वही, पृ० ४०६-४२१

[2] वही, पृ० ४६३

[3] फ़ो० वि०, १९ सितंबर १८०५ १७ जनवरी, १८०६ होम मि० वि० २ पृ० ८९, इ० रे० वि०

बारह मुंशी--प्रत्येक को ४० रु० मा० ।

र मुंशियों का कार्य विद्यार्थियों को फ़ारसी और हिंदुस्तानी भाषाएँ पढ़ाना था। एक द्यार्थी के लिए एक मुंशी नियुक्त हुआ।

तीस रुपया मासिक वेतन पाने वाले मुंशी कॉलेज के अस्थायी विभाग में रक्खे गए। इनकी संख्या विद्यार्थियों की संख्या पर निर्भर रहती थी।

'भाखा' पढ़ाने के लिए 'भाखा'-मुंशी की आवश्यकता न होने पर उन्हें हिंदुस्तानी अनुवादकों के साथ रक्खा गया। उपयुक्त अवसर पर उन्हें कॉलेज से अलग कर दिया जा सकता था।

अस्थायी विभाग के मुंशी भी साहित्यिक कार्य करने और पिछली ३० अप्रैल को स्वीकृत चालीस हज़ार रुपए की रक़म में से पुरस्कार पाने के अधिकारी थे।

इन सब प्रस्तावों की सूचना हिंदुस्तानी विभाग को दे दी गई और प्रस्तावानुसार उससे पूरा विवरण माँगा।[1]

द्वितीय सहायक (?) मैक्डूगल के बीमार हो जाने से हिंदुस्तानी विभाग में बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई। इसी दिन अर्थात् २३ सितंबर को कौंसिल ने परिषद् के उप सभापति ऑन० सर जॉर्ज बार्लो को एक पत्र लिखा और मैक्डूगल के अच्छे होने तक एक सहायक माँगा। वेतन का निर्णय उप-सभापति पर ही छोड़ दिया गया। साथ ही कौंसिल ने हिंदुस्तानी भाषा के अच्छे जानकार विलियम हंटर की सिफ़ारिश की। उस समय हिंदुस्तानी विभाग में विद्यार्थियों की संख्या इस प्रकार थी :

कैप्टेन मोअट के साथ—१४
मैक्डूगल के साथ—१४
नए दाख़िल हुए—१४

२६ सितंबर, १८०५ को उप-सभापति ने अपनी स्वीकृति के साथ-साथ वेतन आठ सौ सिक्का रुपया मासिक वेतन नियत किया। ३१ दिसंबर, १८०५ को मैक्डूगल के वापिस आ जाने की सूचना कौंसिल ने परिषद् के उप-सभापति जॉर्ज उडनी को दी। इसके बाद विलियम हंटर सहायक न रहे।

१६ सितंबर के प्रस्तावानुसार कैप्टेन मोअट ने अपने विभाग के भारतीय अध्यापकों का विवरण भेजा जो कौंसिल की ३० सितंबर, १८०५ की बैठक में पेश हुआ :

	सि० रु०	कार्य
मीर शेर अली, प्रधान मुंशी	२००	'तवारीख़-इ-ख़ुलासतुल-हिंद' आदि का अनुवाद
तारिणीचरण मित्र, द्वितीय मुंशी	१००	हिंदुस्तानी प्रेस में

---

[1] वही, पृ० ४०-४१

	सि० रु०	कार्य
मीर बहादुर अली	८०	अनुवादक
मिर्ज़ा काज़िम अली	८०	
मज़हर अली खाँ	८०	
मिर्ज़ा फ़ितरत	८०	
मीर अम्मन	८०	डोरिन्
मौ० मुहम्मद वाजिद	८०	मौकूटन
मुर्तुज़ा खाँ	६०	मैकडूगल
यूसुफ़ अली	६०	सरिश्तेदार
महानद पंडित	५०	नागरी सुलेखक
श्री लाल कवि	५०	हिंदुस्तानी प्रेस, आदि

इसके अतिरिक्त मुहम्मद सादिक़, मीर मसूर अली, बशरुद्दीन, ख़लील ख़ाँ, मुहम्मद तक़ी, ग़ुलाम ग़ौस, ग़ुलाम अली, नजरुल्लाह, मुहिब अली, ग़ुलाम नक़्शबन्द, ग़ुलाम सुभान, मौलवी कमालुद्दीन—प्रत्येक को चालीस रुपए मासिक मिलते थे—गॉर्डन्, वालपोल, पैरी आदि विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। ये सब स्थायी विभाग के अध्यापक थे। देवीप्रसाद तथा अन्य छब्बीस अस्थायी विभाग के अथवा सर्टिफ़िकेट मुंशी थे। प्रत्येक सर्टिफ़िकेट मुंशी को तीस रुपया मासिक वेतन मिलता था। एक अध्यापक एक विद्यार्थी के लिए नियुक्त था। हिंदुस्तानी का कुल व्यय दो हजार दो सौ साठ रुपया होता था। कौंसिल ने हिंदुस्तानी विभाग की यह व्यवस्था स्वीकार की और फ़ारसी विभाग के विद्यार्थियों को पढ़ाने वाले मुंशी फ़ारसी विभाग मे वापिस बुला लिए।[1]

कैप्टेन मोअट चाहते थे कि प्रधान मुंशी शेर अली उनके यहाँ, और फिर नियत समय पर कॉलेज में, उपस्थित हों। किन्तु शेर अली से ऐसा न हो सका। इसलिए मोअट ने कौंसिल से उनके कर्त्तव्य-पालन न करने और सुस्ती की शिकायत और उनके स्थान पर मीर काज़िम अली की सिफ़ारिश की। किन्तु कौंसिल का निर्णय शेर अली के पक्ष मे हुआ, क्योंकि शेर अली से सुबह नौ बजे गार्डन हाउस पहुँचने की आशा नहीं की जा सकती थी। जो मुंशी विद्यार्थियो को नही पढ़ाते थे उनके पहुँचने का स्थान कॉलेज हॉल था जहाँ २३ सितंबर के नियमानुसार मंगलवार, बृहस्पतिवार और शनिवार को हिंदुस्तानी पर व्याख्यान दिए जाते थे।

४ जून, १८०६ की बैठक में कौंसिल ने मुंशी मीर अम्मन को उनकी इच्छानुसार चार महीने का वेतन देकर कॉलेज से अलग कर दिया। इसी बैठक में कौंसिल ने फ़ारसी और हिंदुस्तानी दोनो भाषाएँ न पढ़ा सकने वाले अस्थायी या स्थायी विभाग के मुंशियो को कम वेतन देने का निश्चय किया।

गिलक्राइस्ट के बाद कॉलेज लगभग दो वर्ष तक, कुछ परिवर्तनों के अतिरिक्त,

---

[1] वही, पृ० ४९-५०

पहले की तरह चलता रहा। किंतु १८०६ में कालेज के जीवन की गति फिर बदली डाइरेक्टरों के २ सितंबर, १८०३ के पत्र का उत्तर भेज दिया गया था। कॉलेज की आयोजना में प्रस्तावित कमियों पर इस पत्र में विचार किया गया था। २१ मई, १८०६ के पत्र में डाइरेक्टरों ने लिखा था—"इस सम्बन्ध में आपकी बातों पर सूक्ष्म रूप से विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अच्छी तरह सोच-विचार कर लेने के बाद ही हमने इस देश (इँगलैंड) में एक बड़ी संस्था स्थापित करने का निश्चय किया है। कंपनी के जो कर्मचारी भारतवर्ष भेजे जाएँगे, उन्हें पूर्वीय साहित्य और यूरोपीय ज्ञान की शिक्षा देने का पहले यहीं भरसक प्रयत्न किया जायगा। किंतु यदि वे पूर्वीय साहित्य की समुचित शिक्षा यहाँ प्राप्त न कर सकेंगे तब उनके लिए भारतवर्ष में एक संस्था की आवश्यकता होगी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कॉलेज बनाए रक्खा जा सकता है। और हमारा यह निर्णय है कि कलकत्ते का कॉलेज केवल इसी उद्देश्य-पूर्ति का साधन रहेगा। इस सीमित उपयोगिता की दृष्टि से उस पर अधिक धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं है। किंतु साथ ही हमारी यह भी हार्दिक इच्छा है कि पूर्वीय साहित्य के देशी विद्वानों को हर प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाय, उनका कॉलेज के साथ संबंध बनाए रक्खा जाय, और विद्यार्थियों को पूर्वीय भाषाओं की शिक्षा देने के लिए उनकी प्रतिभा का भरपूर उपयोग किया जाय। हमारी इच्छा यह है कि यहाँ की संस्था में शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद कंपनी का प्रत्येक कर्मचारी (राइटर) केवल पूर्वीय भाषाओं की शिक्षा प्राप्त करने के लिए कलकत्ते के कॉलेज में एक वर्ष और व्यतीत करे। इसलिए आपने अपने ५ जून के पत्र में जो कमियाँ निर्दिष्ट की हैं, कॉलेज को उससे भी अधिक छोटा रूप दिया जा सकता है। हमारा सिद्धान्त ध्यान में रखते हुए प्रोवोस्ट और वाइस-प्रोवोस्ट की कोई आवश्यकता नहीं है। अनुशासन की देखरेख प्रोफ़ेसर लोग ही अथवा कभी-कभी गवर्नर-जनरल या उनकी परिषद् के सदस्य कर सकते हैं। विद्यार्थियों की संख्या कम हो जाने से मुंशियों की संख्या में भी कमी की जा सकती है। सहायक प्रोफ़ेसर की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। इनके साथ-साथ पुरस्कार-वितरण, मकान-किराया, रसोईघर आदि के व्यय में काफ़ी कमी की जाने की गुंजायश है। हमारी सम्मति में प्रोफेसरों और मुंशियों की निम्नलिखित व्यवस्था ठीक रहेगी :

	सि० रु०
अरबी और फ़ारसी के प्रोफ़ेसर का वेतन, मकान-किराया आदि—	१८,०००- वार्षिक
हिंदुस्तानी ,, ,,	१२,०००- ,,
बँगला और संस्कृत का अध्यापक ,, ,,	१२,००० ,,
मुंशी, सुलेखक आदि ,, ,,	३३,००० ,,

प्रधान मुंशियों और पंडितों का वेतन आजकल की भाँति दो सौ रुपए मासिक ही रहेगा। यदि विद्यार्थियों के लिए मकान-किराया, पुरस्कार, छपाई आदि में कमी करके कुल व्यय जोड़ा जाय तो निस्संदेह कॉलेज का कुल व्यय एक लाख पचास हज़ार वार्षिक के अंदर रक्खा जा सकता है हमने अपने विचारों की केवल रूपरेखा मात्र

आपके सामने रक्खी है उचित स्थलों पर की गई और भी कमियों का हम स्वागत करेंगे और यहाँ की संस्था में पूर्वीय ज्ञान की आवश्यकतावश आप एक फ़ारसी और एक हिंदुस्तानी मुंशी तीन या उससे अधिक वर्षों के लिए भेज दीजिए। किफ़ायत का ख्याल रखते हुए आप ही उनका वेतन और राह-खर्च ते कर दें। हमारे विचार से अनुशासन की देखरेख करने वाली कमेटी के लिए अरबी और फ़ारसी के प्रोफ़ेसर के साथ-साथ हारिंगटन और कोलब्रुक उपयुक्त व्यक्ति होंगे। उनके बाद भी कंपनी के कर्मचारियों में से उपयुक्त व्यक्ति मिलना कठिन न होगा। अबू तालिब नामक एक मुंशी पहले यहाँ इँगलैंड में थे। हमने उनकी विद्वत्ता के संबंध में अच्छी सूचना प्राप्त की है। यदि वे बंगाल में हों और यहाँ के कॉलिज में नौकरी करना चाहें तो हम उन्हें लेना पसन्द करेंगे।"

प्रधान सरकारी मंत्री, टॉमस ब्राउन, ने ४ दिसंबर, १८०६ को डाइरेक्टरों का पत्र कौंसिल के पास विचारार्थ भेजा। २४ दिसंबर, १८०६ को कौंसिल के सदस्यों ने उस पर विचार किया। टॉमस ब्राउन ने अपने पत्र में सपरिषद् गवर्नर-जनरल की इस इच्छा का संकेत दे दिया था कि कॉलिज की प्रस्तावित कमी ३१ दिसंबर, १८०६ से कार्य रूप में परिणत हो जानी चाहिए और नए परिवर्तनों के अनुसार नए नियम बनाए जायँ। सपरिषद् गवर्नर-जनरल के आदेशानुसार और सब पहलुओं पर विचार करते हुए कौंसिल ने आयोजना में जो कमियाँ कीं उनका विवरण इस प्रकार है :

दिसंबर, १८०६ की व्यवस्था

फ़ारसी विभाग	..		११६० रु०	
अरबी ,,	....		४५० ,,	—१६१० रु०
हिंदुस्तानी ,,	...	स्थायी	१४८० ,,	
		अस्थायी	८७० ,,	—२३५० ,,
बँगला इत्यादि का विभाग		स्थायी	८०० ,,	
		अस्थायी	३३० ,,	—११३० ,,
फ़ारसी पुस्तकाध्यक्ष	...			२० ,,
सुलेखक	..			४०० ,,
नौकर	...			१०७ ,,
				५६१७ रु०

प्रस्तावित कमियाँ

स्थायी विभाग—

अरबी विभाग—एक मुंशी हटाने पर		....		२५० रु०
फ़ारसी ,, —एक मुंशी, ८० रु० मा०, और एक मुंशी, ६० रु० मा०, को हटाने पर		....		१४० ,,
हिंदुस्तानी ,, —	,,	,,	१४० ,,	
दो अनुवादक हटाने पर	,,	,,	१६० ,,	—३०० रु०
तीन सुलेखक	,,	,,		१५० ,,
				८४० रु०

स्थायी विभाग—

फ़ारसी और हिंदुस्तानी दोनों विभागों में एक विद्यार्थी के लिए एक ही मुंशी की नियुक्ति करने पर ...	....२७० रु० का अंतर (अब से)	
विद्यार्थियों की संख्या कम होने पर ...	...२४०,, ५१० रु०	१३५० रु०
देशी कर्मचारियों की संख्या कम होने पर		४२६७ रु०

नई व्यवस्था

देशी कर्मचारियों की संख्या कम होने पर—४२६७ रु० मा०	...	५१,२०४ वार्षिक
मकान-किराया—६०० रु० मा०	...	७२०० ,,
पदक और पुरस्कार के लिए पुस्तकें	....	५००० ,,
छपाई, देशी लेखकों को पुरस्कार आदि विशेष अवसरों के लिए	...	२०००० ,,
अरबी और फ़ारसी का प्रोफ़ेसर—१५०० रु० मा० ..		१८००० ,,
हिंदुस्तानी का प्रोफ़ेसर—१००० रु० मा०	....	१२००० ,,
बँगला आदि का प्रोफ़ेसर—१००० रु० मा०	....	१२००० ,,
मंत्री और पुस्तकाध्यक्ष ...	...	१२००० ,,
दो परीक्षक, प्रत्येक को ५०० रु० मा०	...	१२००० ,,
		१,४६,४०४ रु०

कॉलेज की यह नई आयोजना २४ दिसंबर, १८०६ को सपरिषद् गवर्नर-जनरल के पास भेज दी गई। कौंसिल की सम्मति में एक लाख पचास हज़ार से कम में संस्था का कार्य सुचारु रूप से नहीं चलाया जा सकता था, इंगलैंड के कॉलेज में पहले से शिक्षा देने पर भी। मंत्री, पुस्तकाध्यक्ष और दो परीक्षकों का वेतन उन्होंने कार्य की अधिकता देख कर बढ़ा दिया था। नई आयोजना के साथ-साथ कौंसिल ने २३ दिसंबर, १८०६ का 'ए० डी० १८०६ रेग्यूलेशन' भी सपरिषद् गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए भेजा दिया।[1] इस रेग्यूलेशन के अंतर्गत फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के विधान का द्वितीय परिच्छेद २१ जनवरी, १८०७ को सपरिषद् गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए भेजा गया। १२ फ़रवरी, १८०७ को गवर्नर-जनरल ने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी। पहला परिच्छेद १० अप्रैल, १८०१ को स्वीकृत हुआ था।[2]

कॉलेज के विधान का द्वितीय परिच्छेद

गवर्नर-जनरल ने ३१ दिसंबर, १८०६ को ऊपर की आयोजना पर अपनी स्वीकृति दे दी। कौंसिल ने प्रोवोस्ट का पद बनाए रखने की सिफ़ारिश की थी। किंतु कोर्ट के डाइरेक्टरों की आज्ञा के सामने वे इस संबंध में कुछ करने के लिए असमर्थ थे। नई व्यवस्था गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार ३१ दिसंबर, १८०६ को कार्यान्वित हुई। १ जनवरी, १८०७ को कोलब्रुक कॉलेज कौंसिल के सभापति नियुक्त हुए।

१ जनवरी, १८०७ से हिंदुस्तानी विभाग की व्यवस्था

कैप्टेन मोअट, हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर ...	१००० रु० मा०
प्रधान मुंशी	२०० ,, ,,
द्वितीय मुंशी	१०० ,, ,,
१ मुंशी	८० ,, ,,
१ मुंशी	६० ,, ,,
१२ मुंशी, प्रत्येक को ४० रु० मा० ...	४८० ,, ,,
२ अनुवादक, प्रत्येक को ८० रु० मा०	१६० ,, ,,
१ 'भाखा'-मुंशी	५० ,, ,,
१ नागरी सुलेखक	५० ,, ,, [1]
	२१८० रु०

आवश्यकता न रहने पर दोनों अनुवादक अलग कर दिए जा सकते थे। इस नई व्यवस्था का विवरण कौंसिल ने गवर्नर-जनरल के पास भेज दिया। समय-समय पर और भी छोटे-छोटे परिवर्तन होते थे। मिर्ज़ा अबू तालिब के अतिरिक्त हिंदुस्तानी और फ़ारसी पढ़ाने के लिए मीर अब्दुल अली छः सौ पौंड वार्षिक वेतन और राह-खर्च पर हर्टफ़र्ड कॉलेज भेजे गए। इसी प्रकार बाद को मिर्ज़ा खलील भी भेजे गए थे। ये अरबी, फ़ारसी और हिंदुस्तानी जानते थे।

गिलक्राइस्ट के बाद २० सितंबर, १८०४ को फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों द्वारा रचित पुस्तकों की सूची कौंसिल के सामने पेश हुई। इस सूची में उन पुस्तकों का उल्लेख है जो गत वर्ष प्रकाशित हो चुकी थीं या होने वाली थीं।[2] इसी सूची के साथ फ़ारसी, अरबी, बँगला, मराठी, उड़िया, तामिल और मलय भाषाओं में रचित अथवा रची जाने वाली पुस्तकों की सूची भी दी गई थी। इसी वर्ष विद्यार्थियों द्वारा वार्षिकोत्सवों पर पठित फ़ारसी, हिंदुस्तानी, अरबी और बँगला की थीसिसों का संग्रह प्रकाशित हुआ। अरबी और संस्कृत के प्रधानाध्यापकों के अरबी और संस्कृत में भाषण भी संग्रह में दे दिए गए थे। टाइप में भी अनेक सुधार हुए। विल्किन्स द्वारा निर्मित

रचनाएँ तथा टाइप

[1] वही, पृ० २२१ २१०

[2] दे०, परिशिष्ट को

स्तालीक टाइप में विराम-चिन्ह बनाए गए। साथ ही अरबी और फारसी ध्वनियाँ प्रकट करने वाले नागरी अक्षरों और नागरी टाइप में भी विराम-चिन्हों का निर्माण हुआ। गिलक्राइस्ट ने अरबी, फ़ारसी और नागरी अक्षरों के लिए रोमन लिपि अपनाई थी। इन सब सुधारों में गिलक्राइस्ट का काफ़ी हाथ था। विलियम कैरे ने संस्कृत और बँगला के टाइप तैयार किए। इस संबंध में ये तथा इनके पूर्ववर्ती विद्वान् भारतीय भाषाओं के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे।[1]

२१ फ़रवरी, १८०५ को विलियम हंटर (डॉ॰) ने सरकारी प्रधान मंत्री, लम्सडन, को प्रस्तावित 'हिंदुस्तानी-इँगलिश-डिक्शनरी' की आयोजना से परिचित कराया। (पब्लिक डिपार्टमेंट के) सरकारी मंत्री, टॉमस ब्राउन, ने उसे कौंसिल के सम्मत्यर्थ भेजा। कौंसिल ने हंटर की आयोजना की अत्यंत प्रशंसा की और उसे स्वीकार कर लिया।

'सिंहासन बत्तीसी'

२० मई, १८०५ की बैठक में कॉलेज कौंसिल ने विलियम हंटर के १३ मई, १८०५ के पत्रानुसार 'सिंहासन बत्तीसी' की सोलह रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से सौ प्रतियाँ खरीदने का निश्चय किया।[2]

ईसाई सुसमाचार

इसी समय कॉलेज कौंसिल ने विलियम हंटर के १५ मई, १८०५ के पत्रानुसार 'फ़ोर गॉस्पेल्स' (चार सुसमाचार) का हिंदुस्तानी में अनुवाद करने पर मिर्ज़ा फ़ितरत को पाँच सौ सिक्का रुपए देना निश्चित किया। स्वयं विलियम हंटर ने इन अनुवादों की तुलना अँगरेज़ी, लैटिन और फ्रेंच संस्करणों से की थी।

'अख़लाक़-इ-जलाली' का हिंदुस्तानी अनुवाद प्रस्तुत करने पर अमानतुल्लाह को दो सौ सिक्का रुपए पुरस्कार-स्वरूप दिए गए।

'बैताल पच्चीसी'

३० सितंबर, १८०५ की बैठक में कैप्टेन मोअट का २७ सितंबर, १८०५ का लिखा हुआ पत्र कौंसिल के सामने पेश हुआ। यह पत्र कॉलेज कौंसिल के मंत्री के नाम था: "उच्च कक्षाओं के लिए नागरी अक्षरों में लिखी गई एक पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता होने से मैं सादर 'बैताल पच्चीसी' की सिफ़ारिश करता हूँ।..." पुस्तक छपाने आदि का व्यय दिखाने के लिए उन्होंने विलियम हंटर तथा हिंदुस्तानी प्रेस के अन्य प्रोप्राइटरों का अपने नाम लिखा गया पत्र प्रेषित कर दिया था। विलियम हंटर के पत्रानुसार हिंदुस्तानी प्रेस ने 'बैताल पच्चीसी' छापना शुरू भी कर दिया था। मोअट उसे पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकार कर चुके थे। इसलिए उसकी सौ प्रतियों के लिए हंटर आर्थिक सहायता चाहते थे। पुस्तक लगभग दो सौ पृष्ठों में समाप्त होने वाली थी। साढ़े छः रुपए प्रति सौ पृष्ठ के हिसाब से एक प्रति का मूल्य तेरह रुपए होता था। किंतु कौंसिल ने छः रुपए प्रति सौ पृष्ठ के हिसाब से

---

[1] फो॰ वि॰, २६ अप्रैल, १८०१—४ सितंबर, १८०५, हो॰, मि॰, जि॰ १, पृ॰ ३२०-३२४, इं॰ रे॰ डि॰

[2] वही, पृ॰ ४०८-४०९

सौ प्रा ाँ लिए अनुमति दी ¹ ६ जनवरी, १८०६ की बैठक में कौंसिल ने उसकी सौ प्रतियों के लिए बारह सौ रुपए की स्वीकृति दी।[2]

'रामायण' की प्रतिलिपि करने के सम्बन्ध में कौंसिल ने १८ नवंबर, १८०५ की बैठक में सदल मिश्र पंडित को छब्बीस रुपए आठ आने दिए।[3] और १७ मई, १८०६ की बैठक में कौंसिल ने संस्कृत की 'अध्यात्म रामायण' का खड़ी-बोली में अनुवाद करने पर उन्हें तीन सौ रुपए देने का प्रस्ताव स्वीकार किया।[4] सदल मिश्र की यह रचना दुर्भाग्यवश अभी तक अप्राप्य है।

सदल मिश्र का कार्य

१० फ़रवरी, १८०६ को कौंसिल ने 'टाइटिल्स ऑव हिन्दी गौस्पेल्स' के लिए हंटर के प्रेस को साढ़े बारह रुपये दिए। कोर्ट का २८ फ़रवरी, १८०६ का लिखा हुआ एक पत्र कौंसिल की ३० जुलाई, १८०६ की बैठक में पेश हुआ। इस पत्र में कोर्ट ने विद्यार्थियों द्वारा रचित विभिन्न थीसिसों की निंदा की और उन्हें 'बाल-प्रयास' कहा। उसकी सम्मति में ऐसी थीसिसें कॉलेज की स्थापना न होने पर भी लिखी जा सकती थीं। १२ नवंबर, १८०६ की कौंसिल ने ग़ुलाम हैदर कृत 'गुल-ओ हुर्मुज़' के अनुवाद की बारह रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से सौ प्रतियाँ लेने और उसे हिंदुस्तानी विभाग के प्रधान मुंशी के निरीक्षणार्थ भेजने का निश्चय किया।

ग्रंथ-रचना की दृष्टि से मोअट का समय अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। अनेक ग्रंथों की रचना पहले से होती आ रही थी। मोअट के समय में वे केवल पूर्ण हुए। दूसरे शब्दों में, कुछ ग्रंथ ऐसे थे जो ३१ दिसंबर, १८०६ से पहले पूर्ण न हो सके थे। उन पर पुरस्कार देने के लिए सरकार वचन-बद्ध हो चुकी थी। किंतु इस पुरस्कार संबंधी व्यय का उल्लेख नई व्यवस्था के अंतर्गत कहीं भी न हुआ था। इसलिए कौंसिल के मंत्री ने इस संबंध में सरकारी मंत्री के नाम एक पत्र लिखा। कौंसिल छः रुपए प्रति सौ चौपेजी पृष्ठ के हिसाब से 'हिंदुस्तानी-इंगलिश-डिक्शनरी' की सौ प्रतियाँ लेने का वचन दे चुकी थी। इस कोष के चार सौ पृष्ठ छप भी चुके थे। कुल अनुमान सोलह सौ चौपेजी पृष्ठों का था। इस प्रकार एक प्रति का मूल्य एक सौ चार रुपया और कुल प्रतियों का मूल्य दस हज़ार चार सौ रुपया होता था। शीघ्र ही आधा मूल्य देना भी था। किंतु ५ फ़रवरी, १८०७ को सरकार ने यह अतिरिक्त व्यय स्वीकार कर लिया।

कौंसिल ने हैदरबख़्श को 'बहार दानिश' का हिंदुस्तानी अनुवाद करने पर तीन सौ रुपए और खलल ख़ाँ को 'क़िस्स-इ-रज़्वाँ' और 'इंतख़ाब-इ-सुलतानी' का हिंदुस्तानी अनुवाद करने पर सत्तर रुपए पुरस्कार-स्वरूप दिए।

---

[1] कौं० वि०, १६ सितंबर, १८०५—२७ जनवरी, १८०६, हो० मि०, जि० २, पृ० ६२-६३; इं० रे० डि०

[2] वही, पृ० ८६

[3] वही, पृ० ७०

[4] वही, पृ० ११९

इधर गिलक्राइस्ट के इंगलैंड चले जाने से कुछ हिंदुस्तानी रचनाएँ अधूरी रह गई थीं। ये रचनाएँ गिलक्राइस्ट की संपत्ति थीं। पूर्ण न हो सकने के कारण गिलक्राइस्ट को काफ़ी आर्थिक हानि हुई थी। अपूर्ण ग्रंथों पर वे रुपया तो लगा चुके थे, किंतु बदले में उन्हें कुछ भी न मिल सका था। इसलिए ७ फ़रवरी, १८०७ को गिलक्राइस्ट के एजेंट मेसर्स माकिन्टोश ऐंड फुल्टन ने सरकारी मंत्री को पत्र लिखते हुए गवर्नर-जनरल से आर्थिक हानि पूरी करने की प्रार्थना की। प्रारंभ में कॉलेज कौंसिल ने आठ रुपए प्रति सौ चौपेजी या दो सौ अठपेजी पृष्ठ के हिसाब से प्रत्येक पूर्वीय साहित्य-संबंधी रचना की सौ प्रतियाँ लेकर लेखकों को प्रोत्साहन देने का वचन दिया था। लेकिन बाद को उसने हिंदुस्तानी रचनाओं के लिए केवल पाँच हज़ार वार्षिक व्यय सीमित कर दिया था। गिलक्राइस्ट के चले जाने के बाद एजेंटों ने ३० अगस्त, १८०४ को रेवरेंड डॉ० ब्यूकैनैन के नाम इस संबंध में एक पत्र भी लिखा था। इस पत्र के आधार पर कौंसिल ने यह निश्चित किया था कि १८०४ में गिलक्राइस्ट के जितने ग्रंथ छप चुके थे या छपने को थे उनके लिए पाँच हज़ार रुपए दे दिए जायँ। एजेंटों के विचार में यह रक़म गिलक्राइस्ट की आशाओं से बहुत कम थी। डॉ० ब्यूकैनैन के नाम लिखे गए पत्र के साथ उन्होंने दो चिट्ठे (Memorandum) भेजे थे।[1] इन चिट्ठों का विस्तार सहित विवरण एजेंटों ने अपने पत्र में दिया।[2] कौंसिल की १४ मार्च, १८०७ की बैठक में उनका पत्र पेश हुआ। चिट्ठा नं० १ की अंतिम पाँच पुस्तकों (पाँच हज़ार रुपया) और चिट्ठा नं० २ में सम्मिलित प्रत्येक पुस्तक की सौ-सौ प्रतियों के लिए उन्होंने चौदह हज़ार रुपया (चार हज़ार रुपया अधिक) माँगा। उनकी सम्मति में गिलक्राइस्ट का परिश्रम देखते हुए चार हज़ार रुपए की रक़म अधिक नहीं थी। २६ फ़रवरी, १८०७ को सरकारी मंत्री ने एजेंटों का पत्र कौंसिल के पास विचारार्थ भेज दिया।

गिलक्राइस्ट के एजेंटों द्वारा आर्थिक सहायता की याचना

१४ मार्च, १८०७ के कौंसिल के उत्तर के अनुसार छः रुपए प्रति सौ चौपेजी पृष्ठ के हिसाब से 'अयार दानिश', 'हातिमताई' और 'प्रेमसागर' की सौ-सौ प्रतियों के लिए आर्थिक सहायता देना उचित होता। किंतु गिलक्राइस्ट के यूरोप चले जाने से ये ग्रंथ अपूर्ण रह गए थे। इसलिए कौंसिल ने प्रत्येक ग्रंथ के छपे हुए अंश मिला कर एक विविध संग्रह तैयार करा देने की युक्ति सोची। इससे हिंदुस्तानी रचना की विविध शैलियों का एक ही संग्रह में प्रदर्शन हो जाता था। कौंसिल ऐसे संग्रह की सौ प्रतियाँ लेने के लिए प्रस्तुत थी। इनमें से उन्होंने चालीस प्रतियाँ हर्टफ़र्ड भेजने की सिफ़ारिश की। एजेंटों के अनुसार इस संग्रह की पृष्ठ-संख्या तीन सौ

'प्रेमसागर'

---

[1] दे०, परिशिष्ट औ

[2] प्रो० कि०, १६ सितंबर, १८०५—२७ जनवरी, १८०६, हो०, मि०, जि० २ पृ० २६०-२६६, इ० र० लि०

बायन होती थी और मूल्य दो हजार दो सौ अट्ठासी सिक्का रुपए होता था कौंसिल इतना रुपया दे देने के पक्ष में थी। अन्य ग्रंथों के संबंध में कौंसिल मौन धारण किए रही। केवल 'क़ुरान' का प्रकाशन उसने अनधिकृत बताया। १६ मार्च, १८०७ को सरकार ने कौंसिल का मत स्वीकार कर लिया।[1]

'भाखा'-मुंशी लल्लूलाल कवि ने अपने चार वर्ष पूर्व प्रकाशित ग्रंथों (?) के लिए कुछ आर्थिक सहायता या पुरस्कार माँगा, किंतु २३ मई, १८०७ की बैठक में कौंसिल ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की।[2]

कोलब्रुक ने अपनी १५ अगस्त, १८०७ और १७ सितंबर, १८०७ की मिनिट्स में बंबई लिट्रेरी सोसायटी (बंबई की साहित्यिक सभा) के सभापति सर जेम्स माकिन्टोश के प्रस्तावानुसार भारतीय भाषाओं के शब्दों की एक तुलनात्मक सूची तैयार करने की आयोजना निर्मित की जिसे कॉलेज कौंसिल ने स्वीकार किया। कोलब्रुक ने नागरी और फ़ारसी लिपियों में ग्लैड्विन की शब्दावली के आधार पर हिंदी और फ़ारसी तथा बँगला और संस्कृत की सूची तैयार कर सर जेम्स माकिन्टोश की आयोजना में कुछ सुधार पेश किए थे। कौंसिल ने भारतवर्ष के विभिन्न भागों से शब्द इकट्ठा करने और डा० फ्रांसिस ब्यूकैनैन से सहायता लेने का निश्चय किया। फ़ारसी और हिंदुस्तानी शब्द-सूची की प्रतियाँ हिंदुस्तानी प्रेस छापने के लिए तैयार था। साथ ही संस्कृत और बँगला की शब्द-सूची प्रकाशित करने की आयोजना निश्चित की गई। सौ चौपेजी पृष्ठों के अनुमान से एक सेट का मूल्य चार सौ पचास रुपए रक्खा गया।

प्रधान मुंशी मीर शेर अली कृत 'खुलासतुल हिंद' के आधार पर भारतीय इतिहास तैयार हो जाने पर कौंसिल ने तेरह रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से सौ प्रतियाँ लेने का निश्चय किया। हिंदुस्तानी प्रेस के प्रोप्राइटरों को 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी', जिल्द १, के चार हज़ार पाँच सौ सिक्का रुपए दिए गए और उसकी चालीस प्रतियाँ इंग्लैंड भेजी गईं।

२४ अगस्त, १८०७ को कौंसिल के मंत्री ने कैप्टेन मोअट का निम्नलिखित कथन कौंसिल के सामने रक्खा :

मोअट का त्याग-पत्र

"हिंदुस्तानी भाषा के प्रोफ़ेसर, गिलक्राइस्ट, के फ़रवरी, १८०४ में चले जाने पर उनके कार्य का भार प्रथम सहायक (Senior Assistant) की हैसियत से मेरे ऊपर पड़ा। यह कार्य मैं बिना वेतन बढ़वाए १ जनवरी, १८०६ तक करता रहा। १ जनवरी, १८०६ को मैं प्रोफ़ेसर नियुक्त हुआ। ऐसी ही परिस्थिति में जब अरबी और फ़ारसी के प्रोफ़ेसर कार्यवश बाहर चले गए थे तो उस विभाग के प्रथम सहायक को प्रोफ़ेसर का वेतन मिला था। मुझे इस प्रकार का कोई वेतन नहीं मिला। मैंने लॉर्ड वेलेज़्ली का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था, किंतु अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे

...स पर विचार न कर सके थे। प्रोफ़ेसर नियुक्त होने पर मुझसे यह कहा गया था कि मेरी पहली आर्थिक हानि पूरी कर दी जायगी। यह बढ़ा हुआ वेतन मुझे केवल वर्ष भर ही मिल पाया था कि कोर्ट की आज्ञानुसार हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर का वेतन घटा कर पहले के प्रथम सहायक के वेतन के बराबर कर दिया गया। इसलिए मैं चाहता हूँ कि अब मेरा पुराना घाटा पूरा हो जाना चाहिए। दूसरे, अन्य विभागों की अपेक्षा हिंदुस्तानी विभाग में विद्यार्थियों की संख्या भी दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। इस दृष्टि से भी मेरी बात पर विचार होना चाहिए।"

२६ सितंबर, १८०७ की बैठक में कौंसिल ने कैप्टेन मोअट का प्रस्ताव स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट की। कोर्ट और सरकारी आज्ञा-पत्रों के सामने वह कुछ न कर सकती थी। हाँ, इतना उसने अवश्य कहा कि मोअट यदि चाहें तो सरकार के पास एक प्रार्थना-पत्र भेज सकते हैं, कौंसिल उस पर अपनी सिफ़ारिश कर देगी।[1]

किंतु संभवतः उनकी इच्छा पूर्ण न हुई। अतः ३ फ़रवरी, १८०८ को कैप्टेन मोअट ने कौंसिल के मंत्री, विलियम हंटर, को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने स्वास्थ्य ख़राब हो जाने के कारण तुरंत ही यूरोप लौट जाने की इच्छा प्रकट की। उनका विचार 'लेडी कैसिलरी' (Lady Castlereagh) जहाज़ की रवानगी के अवसर पर हिंदुस्तानी भाषा के प्रोफ़ेसर पद से त्याग-पत्र देने का था। अपनी सेवाओं के संबंध में कौंसिल से उन्होंने एक प्रमाण-पत्र पाने की प्रार्थना की।

५ फ़रवरी, १८०८ को कौंसिल की आज्ञा से मंत्री ने प्रधान सरकारी मंत्री, टी० ब्राउन, के माध्यम द्वारा सपरिषद् गवर्नर-जनरल के पास मोअट का पत्र भेज दिया और उनकी सेवाओं की प्रशंसा की। उसी दिन ब्राउन ने मोअट के पत्र की प्राप्ति स्वीकार की और उनकी सेवाओं के संबंध में अच्छा प्रमाण-पत्र दिया।[2]

२० फ़रवरी, १८०८ को कैप्टेन मोअट ने 'एच० सी० शिप लेडी कैसिलरी' से यूरोप जाने के प्रमाण में जहाज़ के संचालक, शार्टलेट, के सर्टिफ़िकेट के साथ अपना त्याग-पत्र कौंसिल के मंत्री, विलियम हंटर, के पास भेज दिया। उन्होंने उसे २४ फ़रवरी, १८०८ को सपरिषद् गवर्नर-जनरल के पास भेज दिया।[3]

---

[1] वही, पृ० १६२-१६४

[2] वही, पृ० ३००-३०१

[3] वही पृ० [illegible]

५

जॉन विलियम टेलर[1]

(फ़रवरी, १८०८—मई, १८२३)

फ़रवरी, १८०८ में कैप्टेन मॉअट का त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया गया था। उनके बाद २२ फ़रवरी, १८०८ को सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने कैप्टेन जॉन विलियम टेलर को फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में हिंदुस्तानी भाषा का प्रोफ़ेसर नियुक्त किया।[2]

टेलर

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में नागरी और हिंदी भाषा (आधुनिक अर्थ में) को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था, यह दूसरी बात है। किंतु ईस्ट इंडिया कंपनी के सभी कर्मचारी भारतीय शासन के प्रत्येक क्षेत्र में हिंदी और नागरी का महत्व अवश्य जानते थे। २ मार्च, १८०८ को कोर्ट के डाइरेक्टरों ने सपरिषद् गवर्नर-जनरल से कुछ ऐसी सामग्री माँगी थी जो हर्टफ़ोर्ट कॉलेज में विद्यार्थियों के भारतीय शासन-पद्धति में दक्ष होने और उसका अध्ययन करने के लिए अत्यंत आवश्यक थी। फ़ारसी, हिंदुस्तानी और बँगला में लिखे गए अनेक विचारों से संबंध रखने वाले काग़ज़ात, पत्र, प्रार्थना-पत्र, सनद, हिसाब के रजिस्टर आदि उन्होंने माँगे थे। इनमें से वे ही हिंदुस्तानी पत्र माँगे थे जो नागरी में लिखे हुए थे। क्योंकि बिहार तथा उत्तरी प्रांतों (Upper Provinces) में पत्र-व्यवहार और व्यावसायिक कार्य साधारणतः नागरी अक्षरों में ही होता था। इतना ही नहीं हिंदुस्तानी या उर्दू के स्थान पर हिंदवी का प्रचार अधिक होने के कारण हिंदवी भाषा की सामग्री उन्होंने सबसे अधिक माँगी थी। मूल सामग्री सुलभ न होने पर प्रतिलिपियों से भी उनका कार्य सिद्ध हो सकता था।[3] प्रधान सरकारी मंत्री, टी० ब्राउन, ने कोर्ट का यह पत्र कौंसिल के पास भेज दिया जो उसकी २६ नवंबर, १८०८ की बैठक में पेश हुआ। इससे पहले कौंसिल के मंत्री, विलियम हंटर, ने सदर दीवानी अदालत और निज़ामत अदालत के रजिस्ट्रार, डब्ल्यू० बी० बेली, और बोर्ड ऑव ट्रेड, बोर्ड ऑव रेवेन्यू आदि को पत्र लिखे थे। किंतु उनमें से किसी ने भी मंत्री के पत्रों का उत्तर न दिया। कौंसिल की आज्ञा से मंत्री ने फिर सबके पास

कोर्ट और भारतीय शासन-संबंधी काग़ज़ात

---

[1]John William Taylor

[2]फ़ो० वि०, १६ सितंबर, १८०१—२७ जनवरी, १८०३, हो०, मि०, जि० २, पृ० ३२२, इं० रे० वि०

[3]वही, पृ० २१२

में भेजे १० दिसंबर, १८०८ और उसके बाद तक सब सामग्री संकलित हो पाई तत्पश्चात् वह कोर्ट के पास भेज दी गई।[1]

इसी प्रकार २२ मई, १८११ के पत्र में कोर्ट ने कंपनी के कर्मचारियों के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक बताया। क्योंकि संस्कृत भाषा के माध्यम द्वारा ही वे हिंदुओं के आचार-विचार, रीति-रस्मों आदि के संबंध में ज्ञान प्राप्त कर सकते थे और साथ ही इससे उन्हें हिंदुओं में प्रचलित विभिन्न बोलियाँ आसानी से सीखने और समझने में सहायता मिल सकती थी। संस्कृत की छोटी-बड़ी सब प्रकार की पुस्तकों पर सरकारी धन ख़र्च होने पर भी विद्यार्थी उसके अध्ययन की ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे, यह एक चिंतनीय विषय था। कोर्ट ने सुझाया कि विद्यार्थियों को विल्किन्स कृत व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए और सरकारी जीवन शुरू करने और कॉलेज छोड़ने से पहले संस्कृत में ज्ञान-प्राप्ति अनिवार्य मानी जाय। साथ ही एक संस्कृत अँगरेज़ी कोष प्रकाशित करने और योग्यता-प्राप्त विद्यार्थियों को पुरस्कार देने की कोर्ट ने आज्ञा दी।[2]

संस्कृत के ज्ञान की आवश्यकता

वास्तव में विद्यार्थियों को संस्कृत-शिक्षा देने की व्यवस्था थी अवश्य, किंतु अरबी और संस्कृत के अध्ययन में समय अधिक लगने से विद्यार्थी प्रायः बँगला, हिंदुस्तानी और फ़ारसी की ओर अधिक आकृष्ट होते थे।

हिंदी प्रदेश में ज्यों-ज्यों कंपनी के राज्य की सीमा का विस्तार होता गया, त्यों-त्यों सरकारी कर्मचारियों को वहाँ के निवासियों के आचार-विचार समझने तथा राजकीय कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए हिंदुस्तानी के अतिरिक्त विभिन्न स्थानों की बोलियाँ जानने की आवश्यकता पड़ी। हिंदुस्तानी का प्रचार तो केवल उच्च श्रेणी के लोगों और अफ़सरों तक ही सीमित था। सामान्य लिखा-पढ़ी के लिए हिंदुस्तानी के स्थान पर विभिन्न प्रदेशों की स्थानीय बोलियों का ही प्रयोग होता था। उन्हीं बोलियों का व्यवहार वहाँ के निवासी अपनी बोलचाल में भी करते थे। कोर्ट भी इस परिस्थिति के अनुकूल था। १ अक्तूबर, १८१३ को गवर्नर जनरल ने ये ही विचार जनरल विभाग के अधिवेशन में प्रकट किए थे। उन्होंने ७ अक्तूबर, १८१३ को कौंसिल से इस प्रकार के अध्ययन का प्रबंध करने के लिए कहा। अतिरिक्त व्यय फ़ौजी हिसाब में डाल दिया गया। गवर्नर-जनरल ने फ़ारसी, अरबी, संस्कृत, बँगला और हिंदुस्तानी तथा अन्य भाषाओं में सहायक प्रोफ़ेसर नियुक्त करने का निश्चय किया। उनका विचार चार-चार सौ रुपया मासिक वेतन पर दो सहायक प्रोफ़ेसर रखने का था। साथ ही उन्होंने तीस-तीस रुपया मासिक वेतन पर बीस मुंशी रखने और

कंपनी का राज्य-विस्तार और भाषा-समस्या : विभिन्न पदाधिकारियों के मत

---

[1] वही, पृ० ५१३-५१४, ५२०-५२३

[2] फो० वि०, २४ सितंबर १८११ १२ जनवरी, १८१४, हो० मि०, जि० ४, पृ० ८७-८८, इ० रे० वि०

विद्यार्थियों को पुरस्कार-वितरण की आयोजना तैयार की। फ़ौजी विद्यार्थियों की संख्या की वृद्धि के लिए गुंजायश रक्खी गई—वैसे भी यह सब कुछ सैनिक दृष्टि से ही हो रहा था। गवर्नर-जनरल की अनुमति से कैप्टेन वेस्टन अरबी और फ़ारसी के और लेफ्टिनेंट प्राइस संस्कृत, बँगला और हिंदुस्तानी के सहायक प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। चार सौ रुपए मासिक के अतिरिक्त फ़ौजी भत्ता उन्हें बराबर मिलता था। किंतु ३० अक्तूबर, १८१३ को टेलर ने कौंसिल के मंत्री, कैप्टेन लॉकेट, से अपने विभाग के लिए एक अलग सहायक प्रोफ़ेसर माँगा, क्योंकि हर्टफ़र्ड से जो विद्यार्थी आते थे वे हिंदुस्तानी के प्राथमिक सिद्धांतों से भी अनभिज्ञ रहते थे। इसलिए टेलर को उन्हें सब बातें शुरू से बतानी पड़ती थीं। वे इस कार्य में इतने व्यस्त रहते थे कि अपने कर्त्तव्य का पूर्णरूप से पालन करने का अवकाश उन्हें नहीं मिल पाता था। यहाँ तक कि उन्हें हिंदुस्तानी भाषा की एक शाखा, या कहिए उसकी मूल, शुद्ध हिंदी को जो थोड़े-थोड़े भेद के साथ तत्कालीन बिहार, अवध, इलाहाबाद, बुंदेलखण्ड आदि प्रदेशों में तथा समस्त देशी सेना में बोली जाती थी, पढ़ाने का अवसर ही नहीं मिलता था। शुद्ध हिंदी का अध्यापन कार्य फिर से शुरू करने के लिए वे कौंसिल के सम्मुख प्रार्थी थे, विशेषतः जब कि उसका ज्ञान प्रधान रूप से सैनिक विद्यार्थियों के लिए हितकर था। कौंसिल ने अपनी सिफ़ारिश लिख कर सरकारी मंत्री, रिकट्स, के पास भेज दी। सरकारी मंत्री के १६ नवंबर, १८१३ के पत्रानुसार सातवीं रेजिमेंट, नेटिव इफ़ैंट्री, के लेफ्टिनेंट आर० मार्टिन हिंदुस्तानी के सहायक प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। इस बात की सूचना टेलर के पास भी भेज दी गई।[1]

टेलर का मत

डा० रोएबक, द्वितीय परीक्षक और हिंदुस्तानी के एवज़ी सहायक प्रोफ़ेसर, ने भी ८ सितंबर, १८१८ को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अधिकारियों का हर्टफ़र्ड से आने वाले विद्यार्थियों की हिंदुस्तानी भाषा के प्राथमिक सिद्धांतों से अनभिज्ञता की ओर ध्यान आकृष्ट किया। विद्यार्थियों का फ़ारसी और बँगला का ज्ञान अवश्य अच्छा होता था। लेकिन बँगला भाषा राजमहल से आगे बोली या समझी नहीं जाती थी। राजमहल से आगे कंपनी की तत्कालीन राज्य-सीमा के अंत तक हिंदुस्तानी या उसकी वे बोलियाँ जो ब्रजभाषा और पूर्वी भाषा के नाम से पुकारी जाती थीं, सब जगह बोली या समझी जाती थीं और जहाँ कंपनी के अधिकांश सैनिक और दूसरे प्रकार के कर्मचारी काम कर रहे थे। इसलिए फ़ोर्ट विलियम कॉलेज और हर्टफ़र्ड दोनों स्थानों पर ऐसे प्रबंध की आवश्यकता थी जिससे भविष्य में न केवल हिंदुस्तानी का ही और अधिक अध्ययन हो, वरन् उन बोलियों का भी जिन्हें ब्रजभाषा और पूर्वी भाषा कहते थे। अकेली पूर्वी भाषा ही बंगाल प्रांत से अधिक विस्तृत भूमि-भाग में बोली जाती थी। रोएबक की सम्मति में जो स्थान फ्रेंच का यूरोप में था वही स्थान भारत में हिंदुस्तानी का था। उस समय तक प्रचलित विचारों

रोएबक का मत

---

[1] फ़ो०, वि० २४ सितंबर १८११ १२ जनवरी १८१४, हो०, मि० वि० ४ पृ० ५०७ ५१४ ५८१ ५८८ इ० रे० वि०

ौर २५ जुलाई, १८१५ के स्थानापन्न (ऐक्टिंग) विजिटर के भाषण के अनुसार वह रस्परिक सम्पर्क और पत्र-व्यवहार का बहुत बड़ा साधन थी। देश के एक विस्तृत भाग ं उसका प्रयोग होता था और साम्राज्य-शासन की प्रत्येक शाखा से उसका घनिष्ठ संबंध ा। ब्रजभाषा का अध्ययन लेफ़्टिनेंट प्राइस की अध्यक्षता में १८१५ से अनेक फ़ौजी वेद्यार्थियों द्वारा सफलतापूर्वक हो रहा था। स्थानापन्न विज़िटर ने भी अपने ाषण में इस तथ्य का उल्लेख किया था। ब्रजभाषा के और भी व्यापक अध्ययन की ावश्यकता थी।

संस्कृत हिंदवी की और अरबी-फ़ारसी उर्दू के अध्ययन की कुंजियाँ थीं। किंतु कॉलेज के पाठ्य-क्रम की यह विशेषता थी कि उसमें आधुनिक प्रचलित भाषाओं के सामने संस्कृत और अरबी को अधिक प्रधानता नहीं दी गई। पहले तो बँगला और हिंदुस्तानी में दक्षता प्राप्त करने की आवश्यकता समझी गई। संस्कृत और अरबी का अध्ययन हिंदुस्तानी, ब्रजभाषा, पूर्वी भाषा, बँगला और फ़ारसी के स्थान पर कभी नहीं रक्खा गया था। बंगाल अहाते के अन्तर्गत हिंदुस्तानी तथा अन्य भाषाएँ ही उपयोगी ठहरती थीं। बँगला, हिंदुस्तानी या फ़ारसी का अच्छा विद्वान् होने के लिए संस्कृत और अरबी की आवश्यकता थी। तो भी यह आवश्यक नहीं था कि संस्कृत और अरबी का अच्छा विद्वान् बँगला, हिंदुस्तानी और फ़ारसी का भी अच्छा विद्वान् हो। रोएबक के अनुसार देशी लोगों को देखकर इसका उल्टा ठीक भी हो सकता था। वास्तव में स्थिति तो यह थी कि बंगाल या हिंदुस्तान के बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ पंडित अपनी मातृभाषा बँगला या हिंदी में एक पत्र भी उतनी अच्छी तरह नहीं लिख सकते थे जितनी अच्छी तरह एक कायस्थ लिख सकता था। इसी प्रकार एक आलिम मौलवी भी, जो अरबी को छोड़ कर अन्य प्रत्येक भाषा से घृणा करता था, एक मुंशी की भाँति सुंदर फ़ारसी-पत्र लिखने में असमर्थ रहता था। इसलिए आधुनिक प्रचलित भाषाओं में दक्षता प्राप्त किए बिना संस्कृत और अरबी में पुरस्कार-वितरण के रोएबक विरुद्ध थे।[1]

विलियम प्राइस ने ब्रजभाषा के संबंध में अपने विचार प्रकट किए। बंगाल के उत्तर-पश्चिमी भूमि-भाग में ब्रजभाषा का प्रचार ही उन्होंने अधिक बताया। देशी सिपाही भी ब्रजभाषा का ही अधिक प्रयोग करते थे। जब तक कॉलेज में फ़ौजी विद्यार्थी रहे, उन्हें ब्रजभाषा पढ़ाना प्राइस का मुख्य कर्त्तव्य था। किंतु उन विद्यार्थियों के चले जाने से ब्रजभाषा के अध्ययन का कार्य रुक गया था। १८२८ के लगभग अंत में तो उसके अध्ययन की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया जा रहा था। ब्रजभाषा का स्थान एक महत्वपूर्ण स्थान था। वह ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा उपेक्षा के योग्य नहीं थी। जिस समय ब्रजभाषा पढ़ाई जाती थी उस समय निम्नलिखित ग्रंथों से सहायता ली जाती थी :

विलियम प्राइस का मत

---

[1] फ़ो० वि०, ४ मई, १८१८ १ दिसंबर १८१६, हो०, मि०, वि० ० पृ० २०६ २११, इं० रे० डि०

प्रेमसागर —हिंदवी या खड़ीबोली में एक अनुवाद।
'राजनीति'—ब्रजभाषा में।
'सभा विलास'—" । और
तुलसी कृत रामायण।

उस समय कॉलेज के स्थायी विभाग में केवल लल्लूलाल ही ब्रजभाषा-मुंशी थे। प्राइस के लिए वे बहुत ही काम के व्यक्ति थे। विद्यार्थियों ने उनके हिंदवी और ब्रजभाषा के ग्रंथों से भरपूर लाभ उठाया। प्राइस को दुःख इस बात का था कि इतने वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी कंपनी ने हिंदू जनता की भाषाओं और उसके साहित्य के प्रति इतना कम ध्यान दिया।[1] ६ सितंबर, १८१९ की प्राइस की रिपोर्ट के अनुसार उस समय इक्का-दुक्का फ़ौजी विद्यार्थी ही ब्रजभाषा की शिक्षा ग्रहण करता था।[2]

निष्कर्ष

वास्तव में सच तो यह है कि कॉलेज में प्रधानतः हिंदुस्तानी', उर्दू या 'हिंदी' का अध्ययन होता था। उन्हें जब हिंदवी (आधुनिक अर्थ में हिंदी) के अध्ययन की आवश्यकता होती थी, और आवश्यकता होती अवश्य थी, तो उसके के लिए विशेष प्रबंध किया जाता था। इसी विशेष प्रबंध के अंतर्गत लल्लूलाल और उनके उत्तराधिकारियों को कॉलेज में नौकरी मिली थी और इसी विशेष प्रबंध के अंतर्गत 'प्रेमसागर' तथा अन्य (हिंदी के—आधुनिक अर्थ में) ग्रंथों की रचना हुई। यह विशेष प्रबंध धीरे-धीरे उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगता था। आवश्यकता पड़ने पर फिर उसके पुनरुद्धार की चिंता होती थी। गिलक्राइस्ट द्वारा स्थापित भ्रमपूर्ण और अशुद्ध परंपरा तोड़ने का साहस किसी को न होता था, क्योंकि इसमें परिश्रम की अथवा हिंदवी के पूर्व और पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता थी। हिंदवी के पूर्व ज्ञान और परिश्रम के अभाव में उसके अध्ययन को प्रधानता देने का मतलब अपनी नौकरी खो देना था—प्रधानाध्यापकों और अध्यापकों दोनों के लिए। प्राइस ने यह भ्रमपूर्ण परंपरा तोड़ने का साहस किया, क्योंकि उन्हें 'हिंदवी' का पूर्व ज्ञान था। किंतु ग्रंथ-रचना के संबंध में वे भी गिलक्राइस्टी परंपरा तोड़ने में असमर्थ रहे। प्राइस के विचार और कार्य के संबंध में आगे उल्लेख किया जायगा।

कॉलेज की व्यवस्था में परिवर्तन

जहाँ तक कॉलेज की व्यवस्था तथा अन्य विषयों से संबंध है टेलर के समय में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन न हुआ। केवल व्यय, विद्यार्थियों के अनुशासन आदि की दृष्टि से कॉलेज के विधान में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे। जिस वर्ष टेलर ने अपना पद ग्रहण किया था उसी वर्ष हिसाब-निरीक्षक ने आकस्मिक व्यय बीस हज़ार से सात सौ सतहत्तर छः आना (सि० रु०) अधिक व्यय होने पर आपत्ति की थी। इँगलैंड में हिंदुस्तानी भाषा के प्रोफ़ेसर को पाँच सौ पौंड वार्षिक वेतन मिलता था। भारतवर्ष से उसकी सहायता के लिए जो दो मंशी भेजे गए थे उनका वार्षिक वेतन

छः-छः सो पौंड होता था। कोर्ट ने इस पर आपत्ति की और अपने ७ सितंबर, १८०८ के पत्र में भविष्य के लिए भारतीय सरकार को चेतावनी दी तथा एक मुंशी और माँगा। १८०९ में १८०७ वाले स्वीकृत विधान के परीक्षा-संबंधी नियमों में फिर परिवर्तन हुए।[1] १६ जून, १८०९ को कौंसिल के मंत्री, विलियम हंटर, ने सरकारी मंत्री, टुकर (Tucker), के नाम लिखे गए पत्र में २६ मई के सरकारी पत्र की प्राप्ति स्वीकार करते हुए नए परिवर्तनों की दृष्टि से कौंसिल द्वारा निर्मित विधान के तृतीय परिच्छेद को भी सपरिषद् गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए भेजा। इस परिच्छेद में १२ फ़रवरी, १८०७ के पिछले विधान से बाद के परीक्षा तथा अनुशासन संबंधी नए नियमों का समावेश किया गया था। १६ जून, १८०९ को लॉर्ड मिंटो ने उस पर अपनी स्वीकृति दी और १८०७ वाला विधान रद्द कर दिया गया।[2]

कॉलेज के विधान का तृतीय परिच्छेद

लगभग इसी समय हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष, जे० डब्ल्यू० टेलर, का स्वास्थ्य खराब हो गया। चिकित्सकों के परामर्श से वे थोड़े दिनों के लिए समुद्र-यात्रा के लिए चले गए। उनके स्थान पर लेफ़्टिनेंट लॉकिट स्थानापन्न प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। लॉकिट की अस्थायी नियुक्ति १५ अगस्त, १८०९ के सरकारी पत्र द्वारा हुई।

२१ दिसंबर, १८०९ को टेलर की सिफ़ारिश के साथ मिर्ज़ा काज़िम अली ने मीर मुंशी होने की प्रार्थना की, क्योंकि मीर शेर अली की उस समय मृत्यु हो चुकी थी। किंतु कौंसिल ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न की। मीर मुंशी के पद के लिए मिर्ज़ा काज़िम अली से उच्चतर पद पर स्थित व्यक्ति की तरक्क़ी हो सकती थी। मीर शेर अली की मृत्यु १६ दिसंबर, १८०९ को हुई। २१ दिसंबर, १८०९ से तारिणीचरण उनके स्थान पर हेड या मीर मुंशी नियुक्त हुए। तारिणीचरण के स्थान पर मिर्ज़ा काज़िम अली को सेकेण्ड मुंशी का पद मिला। इसी समय मुहम्मद वाजिद की अस्सी रुपया मासिक वेतन पर, मुर्तज़ा खाँ की साठ रुपया मासिक वेतन पर और मीर सैयद अली की चालीस रुपया मासिक वेतन पर नियुक्तियाँ हुईं।

मीर शेर अली की मृत्यु और तारिणीचरण की मीर मुंशी के पद पर नियुक्ति

कैप्टेन टेलर वापिस तो आ गए थे, किंतु अब भी उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था। इसलिए उन्होंने कौंसिल से प्रार्थना की कि हिंदुस्तानी की प्रारंभिक कक्षाएँ लॉकिट ले लिया करें। १४ फ़रवरी, १८१० को यह बात सरकार के सामने रक्खी गई। सरकार ने उसी दिन उसे स्वीकार कर लिया।

कॉलेज का खर्च पन्द्रह हज़ार में चल रहा था, इसलिए कोर्ट ने ६ सितंबर, १८०९ को सराहना लिख भेजी जिसकी सूचना कौंसिल को दे दी गई।

---

[1] फो० वि०, २९ मार्च, १८०९—१० जुलाई, १८११, हो०, मि०, जि० ६, पृ० ९७-१००, इं० रे० डि०

[2] वही, पृ० १०६ ११६

कुछ महीने बाद ऐब्राहम लॉकेट ने अरबी भाषा का शास्त्रीय अध्ययन करने की दृष्टि से अरब जाने की अनुमति माँगी। उन्होंने अपने पत्र में लिखा था—"कॉलेज की स्थापना का ध्येय पूर्वीय साहित्य और भाषाओं तथा ज्ञान-भण्डार का यूरोप में प्रचार करना है, न कि केवल देश की भाषाएँ सिखाने के लिए एक सेमिनरी मात्र बना रहना। पूर्वीय साहित्य के लिए यूरोप के लोग कॉलेज का मुँह ताकते हैं। इसके लिए सरकारी संरक्षण और देशी विद्वानों की सहायता आवश्यक है। हिंदुस्तानी और फ़ारसी भाषाओं में तो अब कुछ करने को बाक़ी नहीं रह गया। गिलक्राइस्ट और उनके उत्तराधिकारियों ने हिंदुस्तानी व्याकरण को शास्त्रीय रूप दे दिया है। शेष कार्य डॉ० हंटर अपने कोष द्वारा कर रहे हैं।"[1] सरकार ने लॉकेट को अरब जाने की आज्ञा दे दी।

अस्वस्थ रहने के कारण टेलर ने फिर ३० अगस्त, १८११ को कौंसिल के एवजी मंत्री, कैप्टेन गैलोवे, को वर्षा ऋतु के प्रारंभ में अपने ज्वर-ग्रस्त हो जाने और स्वास्थ्य खराब रहने के संबंध में लिखा। उनका पत्र सरकार के पास भेज दिया गया और ६ सितंबर, १८११ को उन्हें सरकारी स्वीकृति मिल गई। टेलर एक महीने के लिए सैंडहेड्स चले गए।

१ नवंबर, १८११ को कौंसिल के मंत्री, डॉ० विलियम हंटर, ने अपना त्याग-पत्र दे दिया था। ३० मई, १८१२ को उनके स्थान पर ऐब्राहम लॉकेट कौंसिल के मंत्री और परीक्षक नियुक्त हुए। अरब से लौटने के समय तक ए० गैलोवे की नियुक्ति लॉकेट के स्थान पर और लेफ़्टिनेंट रोएबक की नियुक्ति (सहायक मंत्री और परीक्षक की हैसियत से) गैलोवे के स्थान पर हुई। नियुक्तियाँ १ नवंबर, १८११ से ही मानी गईं। जुलाई, १८१२ में लॉकेट के अरब से लौट आने पर रोएबक की कोई आवश्यकता न रही।

कॉलेज में शिक्षा का ह्रास : विभिन्न पदाधिकारियों के मत

इधर कुछ दिनों से कॉलेज की व्यवस्था बिगड़ती जा रही थी। विद्यार्थियों में अनुशासन भंग करने की प्रवृत्ति के साथ-साथ शिक्षा का भी दिन-पर-दिन ह्रास होता जा रहा था। इस संबंध में १४ फ़रवरी, १८१२ को कोर्ट ने गवर्नर-जनरल के नाम एक पत्र लिखा। गवर्नर-जनरल ने १ अगस्त, १८१२ (?) को न्याय-विभाग में व्यक्त किए गए अपने विचारों के आधार पर कौंसिल को लिखा। कौंसिल ने कॉलेज के परीक्षकों और प्रोफ़ेसरों से इस संबंध में रिपोर्टें माँगी और शिक्षा-सुधार के संबंध में मत प्रकट करने के लिए लिखा। फ़ारसी के प्रोफ़ेसर लम्सडन ने अपने पत्र में फ़ारसी-शिक्षा का ह्रास स्वीकार किया। किंतु टेलर और कैरे ने क्रमशः हिंदुस्तानी और

लम्सडन, टेलर और कैरे के मत

बँगला-शिक्षा का ह्रास स्वीकार न किया। परीक्षा का मापदंड केवल पढ़ना, लिखना और अँगरेज़ी से पठित भाषा में अनुवाद करना था। इस दृष्टि से टेलर और कैरे के विचार ठीक थे। शासन की दृष्टि से इससे अधिक ज्ञान की आवश्यकता भी न थी। वास्तव में कोर्ट के डाइरेक्टरों ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की उपयोगिता कभी स्वीकार न की थी। इस संबंध

---

[1] वही, पृ० ३११-३२१

में उन्हें सदैव संदेह बना रहता था। कॉलेज को वे केवल एक प्रयोग मात्र समझते थे और अपनी इच्छानुसार उसकी निन्दा या प्रशंसा करने लगते थे। शुरू में ही उन्होंने उसकी आयोजना में बड़ी भारी कमी कर दी थी। आर्थिक दृष्टि से उन्होंने उसे सदैव एक बोझ समझा। बहुत-से लोगों का तो दृढ़ विश्वास था कि कोर्ट का अंतिम ध्येय कॉलेज तोड़ देना है। उनके इस प्रकार के विचारों से अनुशासन पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ता था। क्योंकि लोग यही समझते थे कि न जाने कॉलेज कब टूट जाय और इस भावना से अनुशासन में शिथिलता आ जाना अनिवार्य था।

टेलर की रिपोर्ट : 'हिंदी' शब्द का आधुनिक अर्थ में प्रयोग

किंतु कौंसिल की आज्ञानुसार टेलर ने जो रिपोर्ट दी थी वह यहाँ पर 'हिन्दी'-हिंदुस्तानी की व्याख्या या रूप की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कॉलेज-संबंधी उपलब्ध सामग्री में टेलर की रिपोर्ट में संभवतः 'हिंदी' शब्द का आधुनिक अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग मिलता है। उनका कहना है :

"आपने कॉलेज में शिक्षा के ह्रास का जो कारण पूछा है उस संबंध में सविनय निवेदन है कि मेरे दृढ़ विश्वास के अनुसार स्वतंत्र रूप से विचार करते हुए हिंदुस्तानी-शिक्षा में कोई ह्रास नहीं हुआ। किंतु मैं सविनय आपसे यह कहना चाहता हूँ कि मैं केवल हिंदुस्तानी या 'रेख़्ता' का ज़िक्र कर रहा हूँ जो फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है और जिसे पढ़ाने का मुझे श्रेय है। मैं हिंदी का ज़िक्र नहीं कर रहा जिसकी अपनी लिपि है अथवा मैं उस भाषा का ज़िक्र नहीं कर रहा जिसमें अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर-पश्चिम प्रांत की भाषा थी और जिसका वहाँ के मूल-निवासी हिंदुओं में अब तक प्रयोग होता है। उस विस्तृत प्रदेश में, जहाँ यह अब तक बोली जाती है, इसके दीर्घकालीन अस्तित्व का विशेष महत्त्व है। मैंने इस भाषा के ज्ञान के प्रचार का कॉलेज में भरसक प्रयत्न किया, किंतु अंत में इस प्रयत्न के कारण मेरा स्वास्थ्य नष्ट हो गया। मैंने बड़ी-बड़ी दिक़्क़तों और रुकावटों का सामना भी किया। आख़िर मैंने इस बात का अनुभव किया कि मुझे अपने सीमित साधनों और कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने से केवल हिंदुस्तानी के पठन-पाठन तक ही रहना चाहिए। हिंदी और हिंदुस्तानी में से हिंदुस्तानी का ही महत्त्व अधिक है, इस दृष्टि से शिक्षा का ह्रास अवश्य हुआ है।"[1]

रिपोर्ट के अंत में टेलर ने हर्टफ़र्ड में दी जाने वाली हिंदुस्तानी-शिक्षा की त्रुटियों की ओर संकेत किया। साथ ही यह भी कहा कि हिंदुस्तानी को जो इस (बंगाल) अहाते के अंतर्गत प्रायः सभी प्रांतों में सभी श्रेणी के लोगों की साधारण बोलचाल की प्रधान भाषा है गौण समझना हर्टफ़र्ड के अधिकारियों की गलत धारणा है। वहाँ से भारत

---

[1] प्रो० मि०, २२ सितंबर, १८११ १२ जनवरी, १८१४, हो०, मि०, जि० ४, पृ० २०६ २००, ह० रे० डि०

पाने वाले विद्यार्थियों का फ़ारसी-ज्ञान भी अपरिपक्व रहता था। टेलर के मतानुसार : 'हिंदुस्तानी और फ़ारसी का पारस्परिक संबंध है'।[1]

ए० लॉकेट ने भी परीक्षक की हैसियत से अपनी रिपोर्ट दी थी।[2] टी० रोएबक ने भी परीक्षक की हैसियत से अपनी रिपोर्ट १६ नवंबर, १८१२ को दी। उसमें उन्होंने भाषा-संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं :

रोएबक का मत

"यह कह देना मेरा कर्त्तव्य है कि हिंदुस्तानी भाषा की बोली (Dialect) उर्दू के ज्ञान में कोई ह्रास नहीं हुआ, प्रत्युत् उसकी उन्नति ही हुई है। मैंने तो यह देखा कि वह बोली (Dialect) जिसे खड़ीबोली या ठेठ हिंदी कहते हैं, अथवा हिंदुस्तानी की वह बोली (Dialect) जिसका प्रयोग बहुसंख्यक हिंदू समस्त हिंदुस्तान में करते हैं, विशेष रूप से दिल्ली और आगरा शहरों में, पहले की भाँति कॉलेज में नहीं पढ़ाई जाती। उस समय हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर के दो सहायक होते थे और विद्यार्थियों के लिए त्रैमासिक और वार्षिक परीक्षा-संबंधी अभ्यास फ़ारसी और नागरी दोनों लिपियों में छापे जाते थे। अब केवल फ़ारसी लिपि में छापे जाते हैं। इस दृष्टि से ह्रास अवश्य हुआ है। मैं इस ह्रास के कारण ये समझता हूँ: १. कॉलेज में जो विद्यार्थी आते हैं उन्हें हिंदुस्तानी के प्राथमिक सिद्धांतों का भी ज्ञान नहीं होता, हालाँकि बँगला और संस्कृत का उन्हें कुछ ज्ञान होता भी है। प्रोफ़ेसरों की रिपोर्टों से यह बात स्पष्ट है। २. विद्यार्थियों की संख्या अन्य सब विभागों के विद्यार्थियों से अधिक है। प्रोफ़ेसर की सहायता के लिए कोई दूसरा अध्यापक भी नहीं। इसलिए वे हिंदुस्तानी की केवल वह बोली पढ़ाते हैं जो महत्त्व की है, यद्यपि वे दूसरी बोली भी पढ़ाने योग्य हैं."। रोएबक के विचार में कभी भी कॉलेज टूट जाने की धारणा से अनुशासन में शिथिलता आ जाती थी।[3]

सरकारी समर्थन

प्रोफ़ेसरों और परीक्षकों की रिपोर्टों के आधार पर कौंसिल ने लॉर्ड मिंटो को २९ दिसंबर, १८१२ को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने प्रोफ़ेसरों और परीक्षकों के निष्कर्ष का समर्थन किया। सबने हिंदुस्तान की भाषा के ज्ञान के लिए हर्टफ़र्ड अनुपयुक्त स्थान समझा और कॉलेज के महत्त्व की ओर संकेत किया। कौंसिल ने अनुशासन के संबंध में कोई विशेष शिथिलता न पाई। वास्तव में जब से हर्टफ़र्ड कॉलेज की स्थापना हुई थी तब से कोर्ट के डाइरेक्टरों और भारतीय सरकार में काफ़ी संघर्ष चल रहा था। लॉर्ड मिंटो वेलेज़ली के ध्येय के समर्थक थे।[4]

कैरे, लम्सडन और टेलर के मतानुसार कौंसिल ने फ़ौजी विद्यार्थियों के दाखिला के संबंध में विशेष नियम बनाए।

---

[1] वही

[2] वही, पृ० २७७-२८२

[3] वही पृ० २८८ २८९

[4] वही, पृ० २११ २१८

कुछ कारणों से अवकाश न मिलने पर गवर्नर-जनरल २६ दिसंबर, १८१७ की रिपोर्ट पर विचार न कर सके थे। कौंसिल की भाँति वे भी भारतीय साम्राज्य के लिए कॉलेज का महत्व अच्छी तरह समझते थे। किंतु कॉलेज के अनुशासन, परीक्षा-नियम, फ़ौजी विद्यार्थियों के दाखिला तथा कौंसिल की १२ जनवरी, १८१४ की रिपोर्ट आदि नई-नई समस्याओं की दृष्टि से गवर्नर-जनरल ने कॉलेज के लिए नए विधान की आवश्यकता समझी। इसलिए इस संबंध में सरकारी मंत्री, सी० एम० रिकेट्स, ने कौंसिल के नाम पत्र लिखा। समुचित परामर्श के बाद कौंसिल ने पुराने नियमों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर नए नियम बनाए और ३ जून, १८१४ को लॉर्ड मिंटो ने, जो कॉलेज के विज़िटर थे, अपनी स्वीकृति दे दी। १ जुलाई, १८१४ को कौंसिल ने गवर्नर-जनरल के निर्देश से फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के विधान का चतुर्थ परिच्छेद जारी किया।[1]

कॉलेज के विधान का चतुर्थ परिच्छेद

लॉकेट और लम्सडन स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण १८१५ की जनवरी के प्रथम सप्ताह में छुट्टी पर चले गए। मेजर वेस्टन अरबी और फ़ारसी के तथा लॉकेट के स्थान पर रोएबक और रोएबक के स्थान पर जेम्स ऐट्‌किंसन की नियुक्ति हुई। किंतु ऐट्‌किंसन ने, जो मिंट में काम करते थे, अपना नया पद अस्वीकार किया। कौंसिल ने उसे अपनी अवज्ञा समझ उनसे जवाब तलब किया। अंत में उन्हें पद स्वीकार करना पड़ा।

१४ जनवरी, १८१५ को टी० रोएबक ने एवज़ी सरकारी मंत्री, ए० ट्रॉटर, को अध्यापक के रूप में लिखा—"कॉलेज कौंसिल के आदेश से आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप (सरकारी) परिषद् के माननीय उप-सभापति को इस बात की सूचना दें कि कॉलेज में लफ्टिनेंट प्राइस की अध्यक्षता में 'ब्रजभाखा' और पूर्वी भाषा के संबंध में व्याख्यान दिए जाते हैं। परीक्षक का कहना है कि संस्था में ऐसा कोई पंडित नहीं है जो इन बोलियों में अभ्यास तैयार करने और उनकी परीक्षा लेने में सहायता दे सके। इसलिए चालीस रुपया मासिक वेतन पर 'ब्रजभाखा', पूर्वी और संस्कृत से भली भाँति परिचित एक उत्तरी प्रांतों (Upper Provinces) का निवासी पंडित रखने की कौंसिल प्रार्थना करती है।" २० जनवरी, १८१५ को सरकार ने उनके लिए अपनी स्वीकृति दे दी।[2]

प्राइस की सहायता के लिए एक पंडित की आवश्यकता

५ सितंबर, १८१५ की बैठक में कौंसिल ने यह नियम बनाया कि जो व्यक्ति फ़ारसी और हिंदुस्तानी का ज्ञान न रखता हो उसे कॉलेज में न लिया जाय। उसने फ़ारसी, हिंदुस्तानी और अरबी के स्थायी विभाग के मुंशियों का मासिक वेतन तीस रुपया और अस्थायी विभाग के पंडितों और मुंशियों के लिए मासिक वेतन बीस रुपया निर्धारित किया।

फ़ारसी और हिंदुस्तानी का अनिवार्य ज्ञान

---

[1] फ़ो० वि०, १३ जून, १८१४—१२ फ़रवरी १८१६, हो०, मि०, जि० ४, पृ० ७६-१०३. इं० रे० वि०

[2] वही पृ० २१२

६ सितंबर, १८१४ के अनुसार ब्रजभाषा पढ़ाने वाले पंडितों के लिए बीस रुपया मासिक वेतन रक्खा गया।

अपने १६ जुलाई, १८१५ के पत्र में कोर्ट ने फिर कॉलेज के व्यय, अनुशासन आदि के संबंध में आपत्ति की। वास्तव में फ़ौजी विद्यार्थियों के दाखिले के कारण व्यय कोर्ट द्वारा स्वीकृत व्यय से अधिक हो रहा था। सहायक प्रोफ़ेसरों का खर्च भी कोर्ट नहीं चाहता था। ८ जनवरी, १८१६ को सरकारी मंत्री ने उन्हें हटाने के लिए एक पत्र भी लिखा। २६ जनवरी, १८१६ को कौंसिल ने देशी अध्यापकों के रखने अथवा अलग कर देने के संबंध में फ़ारसी, अरबी, संस्कृत, बँगला, हिंदुस्तानी, मराठी आदि के प्रोफ़ेसरों से परामर्श किया। देशी अध्यापकों में से कौंसिल ने प्रोफ़ेसरों का ध्यान विशेषतः ब्रजभाषा के अध्यापक लल्लूलाल जो पचास रुपया मासिक वेतन, हिंदुस्तानी विभाग के प्रधान मुंशी तारिणीचरण मित्र जो दो सौ रुपया मासिक वेतन, द्वितीय मुंशी मिर्ज़ा काज़िम अली जो सौ रुपया मासिक वेतन, तृतीय मुंशी मुहम्मद वाजिद जो अस्सी रुपया मासिक वेतन, और चतुर्थ मुंशी मुर्तज़ा खाँ की ओर जो साठ रुपया मासिक वेतन पाते थे आकृष्ट किया। इन लोगों का वेतन कम करने अथवा कम न करने के संबंध में भी प्रोफ़ेसरों से मत लिया गया। वैसे, इन लोगों की सेवाओं को देखते हुए कौंसिल वेतन कम करना नहीं चाहती थी। विचारों के आदान-प्रदान के पश्चात् कौंसिल ने ३० जनवरी, १८१६ को सपरिषद् गवर्नर-जनरल को पत्र लिखा। कोर्ट ने चाहे जिन कारणों से सहायक प्रोफ़ेसरों की नियुक्ति स्वीकार न की हो, कौंसिल को इस बात पर अत्यंत दुःख था। वास्तव में फ़ौजी विद्यार्थियों के कारण सहायक प्रोफ़ेसरों की नियुक्ति हुई थी। कोर्ट के ६ मई, १८१५ के पत्र में, जो कौंसिल को ८ जनवरी, १८१६ को मिला, इन सहायक प्रोफ़ेसरों को हटाने की आज्ञा दी गई थी। लेफ़्टिनेंट प्राइस ने अनेक फ़ौजी विद्यार्थियों को शिक्षा दी थी। उनकी शिक्षा से निश्चय ही सैनिक लाभ हुआ था। देशी सिपाहियों की बहुत बड़ी संख्या ब्रजभाषा बोलती थी। इसलिए कौंसिल ने प्रार्थना की कि या तो स्वयं गवर्नर-जनरल उनकी नियुक्ति के बारे में कुछ कहें अथवा जब तक कोर्ट का अंतिम निर्णय मालूम न हो जाय सैनिक विद्यार्थी दाखिल न किए जायँ। सहायक प्रोफ़ेसरों को अलग करना ही अंतिम सरकारी निश्चय होने की अवस्था में कौंसिल ने प्रार्थना की कि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उस समय कार्य कर रहे सहायक प्रोफ़ेसरों को ही लिया जाय, क्योंकि उन लोगों ने बड़ी तत्परता, लगन और उत्साह के साथ काम किया था। उन्हें अपने परिश्रम का पुरस्कार मिलना नितांत न्यायपूर्ण था। इन सब बातों के साथ-साथ कौंसिल ने दो-तीन वर्ष के आय-व्यय का लेखा भी गवर्नर-जनरल के पास भेजा। प्रोफ़ेसरों की रिपोर्टें भी कौंसिल को मिल गई थीं। कैरे ने लिखा कि लल्लूलाल का संबंध मेरे विभाग से नहीं है। उनके विषय में लेफ़्टिनेंट प्राइस से पूछा जाय। लम्सडन और टेलर ने अपने-अपने विभाग के देशी अध्यापकों की उपस्थिति आवश्यक बताई। इस समय मज़हर अली की मृत्यु हो चुकी थी। प्रोफ़ेसरों की रिपोर्टें पाकर कौंसिल ने लगभग सभी देशी अध्यापकों की समझ कर उन्हें ज्यों-का-त्यों रहने

कॉलेज का व्यय और कोर्ट: आवश्यक परिवर्तन। मज़हर अली की मृत्यु

]दिया 'भाखा के के लिए कौंसिल ने अपना निर्णय सरकारी निर्णय होने के समय तक स्थगित रक्खा।[1]

कौंसिल की ३० जनवरी, १८१६ की रिपोर्ट पाकर २३ मार्च, १८१६ को सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने संतोष प्रकट किया। फ़ौजी विद्यार्थियों के संबंध में अवश्य उन्होंने अपना निर्णय दिया। १८१३ में सैनिक विद्यार्थियों की संख्या बीस थी। फिर उनकी संख्या तीस हुई। किंतु औसत संख्या बीस से अधिक शायद ही कभी हुई थी। सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने सैनिक विद्यार्थियों की तत्कालीन संख्या दस निश्चित की और उनका अध्ययन-काल एक वर्ष। सेना के लिए इस प्रकार यथेष्ट संख्या में दुभाषिए मिल सकते थे। उनके लिए फ़ारसी, हिंदी या ब्रजभाषा का ज्ञान आवश्यक था। अरबी और संस्कृत के दुभाषियों की कोई आवश्यकता नहीं थी। साथ ही फ़ारसी और हिंदुस्तानी पढ़ाने के लिए एक ही मुंशी काफ़ी समझा गया। इस प्रकार के प्रबंध से व्यय भी कम हो जाता था और आवश्यकता की पूर्ति भी हो जाती थी। अस्तु, सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने निम्नलिखित व्यय निश्चित किया :

१० मुंशी, प्रत्येक को ३० रु० मा०	३६०० वार्षिक
पदक इत्यादि	१४०० ,,
	५०००

इससे कोर्ट द्वारा स्वीकृत व्यय तक कॉलेज का व्यय होने पर उन्नीस हज़ार चार सौ उन्तालीस रुपए वार्षिक की बचत होती थी। फ़ौजी विद्यार्थियों के कारण कुल व्यय उन्नीस हज़ार चार सौ रुपए होने पर उन्तालीस रुपए वार्षिक की बचत थी। गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार आगामी जुलाई से इसी प्रकार आर्थिक व्यवस्था रही।[2]

१३ सितंबर, १८१५ के कोर्ट के पत्रानुसार कौंसिल के मंत्री और परीक्षक-पद तोड़ देने की आज्ञा हुई। इन दोनों पदों पर आठ सौ रुपए मासिक खर्च होते थे। सरकारी मंत्री, रिकेट्स, ने इसकी सूचना कौंसिल को दी और १ मई, १८१६ से कोर्ट की आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया। कोर्ट ने साहित्यिक ग्रंथों पर व्यय भी पहले की भाँति बीस हज़ार रुपए वार्षिक तक सीमित कर दिया।[3]

१० मई, १८१६ को गवर्नर-जनरल के पास भेजे गए पत्र के अनुसार कॉलेज की व्यवस्था इस प्रकार थी :

यूरोपियन अध्यापक

कैप्टेन टेलर, हिंदुस्तानी भाषा के प्रोफ़ेसर	१००० रु० मा०
कैप्टेन रोएबक, एवज़ी मंत्री और परीक्षक	१२०० रु० मा०

[1]फ़ो० वि०, १३ जून, १८१४—१२ फ़रवरी, १८१६, हो०, मि०, जि० ४, पृ० ३६४-४१६, ४६५-४६६, ४६७ ४८०, ४८२-४८४, इं० रे० डि०

[2]फ़ो० वि०, २७ फ़रवरी, १८१६—२२ अप्रैल, १८१८, हो०, मि०, जि० ६, पृ० ४७ ४८, इं० रे० डि०

[3]वही, पृ० ७४-७६

देशी अध्यापक हिंदुस्तानी विभाग

प्रधान मुंशी	२०० रु० मा०	
द्वितीय ,,	१०० ,, ,,	
तृतीय ,,	८० ,, ,,	
चतुर्थ ,,	६० ,, ,,	
१२ मुंशी विद्यार्थियों के लिए, प्रत्येक को ४० रु० मा०	४८० ,, ,,	
नागरी सुलेखक	५० ,, ,,	
२ अनुवादक, प्रत्येक को ८० रु० मा०	१६० ,, ,,	
अस्थायी विभाग		११३० रु० मा०
१४ मुंशी, प्रत्येक को ३० रु० मा०	४२० ,, ,,	
६ पंडित, ,, ३० ,, ,,	१८० ,, ,,	
पिछले महीने में बीमार या छुट्टी पर गए मुंशियों की जगह काम करने वाले	७५ ,, ,,	६७५ रु० मा०[1]

कोर्ट ने कौंसिल के मंत्री और परीक्षकों के पदों पर आपत्ति की थी। इस संबंध में रोएबक ने एक पत्र कौंसिल के नाम लिखा जिसके साथ उन्होंने कौंसिल का एक पत्र भी नत्थी कर दिया था। किंतु इस संबंध में उस समय कोई विशेष निर्णय न हो सका। उसके बाद कॉलेज में केवल एक ही परीक्षक रह गया था। रोएबक के अतिरिक्त प्रोफ़ेसर और सहायक प्रोफ़ेसर भी परीक्षक का कार्य करते थे।

२ मार्च, १८१६ को सरकारी मंत्री, रिकेट्स, ने कोर्ट के १६ मई, १८१५ के पत्र का हवाला देते हुए पुस्तक-प्रकाशन-संबंधी चालीस हजार वार्षिक व्यय पर आपत्ति की। उस समय तक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं वे ही शिक्षा-कार्य के लिए बहुत समझी गईं। इसलिए कौंसिल को यह आदेश दिया गया कि अत्यधिक साहित्यिक मूल्य की पुस्तक के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की पुस्तक पर व्यय न किया जाय।[2] रोएबक ने २० जून, १८१६ के पत्र में कोर्ट की आज्ञा स्वीकार की। उसके बाद सरकारी मंत्री ने तत्कालीन व्यवस्था ठीक बताई। सैनिक विद्यार्थियों के दाखिले की संभावना थी। विद्यार्थियों को पुरस्कार, पदक आदि का वितरण बंद हो गया था। प्रोफ़ेसरों और सहायक (असिस्टेंट) प्रोफ़ेसरों के वेतन तथा पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की पुस्तक पर व्यय न करना आदि बातों के संबंध में भी सरकारी मंत्री ने लिखा। उन्होंने कॉलेज की कटी-छँटी आयोजना पसंद की और कौंसिल से एक नया विधान प्रस्तुत करने के लिए कहा।[3]

---

[1] वही, पृ० १०७-१०९

[2] वही, पृ० ११६-१२०

[3] वही, पृ० ११८-१०१

लॉकिट वापिस आने पर मंत्री और परीक्षक नियुक्त हुए और रोएबक द्वितीय परीक्षक।

सरकारी मंत्री के २२ जून, १८१६ के सरकारी पत्रानुसार कौंसिल के मंत्री लॉकेट ने २ नवंबर, १८१६ को नया विधान गवर्नर-जनरल के विचारार्थ भेजा।

कॉलेज के विधान का पाँचवाँ परिच्छेद

इस विधान में आर्थिक पुरस्कार स्थगित होने और ३० मई और ४ जुलाई, १८१५ के पत्रों में स्वीकृत सभी बातों को स्थान दिया गया। आगामी परीक्षा दिसंबर में होने वाली थी इसलिए उन्होंने नवंबर में नया विधान लागू करने की आज्ञा माँगी। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के चतुर्थ परिच्छेद (३ जून, १८१४) के स्थान पर १६ नवंबर, १८१६ को पाँचवें परिच्छेद पर सरकारी स्वीकृति प्राप्त हुई। तत्पश्चात् कौंसिल ने उसे प्रेस भेज दिया।[1]

टेलर और आर० मार्टिन द्वारा मीर बख्शीश अली तथा अन्य मुंशियों की फ़ारसी और हिंदुस्तानी में परीक्षा ली जाने पर मीर बख्शीश अली द्वितीय मुंशी नियुक्त हुए। भविष्य में मीर मुंशी के पद के लिए भी वे योग्य हो गए थे। उनसे फ़ारसी के उद्धरणों का 'हिंदी और हिंदुस्तानी' में अनुवाद कराया गया था। यहाँ 'हिंदी' और 'हिंदुस्तानी' शब्द, पृथक अर्थों में, ध्यान देने योग्य हैं। अन्य परीक्षार्थी-मुंशी काज़िम अली, अब्बास अली, सैयद अली यूसुफ़ अली और गंगा विष्णु थे। प्रत्येक को साठ रुपए मासिक मिलते थे।[2]

एच० वुड, हिसाब-निरीक्षक, के पास मंत्री, लॉकेट, ने १६ दिसंबर, १८१६ को कॉलेज का विवरण भेजा था। इस विवरण की विशेषता यह है कि प्रत्येक अध्यापक की तत्कालीन अवस्था इसमें दी गई है। हमारे विषय से संबंधित प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों का विवरण इस प्रकार है :

सरकारी नौकरी पाने की मूल तिथि	अपने पद पर काम करने की मूल तिथि	व्यक्ति की वर्तमान अवस्था	ईसाई व्यक्ति का नाम	देशी व्यक्ति का नाम	मासिक वेतन
				मुंशी :	
×	×	×	×	×	×
×	सितंबर,१८०१	४५ वर्ष	×	तारिणी चरण मित्र	२००
×	×	×	×	×	×
×	फ़रवरी,१८०२	५६ वर्ष	×	महानंद	५०
×	फ़रवरी,१८०२	५५ वर्ष	×	श्री लाल कवि	५०
×	×	×	×	×	×
×	जनवरी,१८१५	४५ वर्ष	×	इंद्रेश्वर	४०[3]

---

[1] वही, पृ० २५२-२५५

[2] वही, पृ० २६२-२६५

[3] वही, पृ० २६० २६१

लल्लूलाल की जन्म-तिथि

इस विवरण से लल्लूलाल की जन्म-तिथि १७४७ ठहरती है। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के विवरणों से उनकी मृत्यु-तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होती। केवल अनुमान लगाया जा सकता है। जिस वर्ष उन्होंने कॉलेज की नौकरी छोड़ी संभवतः उसी वर्ष उनकी मृत्यु हुई, अथवा नौकरी करते हुए ही वे मृत्यु को प्राप्त हुए। कॉलेज में नौकरी करते हुए उन्हें अनेक वर्ष हो गए थे। यदि जीवित रहते तो उन्हें पेंशन अवश्य मिलती। किंतु कॉलेज के विवरणों में उनकी पेंशन का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता।

हिंदुस्तानी के सहायक प्रोफ़ेसर, रसेल मार्टिन, अस्वस्थ रहने के कारण १८ जनवरी, १८१७ को यूरोप लौट गए। उनके स्थान पर रोएबक की नियुक्ति हुई। कोर्ट की आज्ञानुसार कौंसिल के सहायक मंत्रि पद से वे हट ही चुके थे। सहायक की हैसियत से उन्हें दो सौ रुपया मासिक वेतन मिलता था। पेट्किंसन को भी हिंदुस्तानी के परीक्षक होने से दो सौ रुपया मासिक वेतन मिलता था। २२ जून, १८१६ के पत्रानुसार प्रोफ़ेसर या सहायक प्रोफ़ेसर अपने विषय के परीक्षक नहीं बन सकते थे। किंतु रोएबक अपवाद-स्वरूप रक्खे गए।

काज़िम अली 'जवाँ' की मृत्यु

वेलेज़ली के कहने से लखनऊ के रेज़ीडेंट, कर्नल स्कॉट, ने काज़िम अली जवाँ को लखनऊ से भेजा था। ३ जुलाई, १८१६ को उनका देहांत हो गया। टेलर ने उनकी विधवा स्त्री और संतान के लिए पेंशन की सिफ़ारिश की, किंतु कौंसिल ने उनका प्रस्ताव स्वीकार न किया।

एवज़ी हिसाब-निरीक्षक, डब्ल्यू० एच० ओक्स, ने लॉकेट से कॉलेज का १ मई, १८१८ तक विवरण माँगा। लॉकेट के इस विवरण के अनुसार केवल लम्सडन और कैरे ग़ैर-सरकारी कर्मचारी थे। कैरे की नियुक्ति अप्रैल, १८०१ में हुई थी। वे बंगला और संस्कृत के अध्यापक की हैसियत से एक हजार रुपया मासिक वेतन पाते थे। इसी विवरण के अनुसार 'भाखा' विभाग में लल्लूलाल (५० रु० मा०) मुंशी, ईश्वरचंद्र (४० रु० मा०) पंडित और महानंद (५० रु० मा०) नागरी सुलेखक थे।[1] १७ दिसंबर, १८१८ तक हिंदुस्तानी विभाग के अध्यापकों की व्यवस्था में कोई परिवर्तन न हुआ। तारिणीचरण मित्र की असाधारण प्रतिभा के लगभग सभी लोग क़ायल थे। उस समय एक कोष तैयार करने में वे रोएबक की सहायता कर रहे थे। १० सितंबर, १८१८ को बेस्टन ने अपनी नौकरी छोड़ दी।

ब्रजभाषा-शिक्षा

सरकार ने विद्यार्थियों की योग्यता का मापदंड कम कर देने के संबंध में कौंसिल से पत्र-व्यवहार किया। कौंसिल के मंत्री ने ६ अप्रैल, १८१९ को (अब) मेजर जे० डब्ल्यू० टेलर, लम्सडन, पेट्किंसन और रोएबक से मत माँगे। पिछली रिपोर्ट और रोएबक की ब्रजभाषा के संबंध में रिपोर्ट पर गवर्नर-जनरल पूर्ण संतोष प्रकट कर ही चुके थे। केवल कुछ शासन-संबंधी विषयों पर मतभेद था। रोएबक के पत्रानुसार शिक्षा का मापदंड जितना कम होना चाहिए उतना

---

[1] फो० वि०, १ मई १८१८ ६ दिसंबर १८१९ हो० मि०, जि० ७, पृ० २१ ६० ६० वि०

तो उसी समय था। हिंदुस्तानी के एवज़ी परीक्षक, ऐट्किंसन, के पत्रानुसार मापदंड कुछ कम कर देने से संस्था के उद्देश्यों की पूर्ति ही होती थी। क्योंकि विद्यार्थियों में हिंदुस्तानी से अँगरेज़ी में और अँगरेज़ी से हिंदुस्तानी में अनुवाद करने की यथेष्ट योग्यता थी। उनके मतानुसार कॉलेज का उद्देश्य विद्वान् उत्पन्न न कर विद्यार्थियों को शासन-संबंधी साधारण कार्य करने योग्य बनाना था। दस मे से एक ही व्यक्ति ऐसा निकलता था जो साधारण से अधिक ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक रहता था। जिसे अधिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रहती थी उसके लिए उपयुक्त साधन उपस्थित थे। प्राइस के अनुसार ब्रजभाषा की शिक्षा बहुत थोड़े सैनिक विद्यार्थियों को दी जाती थी। किंतु इस समय सरकार किसी अंतिम निर्णय पर न पहुँची सकी और शिक्षा का मापदंड पहले की भाँति बना रहा।

कॉलेज मंत्री के १ मई, १८१६ के विवरणानुसार अध्यापक-वर्ग गत वर्ष की भाँति था। किंतु इस विवरण का महत्त्व प्रत्येक अध्यापक के स्थायी होने की तिथि की दृष्टि से अवश्य है। उनमें से कुछ की तिथियाँ इस प्रकार हैं :

	स्थायी होने की तिथि
१ जनवरी, १८०७ श्री लाल कवि	१८०२
२० जनवरी, १८१५ इद्रेश्वर	१८१५
मेजर जे० डब्ल्यू० टेलर	१८०८
कैप्टेन लॉकेट	१८०८
कैप्टेन रोएबक (द्वितीय परीक्षक के रूप मे)	१८११
लेफ़्टिनेंट विलियम प्राइस	१८१३
कैप्टेन रोएबक (हिंदुस्तानी के एवज़ी सहायक प्रोफ़ेसर के रूप मे)	१८१६
ऐट्किसन (हिंदुस्तानी के एवज़ी परीक्षक)	१८१६

प्रोफ़ेसर लम्सडन कुछ अवकाश लेना चाहते थे, इसलिए लेफ़्टिनेंट प्राइस उनके स्थान पर नियुक्त हुए। कुछ महीने बाद कैप्टेन रोएबक की मृत्यु हो गई। प्राइस, डी० रडैल (Ruddell) और लेफ़्टिनेंट जे० बेकेट (Beckett) ने उनके स्थान पर हिंदुस्तानी के सहायक प्रोफ़ेसर नियुक्त होने के लिए प्रार्थना-पत्र भेजे। लेफ़्टिनेंट ए० फ़ैल (Fell) ने भी अपना प्रार्थना-पत्र भेजा। किंतु २५ जनवरी, १८२० को रडैल हिंदुस्तानी के सहायक प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। अस्तु, निम्नलिखित परिवर्तनों के अतिरिक्त, १ मई, १८२० को अध्यापक-वर्ग लगभग पहले की भाँति था :

१६ नवंबर, १८१३ लेफ़्टिनेंट डब्ल्यू० प्राइस [१८१३], बॅगला और संस्कृत के सहायक प्रोफ़ेसर, ४०० रु० मा०

२१ जनवरी, १८१७ ऐट्किसन, हिंदुस्तानी के एवज़ी परीक्षक, २०० रु० मा०

२५ जनवरी, १८२० लेफ़्टिनेंट रडैल [१८२०], हिंदुस्तानी के सहायक प्रोफ़ेसर, ४०० रु० मा०

१ जनवरी १८०७ श्री लाल कवि [१८०२] मुशी, ५० रु० मा०

२० जनवरी, १८१५ नरसिंह [१८१८], पंडित, ४० रु० मा०[1]

२८ जून, १८२० को कोर्ट ने फिर एक पत्र भारतीय सरकार के नाम लिखा जिसमें उसने सैनिक विद्यार्थियों के कारण बढ़े हुए व्यय, सहायक प्रोफ़ेसरों के पद तथा अन्य आर्थिक समस्याओं पर आपत्ति की २१ मई, १८०६ में स्वीकृत पंद्रह हज़ार वार्षिक व्यय से कोर्ट कदापि आगे बढ़ना नहीं चाहता था। साथ ही उसने अपने ४ दिसंबर, १८१६ के पत्र में किसी प्रकार का भी परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता न समझी और विधान के पाँचवें परिच्छेद में आवश्यक परिवर्तन करने की आज्ञा दी। अतएव गवर्नर-जनरल ने कौंसिल से परीक्षा, विद्यार्थियों की कॉलेज में अध्ययन की अवधि, व्यय आदि के संबंध में सम्मति माँगी और २६ जनवरी, १८२१ को सरकारी मंत्री, लाशिंगटन, ने उसे इस संबंध में एक पत्र लिखा।[2]

कॉलेज के व्यय पर कोर्ट की फिर आपत्ति और आवश्यक परिवर्तन

कौंसिल ने अपनी रिपोर्ट ३ मार्च, १८२१ को गवर्नर-जनरल के विचारार्थ भेज दी। कौंसिल ने कोर्ट की इच्छा-पूर्ति करने का वचन दिया। वह सहायक प्रोफ़ेसर का पद तोड़ने, केवल दो परीक्षक रखने, मंत्रि-पद को परीक्षक-पद से अलग रखने—वह भी अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा, एवज़ी परीक्षक हटाने, और कॉलेज के भारतीय अध्यापकों की संख्या कम करने के लिए तैयार थी। सैनिक विद्यार्थियों के संबंध में उसने अपना मतभेद प्रकट किया। उसका नया प्रस्ताव फ़ारसी और हिंदुस्तानी विभागों में क्रमशः छः-छः मुंशी, बँगला विभाग में चार पंडित और एक हिंदुस्तानी अनुवादक रखने का था। इससे तीस हज़ार नौ सौ चवालीस रुपए वार्षिक की बचत होती थी। परीक्षक का मासिक वेतन पाँच सौ रुपया रक्खा गया और संख्या दो। मासिक वेतन के अतिरिक्त फ़ौजी भत्ता एक सौ चौरानबे, यदि लेफ़्टिनेंट हो तो कुछ अधिक, रखने का विचार हुआ। इससे सोलह हज़ार छः सौ छप्पन रुपए वार्षिक व्यय बढ़ने की आशंका थी। किंतु तीस हज़ार नौ सौ चवालीस में से घटाने पर फिर भी चौदह हज़ार दो सौ अठासी की बचत होती थी। फिर प्रोफ़ेसरों की अनुपस्थिति में परीक्षकों के पढ़ाने का सुझाव पेश किया गया और गुंजायश होने पर भारतीय अध्यापकों की संख्या और कम करने की सूचना दी। पुरस्कार, पदक-वितरण आदि के संबंध में पहले की भाँति प्रतिबंध रक्खे गए।[3]

२३ मार्च, १८२१ को सरकारी मंत्री, लाशिंगटन, ने गवर्नर-जनरल के विचारों का आशय देते हुए कौंसिल को पत्र लिखा। गवर्नर-जनरल ने सैनिक विद्यार्थियों का दाखिला बंद कर दिया। लेकिन चूँकि असैनिक विद्यार्थी कॉलेज से वर्ष में दो बार निकलते थे, इसलिए, सहायक प्रोफ़ेसर हटाने पर भी, सैनिक विद्यार्थियों का सीमित संख्या

---

[1] फ़ो० वि०, १३ दिसंबर, १८१४—६ मई, १८२२, हो०, मि० जि० ८, पृ० १११-११६, इं० रे० डि०। कोष्ठकों में स्थायी होने की तिथियाँ हैं।

[2] वही, पृ० २२१ २३२

[3] वही, पृ० २५२ २६६

में दाखिला किया जा सकता था। संभवतः कोर्ट का ध्यान इस ओर नहीं गया था। व्यय कोर्ट की इच्छा से भी अधिक कम कर दिया गया था। सैनिक विद्यार्थियों की सीमित संख्या की शिक्षा उन्होंने अधिक लाभदायक समझी। इस संबंध में उन्हें आशा थी कि कोर्ट अपना पिछला आज्ञापत्र वापिस ले लेगा। किंतु कोर्ट की आज्ञा प्राप्त होने तक उन्होंने सैनिक विद्यार्थियों का दाखिला बिल्कुल बंद कर दिया और उस समय जो सैनिक विद्यार्थी थे उन्हें अपना पाठ्य-क्रम पूर्ण करने की आज्ञा दी। सहायक प्रोफ़ेसर हटाने के लिए उन्होंने अगले महीने की पहली तारीख निश्चित की। इन बातों के अतिरिक्त गवर्नर-जनरल ने कौंसिल की रिपोर्ट पर पूर्ण संतोष प्रकट किया।[1]

दो परीक्षकों की प्रस्तावित जगहों के लिए (अब) कैप्टेन प्राइस, लेफ़्टिनेंट डी० रडैल और लेफ़्टिनेंट जेम्स ऐलैक्जैंडर एटन (Ayton) ने प्रार्थना-पत्र भेजे।[2] गवर्नर-जनरल ने प्राइस और रडैल को परीक्षक नियुक्त किया।[3]

१ मई, १८२१ के विवरण के अनुसार हिंदुस्तानी विभाग के दस मुंशियों में से तारिणीचरण मित्र प्रधान मुंशी और महानद नागरी सुलेखक थे। 'भाखा' विभाग में लल्लूलाल मुंशी और नरसिंह (१८१८) पंडित थे। कोर्ट ने अपने ४ जुलाई, १८२१ के पत्र में कॉलेज की नई व्यवस्था पर पूर्ण संतोष प्रकट किया। गवर्नर-जनरल के विचारों से वह पूर्णतया सहमत था। इस बात की सूचना कौंसिल को दे दी गई।[4]

नरसिंह पंडित कॉलेज से अलग

स्थायी विभाग के नरसिंह 'भाखा'-पंडित ने १२ मार्च, १८२१ से चार महीने की छुट्टी ली थी। अपने एवज़ में वे एक दूसरा व्यक्ति रख गए थे। किंतु छुट्टियाँ समाप्त होने पर भी वे वापिस न आए। इसलिए कौंसिल ने अपनी २१ दिसंबर, १८२१ की बैठक में ३१ दिसंबर, १८२१ से उन्हें स्थायी विभाग से अलग कर दिया।[5] लम्सडन के लौट आने पर लेफ़्टिनेंट प्राइस कॉलेज से अलग कर दिए गए।

विद्यार्थियों की शिक्षा के मापदंड का ऊपर उल्लेख हो चुका है। उस समय सरकार किसी निर्णय पर न पहुँच सकी थी। १८२२ के प्रारंभ में सरकार ने विद्यार्थियों के अनुशासन, परीक्षा-क्रम, नौकरी के लिए योग्यता का मापदंड आदि समस्याओं के संबंध में फिर एक नई रिपोर्ट माँगी। कौंसिल के मंत्री ने २५ फ़रवरी, १८२२ को विभिन्न मिनिट्स सरकार के सामने रक्खा। जहाँ तक हो सकता था वे जल्दी से जल्दी विद्यार्थियों का शिक्षा-काल समाप्त कर देना चाहते थे।[6]

---

[1] वही, पृ० ३७६-३८०
[2] वही, पृ० ३६६-३६८
[3] वही, पृ० ३७६-३८०
[4] वही, पृ० ५११-५१४
[5] वही पृ० ५२७
[6] वही पृ० ५५५ ५५८

सरकार ने इस संबंध में रिपोर्ट माँगी। १३ अप्रैल, १८२२ को मंत्री, लॉकेट ने अपने पत्र के साथ नए विधान का मसौदा गवर्नर-जनरल के विचारार्थ भेजा। उससे एक दिन पहले कौंसिल के सदस्यों ने उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिए थे। और इसी तिथि अर्थात् १२ अप्रैल, १८२२ से नए विधान का छठा परिच्छेद लागू हुआ माना गया। चौथे परिच्छेद में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर यह नया परिच्छेद बनाया गया था।[1] ३ मई, १८२२ को सरकार ने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी।[2]

कॉलेज के विधान का छठा परिच्छेद

१ मई, १८२२ का कॉलेज-विवरण लगभग पहले विवरण की भाँति है। 'भाखा' विभाग में केवल लल्लूलाल का ही उल्लेख है, अन्य किसी का नहीं।[3] १ मई, १८२३ के विवरण में भी केवल लल्लूलाल का उल्लेख मिलता है।[4] कॉलेज के विवरणों में उनका यह अंतिम उल्लेख है। संभवतः १ मई, १८२४ से पहले ही उनका देहांत हो गया था। यदि नियमित रूप से वे अवकाश ग्रहण करते तो उन्हें पेंशन मिलती। किंतु उनकी पेंशन का उल्लेख कहीं नहीं मिलता।

लल्लूलाल का अंतिम उल्लेख

लल्लूलाल के बाद कॉलेज को एक ब्रजभाषा-अध्यापक की आवश्यकता थी। अंत में विलियम प्राइस को एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण मिले जो पिछले छः वर्ष से श्रीरामपुर मिशनरियों के यहाँ कनौजी बोली में ईसाई धर्म-पुस्तक के नए नियम (New Testament) का अनुवाद कर रहे थे। अनुवाद कार्य समाप्त हो जाने और लल्लूलाल की जगह खाली हो जाने से कैरे ने उन्हें प्राइस के पास भेज दिया। शुक्रवार और फिर शनिवार की दोपहर को प्राइस ने उनकी संस्कृत और हिंदी की बोलियों (Hindee dialects) में परीक्षा ली। पूर्ण संतुष्ट हो जाने पर प्राइस ने २३ सितंबर, १८२३ को उन्हें रख लेने के लिए कौंसिल से सिफ़ारिश की—विशेष रूप से उस समय जब कि वे तारिणीचरण मित्र के संग्रह-ग्रंथ की आयोजना के अंतर्गत 'प्रेमसागर' के नए संस्करण के प्रूफ़ ठीक करने और प्राइस कृत शब्दकोष का संशोधित और परिवर्धित संस्करण तैयार करने में सहायक सिद्ध हो सकते थे। इन नए 'भाखा'-पंडित का नाम गंगाप्रसाद शुक्ल था।[5]

कॉलेज के लिए ब्रजभाषा-अध्यापक की आवश्यकता और गंगाप्रसाद की नियुक्ति

ग्रंथ-प्रकाशन की दृष्टि से टेलर का समय, गिलक्राइस्ट के बाद, विशेष महत्त्वपूर्ण

---

[1] वही, पृ० ५९७-६००

[2] फ़ो० वि०, १७ जून, १८२२—१९ दिसंबर, १८२४, हो०, मि०, जि० ६, पृ० ६७, इं० रे० डि०

[3] वही, पृ० ६०८-६११

[4] वही, पृ० २१४-२१८

[5] फ़ो० वि०, २९ मार्च १८०६—१० जुलाई १८११, हो० मि०, जि० ९, पृ० १ इं० रे० डि०

उनके समय में माकिनटोश के शब्दकोष (१८०८) की चार सौ अस्सी और मीर शेर अली कृत ऐतिहासिक ग्रंथ के द्वितीय भाग (१८०८) की सौ प्रतियाँ (सौ चौपेजी पृष्ठ, साढ़े छः रुपया फ़ी प्रति के हिसाब से) कौंसिल ने मोल लीं। कौंसिल की २५ मार्च, १८०६ की बैठक में हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर का १८ दिसंबर, १८०८ का लिखा हुआ पत्र पढ़ा गया। इस पत्र के अनुसार लल्लू जी लाल कवि ने एक प्रार्थना-पत्र भेजा था जिसमें उन्होंने 'प्रेमसागर' के शेषांश और 'राजनीति' की छपाई के संबंध में लिखा था। टेलर के मतानुसार ये दोनों ग्रंथ हिंदुस्तानी भाषा के परिपक्व ज्ञान के लिए अत्यंत सहायक थे। 'भाखा' में गद्य-ग्रंथों की कमी और इन दोनों ग्रंथों की भाषा शुद्ध और ठीक-ठीक होने के कारण कौंसिल के संरक्षण के वे उपयुक्त थे। शुद्ध और ठीक-ठीक 'भाखा'-गद्य लिखने वालों में, टेलर के मतानुसार, लल्लूलाल से अधिक योग्य और कोई पंडित नहीं था। इसके अतिरिक्त टेलर ने पचीस-पचीस रुपया मासिक वेतन के आधार पर दो कातिब और सत्रह-सत्रह रुपया मासिक वेतन के आधार पर दो लेखक, जिनमें से एक नागरी-लेखक, माँगे, क्योंकि मजदूरी के हिसाब से रक्खे जाने वाले लेखकों का ज्ञान अच्छा न था।[1] कौंसिल के मंत्री, विलियम हंटर, ने टेलर के इस पत्र का हवाला देते हुए ३१ जनवरी, १८०६ को स्थानापन्न सरकारी मंत्री, जॉर्ज डुकर, को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने टेलर द्वारा निर्दिष्ट ग्रंथों की उपयोगिता की दृष्टि से प्रत्येक ग्रंथ की सौ-सौ प्रतियाँ लेने की आज्ञा माँगी। 'प्रेमसागर' में दो सौ चौपेजी पृष्ठ थे और अब तक दी जाने वाली दर के हिसाब से एक प्रति का मूल्य तेरह रुपया होता था। 'राजनीति' में दो सौ बीस अठपेजी पृष्ठ थे और एक प्रति का मूल्य सात रुपया पड़ता था। छप जाने पर हिसाब में कुछ घट-बढ़ हो जाने की संभावना थी। ३ फ़रवरी, १८०६ को सरकार ने अपनी स्वीकृति दे दी।[2] डॉ० हंटर द्वारा प्रकाशित 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी' की पचास-पचास प्रतियाँ बनारस, बंबई और मद्रास के विद्यार्थियों के उपयोग के लिए भेजी गईं।

ग्रंथ-प्रकाशन

'प्रेमसागर' और 'राजनीति'

२२ फ़रवरी, १८०६ को गिलक्राइस्ट के एजेंट, मेसर्स माकिनटोश फ़ुल्टन ऐंड कंपनी, ने गिलक्राइस्ट के फ़ुटकर ग्रंथों के लिए छः सौ छः सिक्का रुपए माँगे। ये ग्रंथ कॉलेज को दे दिए गए थे। २ मार्च, १८०६ को उन्हें सरकारी उत्तर मिला। 'इंडियन गाइड' की तेईस प्रतियों के लिए उन्हें केवल एक सौ चौरासी रुपए दिए गए। 'शकुंतला नाटक' का मूल्य पिछले पाँच हज़ार में शामिल था।

संस्कृत प्रेस के प्रोप्राइटर (मालिक) बाबूराम पंडित ने 'बिहारी सतसई' प्रकाशित की थी। 'पुरानी हिंदी या ब्रजभाखा' का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ होने की दृष्टि से कौंसिल के ३ मई, १८०६ के पत्रोत्तर में ५ मई, १८०६ को सरकारी स्वीकृति प्राप्त हुई। दो रुपए छः आने छः पाई (सिक्का रुपया)

बिहारी सतसई

---

[1] वही

[2] वही, पृ० २-३

फी प्रति के हिसाब से सौ प्रतियों का मूल्य दो सौ चालीस रुपया दस आना (सिक्का रुपया) होता था। प्रत्येक प्रति में एक सौ तीन अठपेजी पृष्ठ थे।[१]

सदल मिश्र कृत हिंदी-फ़ारसी-शब्द-सूची

२७ मई, १८०९ की बैठक में कौंसिल ने 'हिंदी' और फ़ारसी-शब्द सूची का अनुवाद करने पर सदल मिश्र को पचास रुपए दिए।

'राजनीति'

लल्लूलाल कृत 'राजनीति' की सौ प्रतियाँ कॉलेज के पुस्तकालय में आ गई थीं, इसलिए कौंसिल के मन्त्री, विलियम हंटर, ने २६ मई, १८०९ को सरकारी मन्त्री, डुकर, के नाम एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने पुस्तक के मूल्य के बिल पर सरकारी स्वीकृति चाही। पिछली ३ फरवरी को सरकार ग्रंथ के लिए स्वीकृति दे चुकी थी। किंतु उस समय ग्रंथ के दो सौ बीस अठपेजी पृष्ठों में समाप्त होने की संभावना थी और जिसका मूल्य साढ़े सात रुपए फ़ी प्रति होता था। किंतु छपने पर उसकी पृष्ठ-संख्या दो सौ सत्तावन हुई, इसलिए फ़ी प्रति का बढ़ा हुआ मूल्य साढ़े आठ रुपए हुआ अथवा कुल प्रतियों का मूल्य आठ सौ साढ़े सैंतीस सिक्का रुपया होता था। इस पर सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने २८ जुलाई (?), १८०९ को अपनी स्वीकृति दी।[२]

'रामायण'

'बिहारी सतसई' के बाद संस्कृत प्रेस के प्रोप्राइटर बाबूराम पंडित ने तुलसी कृत 'रामायण' प्रकाशित करने की सोची। 'पूर्वी बोली (Dialect) में, अथवा उस बोली में जो बनारस, अवध इत्यादि के साथ-साथ दिल्ली से पूर्व के सूबों में बोली जाती थी' 'रामायण' का विशेष स्थान था। इसलिए १३ जनवरी, १८१० को विलियम हंटर ने सरकारी मंत्री, डुकर, के नाम पत्र लिखा और ग्रंथ के लिए सिफ़ारिश की। बँगला और संस्कृत के प्रोफ़ेसर केरे के मतानुसार यह वह बोली थी जो संस्कृत से निकली थी और हिंदुओं में जिसका अत्यधिक प्रचार था। हिंदुस्तान में हिंदू जाति ही सबसे बड़ी थी। अतएव सरकार का इस ग्रंथ के प्रकाशन की ओर ध्यान जाना अनिवार्य था। केरे के मतानुसार, और वैसे भी, भारतवर्ष की समस्त बोलियों के ग्रंथ प्रकाशित करना उपयोगी कार्य था। 'रामायण' की इस प्रति में बाबूराम पंडित पाँच सौ पृष्ठ रखना चाहते थे। चार रुपए प्रति सौ पृष्ठ के हिसाब से उन्होंने बीस रुपए फ़ी प्रति मूल्य निर्धारित किया। १९ जनवरी, १८१० के पत्र में परिषद् के उप-सभापति ने कौंसिल का प्रस्ताव स्वीकार किया।[३]

लल्लूलाल कृत 'नक़लियात-इ-हिंदी' या 'लतायफ़-इ-हिंदी' और ब्रजभाषा-व्याकरण

२४ जनवरी, १८१० को टेलर ने कौंसिल के मंत्री, विलियम हंटर, के नाम एक पत्र लिखा जिसके साथ उन्होंने 'हिंदी मुंशी' लल्लू जी लाल की रचनाओं, 'नक़लिआत-इ-हिंदी' और ब्रजभाषा-व्याकरण, के संबंध में दिया गया प्रार्थना-पत्र भेजा था। हिंदुस्तानी के ज्ञान के लिए ये रचनाएँ आवश्यक समझी गई थीं। लल्लू जी लाल का प्रार्थना-पत्र फ़ारसी भाषा और लिपि में इस प्रकार है :

---

[१] वही, पृ० ९३-९४

[२] वही, पृ० १२१-१२२

[३] वही, पृ० १८०-१८१

'खुदावंदान-इ- नैमत्त दामा इक़बाल अहुम

नक़्लियात-इ-हिंदी तसनीफ़-इ-फ़िदवी बज़ुबान-इ-रेख़्ता मुतज़म्मिन अक्सर ज़रबुल मसाल व दोहा व लतायफ़ ओ नज़्मात नक़्लियात-इ-मरक़ूमुस्सदर अर आवुर्दा व तर्जुमा फ़र्द-इ-जॉन विलियम टेलर व इब्राहम लॉकेट साहेब बज़ुबान-इ-अँगरेजी इस्बुल हुकुम साहिब-इ-मुदर्रिस जह ते साहबान-इ-मुताल्लमीन मुब्तदी मुन्तख़ह (?) मीगर्दद व नक़्लियात मज़्कूरा तबक़ात-इ-हदों (?) तख़मीनन से सद सफ़ा ख़्वाहद शुद फ़ी सद ब नक़्लियात हिसाब सः रुपया व चहार आना हम गी (?) क़ीमत यक जिल्द तमाम मय लुग़ात नौ रुपया दुवाज़्दः आना व क़ायदा-इ-सर्फ़ ज़बान ब्रज कि बमूजिब-इ-फ़र्माइश-इ-साहिबान-इ-ममदूहीन फ़िदवी तालीफ़ कर्दा मए तर्जुमा-इ-आँ बज़ुबान-इ-अँगरेज़ी कमोबेश हफ्ताद वो पंज सफ़ा मज्कूरा चहार रुपया चहारदः आना मीशवद लिहाज़ा उम्मीदवार-इ-तफ़ज़्ज़ुला (?) अस्त कि यक यक सद जिल्द अज़हर किताब मर्क़ूम-इ-सदर ब कुतुबख़ाना सर्कार-इ-दौलत मदार कंपनी बहादुर अदामा इक़बाल अहुम ख़रीद शवद् वाजिब बूद अर्ज़ नमूद

ज़्यादः अफ़ताब-इ-दौलत तार्बा व दरख़्शाँबाद

अरज़ी

फ़िदवी श्री लाल कवि''[1]

(फ़ारसी लिपि से)

टेलर के पत्र का हवाला देते हुए कौंसिल के मंत्री ने २५ जनवरी, १८१० को सरकारी मंत्री, डुकर, के नाम पत्र लिखा जिसमें उन्होंने परिषद् के उप-सभापति से प्रार्थना की कि हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर ने हिंदुस्तानी विभाग के 'भाखा'-मुंशी लल्लूलाल कवि के दो ग्रंथों की जो सिफ़ारिश की है उसे स्वीकार किया जाय। पहला ग्रंथ अर्थात् 'नक़्लियात-इ हिंदी' कहावतों से पूर्ण तथा बामुहावरा हिंदुस्तानी और हिंदुई की कहानियों का संग्रह था। साथ में दुर्बोध और असाधारण शब्दों की अर्थ-सहित सूची भी कैप्टेन टेलर और लेफ़्टिनेंट लॉकेट ने जोड़ दी थी। दूसरे ग्रंथ में ब्रजभाषा-व्याकरण के सिद्धांतों का ब्रजभाषा और अँगरेजी में संक्षिप्त विवरण था। पहले ग्रंथ की पृष्ठ-संख्या तीन सौ अठपेजी और दूसरे की पचहत्तर चौपेजी रक्खी गई। कॉलिज के प्रचलित दर से पहले ग्रंथ का मूल्य नौ रुपया बारह आना फ़ी प्रति और दूसरे ग्रंथ का मूल्य चार रुपया चौदह आना फ़ी प्रति रक्खा गया। कौंसिल के मंत्री ने प्रत्येक ग्रंथ की सौ-सौ प्रतियाँ लेने की प्रार्थना की। दोनों का कुल मूल्य एक हज़ार चार सौ बासठ रुपया आठ आना होता था। २६ जनवरी, १८१० को उन्हें सरकारी स्वीकृति मिल गई।[2]

'गुलबकावली' और 'हफ़्त पैकर' का हिंदुस्तानी पद्य में अनुवाद करने पर क्रमशः मुंशी रुक्नुद्दीन और हैदरबख़्श को दो-दो सौ रुपए का पुरस्कार दिया गया। इसी समय कौंसिल ने कोलब्रुक कृत 'मध्य देश' तथा भारतवर्ष की अन्य भाषाओं की शब्द-सूचियों

---

[1] वही, पृ० १८२

[2] वही, पृ० १८२ १८४

को प्रतिलिपि कराने का प्रस्ताव स्वीकार किया। कैप्टेन टेलर के कहने से 'इंतखाब मीर सोज़' की तीन रुपया बारह आना चार पाई फ़ी प्रति के हिसाब से सौ प्रतियाँ खरीदी गईं।

विलियम हंटर द्वारा १० फ़रवरी, १८१० को कौंसिल के सभापति हारिंगटन और अन्य सदस्यों के नाम लिखे गए पत्र से पता चलता है कि 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी' की रचना में उन्हें लल्लूलाल और तारिणीचरण मित्र की सहायता मिल रही थी। किंतु कार्य अधिक होने से उन्हें और भी देशी विद्वानों की आवश्यकता थी। उन्हें चालीस रुपए मासिक वेतन पर एक मुंशी और तीस रुपए मासिक वेतन पर एक पंडित मिल भी गया था। १ फ़रवरी, १८०६ से अब तक का व्यय भी वे चाहते थे। कौंसिल ने सरकार से उनकी सिफ़ारिश की और १६ फ़रवरी, १८१० को उन्हें सत्तर रुपए मासिक व्यय की सरकारी स्वीकृति मिल गई।[1]

टेलर ने सौदा की रचनाएँ प्रकाशित करने के लिए आज्ञा माँगी। किंतु कौंसिल ने ६ अप्रैल, १८१० को उनकी प्रार्थना अस्वीकार की। ४ अप्रैल, १८१० को कॉलेज ने निम्नलिखित हिंदुस्तानी ग्रंथ एशियाटिक सोसायटी को भेंट-स्वरूप दिए :

'प्रेमसागर', 'हिंदुस्तानी और इँगलिश डिक्शनरी' २ जिल्द, 'आरायशा-इ-महफ़िल', 'ऑरिएंटल लिंग्विस्ट', 'बिहारी-सतसई', 'राजनीति', 'तोता-कहानी', और 'दीवान मीर सोज़'। इनके साथ बँगला, फ़ारसी, मराठी आदि की पुस्तकें भी दी गई थीं। २२ मई, १८१० को 'अकबरनामा' का अनुवाद करने पर खलील खाँ और 'गुलशन अखलाक़' के अनुवाद के लिए मीर सैयद अली को क्रमशः दो सौ और बीस रुपए का पुरस्कार दिया गया। हिंदुस्तानी पाठ्य-पुस्तकों का अभाव देखकर टेलर ने अरबी रचना 'इख्वानुस्सफ़ा' का अनुवाद रेख्ता में कराना चाहा। इस संबंध में उन्होंने कौंसिल के मंत्री, हंटर, के नाम पत्र लिखा। अनुवाद-कार्य लॉकेट के मुंशी तूराब अली ने, जो लखनऊ के निवासी और हिंदुस्तानी भाषा के पूर्ण पंडित थे, अपने ऊपर ले लिया था। अन्य भारतीय विद्वानों ने उन्हें सहायता देने का वचन दिया था। ग्रंथ पूर्ण होने पर तीन सौ पचास अठपेजी पृष्ठ हुए। फ़ी प्रति का मूल्य बारह रुपया रक्खा गया। सरकार द्वारा सहायता मिलने पर उसकी पाँच सौ प्रतियाँ छप सकती थीं। इस ग्रंथ की भाषा को टेलर रेख्ता का सर्वोत्तम उदाहरण समझते थे। अनुवाद भी टेलर और लॉकेट के निरीक्षण में हुआ था। कौंसिल की सिफ़ारिश से २९ जून, १८१० को सरकार ने अपनी स्वीकृति दे दी। तत्पश्चात् तारिणीचरण मित्र, हेड मुंशी, तथा अन्य भारतीय विद्वानों ने मीर तक़ी की समस्त हिंदुस्तानी रचनाओं का संग्रह प्रकाशित करने का प्रस्ताव कौंसिल के सामने रक्खा। कौंसिल ने सरकार से इस प्रस्ताव की सिफ़ारिश की। प्रस्तावकों का अनुमान ग्रंथ में लगभग एक हज़ार पृष्ठ-संख्या रखने का था। प्रति सौ चौपेजी पृष्ठों का मूल्य छः रुपए के स्थान पर पाँच रुपए रक्खा गया और सरकार से सौ प्रतियाँ मोल लेने की प्रार्थना की गई। साथ ही बीस प्रतियाँ कॉलेज के लिए अलग मोल लेने की

---

[1] वही पृ० १२८ २०१

प्रार्थना की गई। ६ जुलाई, १८१० को सरकार ने केवल सौ प्रतियों के लिए अपनी स्वीकृति दी। 'इख्वानुस्सफ़ा' के आंशिक अनुवाद के लिए तुराब अली को सौ रुपए पुरस्कार-स्वरूप मिले। तारिणीचरण मित्र को उनके 'खुलासतुल-हिसाब' के लिए एक हजार दो सौ पैंतीस रुपए की स्वीकृति मिली (७ नवंबर, १८१०)।

'प्रेमसागर'

२ अक्तूबर, १८१० को कौंसिल के मंत्री, विलियम हंटर, ने सरकारी मंत्री, जॉर्ज डुकर, को लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर' के संबंध में एक पत्र लिखा। लल्लूलाल को हिंदुस्तानी विभाग का 'भाखा'-मुंशी कहा गया है। पत्र के साथ मंत्री ने सौ प्रतियों के लिए एक हजार नौ सौ पैंतीस रुपए का बिल भेजा था। इस ग्रंथ का लगभग आधा भाग गिलक्राइस्ट द्वारा प्रकाशित हुआ था और छः रुपए प्रति सौ चौपेजी पृष्ठों के हिसाब से सौ प्रतियों का मूल्य उन्हें मिल भी चुका था। ३१ जनवरी, १८०६ को ग्रंथकार ने ग्रंथ पूरा करने के संबंध में प्रार्थना-पत्र भेजा था। और उसी वर्ष ३ फ़रवरी को उसी पुराने दर से मूल्य मिलने की सरकारी स्वीकृति उसे मिल गई थी। किंतु लल्लूलाल ने बिना सरकारी आज्ञा लिए अथवा बिना अपनी इच्छा प्रकट किए फिर शुरू से पूरा ग्रंथ छाप डाला था। अतएव कौंसिल निश्चित दर के आधार पर उस अंश की सिफ़ारिश नहीं कर सकती थी जिसके लिए उन्हें पहले रुपया मिल चुका था। शेष भाग के दो सौ चौपेजी पृष्ठ के अनुमान से तेरह सौ रुपए मूल्य होता था। किंतु पृष्ठ-संख्या ढाई सौ हो जाने से शेष भाग का मूल्य एक हज़ार छः सौ पचीस रुपए होता था। ग्रंथ-प्रकाशन-व्यय, ग्रंथकार की दिक़्क़तों की दृष्टि से तथा अब ग्रंथ की पूर्ण प्रतियाँ रखने की इच्छा से (उसके भाग रखने के स्थान पर) कौंसिल छः रुपए प्रति सौ चौपेजी पृष्ठ के स्थान पर चार रुपए प्रति सौ चौपेजी पृष्ठ के हिसाब से अवश्य पूर्ण ग्रंथ लेना चाहती थी। इस हिसाब से कुल मूल्य एक हज़ार छः सौ पचीस के स्थान पर एक हज़ार नौ सौ पैंतीस होता था। जब लल्लूलाल ने कौंसिल का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तो उन्होंने सरकारी स्वीकृति के लिए प्रार्थना की। ५ अक्तूबर, १८१० को सपरिषद् गवर्नर-जनरल की स्वीकृति सरकारी मंत्री, डुकर, ने कौंसिल के मंत्री, विलियम हंटर, के पास भेज दी।[1]

'बहार-इ-इश्क़' के हिंदुस्तानी अनुवाद के लिए नूरअली को पचास रुपए पुरस्कार-स्वरूप मिले। विलियम हंटर के पत्रानुसार बाबूराम पंडित को तुलसी कृत 'रामायण' प्रकाशित करने पर १६ जनवरी, १८१० के पत्र में स्वीकृत धन के स्थान पर दो हज़ार पाँच सौ छिहत्तर रुपए मिले। 'रामायण' की चालीस प्रति हर्टफ़र्ड, चालीस फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज, चालीस बंबई भेजी गईं और बीस प्रतियाँ फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में रक्खी गईं। १८ जनवरी, १८११ के सरकारी पत्रानुसार टॉमस रोएबक को 'सामुद्रिक शब्दावली' (Marine Vocabulary) प्रस्तुत करने की आज्ञा मिली। विलियम हंटर को अरबी, फ़ारसी, हिंदुस्तानी और पंजाबी कहावतों का संग्रह करने की सरकारी आज्ञा मिली। मिर्ज़ा जॉन तपिश (Jaun Taupish) को हिंदुस्तानी में 'बहार दानिश' का अनुवाद करने पर

---

[1] वही, पृ० ११६ १२०

पाँच सौ रुपए मिले। १६ नवंबर, १८१० को मज़हर खाँ विला ने अपना दीवान कॉलेज को भेंट-स्वरूप दिया। कॉलेज ने सधन्यवाद उसे स्वीकार किया। १२ अगस्त, १८१६ को टेलर ने मज़हर अली की मृत्यु की सूचना दी।

विलियम हंटर बाहर जाने वाले थे, इसलिए उन्होंने अपने ७ मार्च, १८११ के पत्र में 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी' के निरीक्षण के लिए टॉमस रोएबक को नियुक्त किया। इस संबंध में उन्होंने कौंसिल से तारिणीचरण मित्र और लल्लूलाल की सेवाएँ बनाए रखने की प्रार्थना की। तारिणीचरण मित्र का कार्य वे अनिवार्य समझते थे। लल्लूलाल से तो कभी-कभी सहायता ली जाती थी। इससे उनके अपने प्रोफ़ेसर-वाले कार्य में कोई विघ्न नहीं पड़ता था। अथवा यदि किसी विद्यार्थी या मुंशी को 'भाखा'-ज्ञान उपलब्ध करने में उनकी आवश्यकता प्रतीत होती थी तब भी 'डिक्शनरी' का कार्य कोई रुकावट पैदा नहीं करता था। किंतु कुछ दिन बाद लल्लूलाल भी छुट्टी पर जाने वाले थे, इसलिए हंटर ने अपने पत्र में लोचनराम पंडित का नाम कौंसिल के सामने पेश किया। लोचनराम पंडित दोआब के रहने वाले थे। ब्रजभाषा और खड़ीबोली पर उनका पूर्ण अधिकार था। कुछ समय पूर्व स्थायी नौकरी पाने के विचार से उन्होंने अपनी कुछ खड़ीबोली रचनाएँ हंटर के पास भेजी थीं। किंतु आवश्यकता न होने से उस समय हंटर ने उन पर कुछ ध्यान न दिया था। संभवतः इसी पत्र के साथ उन्होंने उन ग्रंथों की सूची भी भेजी जिनसे वे 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी' तथा उसके परिशिष्ट भाग की रचना करने में सहायता ले रहे थे। 'डिक्शनरी' के शब्द-समूह और फलतः हिंदुस्तानी भाषा के रूप की दृष्टि से सूची दिलचस्प है।[1]

कोष समाप्त होने तक कौंसिल ने तारिणीचरण मित्र और लल्लूलाल को बनाए रखने का प्रस्ताव स्वीकार किया। १६ फरवरी, १८१० के अनुसार बारह महीने तक सत्तर रुपए मासिक व्यय भी कौंसिल देती रही।

२६ जनवरी, १८१० को सरकार ने मुंशी लल्लूलाल कृत 'दि ग्रैमैटिकल प्रिंसीपिल्स ऑव ब्रजभाखा' के लिए आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया था। छप जाने पर लल्लूलाल ने सौ प्रतियों के मूल्य छः सौ चार रुपए आठ आने का बिल बना कर कौंसिल के मंत्री, ए० गैलोवे, के पास भेजा। कौंसिल की सिफ़ारिश पर सरकारी मंत्री, सी० एम्० रिकेट्स, ने २ अगस्त, १८११ को सरकारी स्वीकृति भेज दी।[2]

लल्लूलाल कृत ब्रजभाषा व्याकरण

लगभग इसी समय बाबूराम पंडित ने 'मिताक्षरा' (सं०) प्रकाशित किया। ५ दिसंबर, १८११ की बैठक में कौंसिल को 'हिंदुस्तानी ऐंड इँगलिश नैवल डिक्शनरी' पूर्ण होने की सूचना मिली। रोएबक के १४ जनवरी, १८१२ के पत्र से यह ज्ञात होता है कि १८०६ से १८१० तक उन्होंने एडिनबरा में गिलक्राइस्ट के साथ काम किया था। इसी आधार पर उन्होंने

रोएबक की रचनाएँ

---

[1] दे०, परिशिष्ट ख

[2] प्रो० वि० २४ सितंबर, १८११—१२ जनवरी, १८१४, हो०, मि०, जि० ४, पृ० २०-२१ इ० रे० डि०

अपनी रचनाओं के लिए आर्थिक सहायता माँगी। पत्र के अनुसार उनकी ग्रंथ सूची इस प्रकार है :

१. 'ब्रिटिश इंडियन मौनीटर', २ जिल्द, एडिन०, १८०६
२. 'हिंदुस्तानी ऐंड इंगलिश डायलौग्ज', एडिन०, १८०६
३. 'ऐन् इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी विथ् ए ग्रमर प्रिफ़िक्स्ड', एडिन०, २० फ़रवरी, १८०६
४. ,, ,, दूसरी जिल्द, २० फ़रवरी, १८०६
५. 'ब्रिटिश इंडियन मौनीटर,' तीसरी जिल्द, (डॉ० गिलक्राइस्ट को सहकारिता में सामग्री संकलित की)

कोर्ट उन्हें पाँच सौ गिनी दे चुका था। इसलिए कौंसिल ने तदनुसार उन्हें सूचित कर दिया।[1]

'तारीख नादिरी' के हिंदुस्तानी अनुवाद के लिए हैदरबख्श को और मिर्ज़ा जॉन तपिश को उनकी पद्यात्मक रचना (१) के लिए कौंसिल ने क्रमश: तीन सौ और चार सौ रुपए पुरस्कार-स्वरूप दिए। इसी समय मिर्ज़ा काज़िम अली को 'बारहमासा' या 'दस्तूर-उल्-हिंद' की सौ प्रतियो के लिए चार सौ पचीस रुपए, 'हिंदी स्टोरी टेलर', दो जिल्द, का पंजाबी में अनुवाद करने पर मुंशी काशीराज को सौ रुपए, और 'चार गुलशन' का उर्दू में अनुवाद करने पर बेनी नारायण को साठ रुपए पुरस्कार-स्वरूप दिए गए।

२५ अप्रैल, १८१२ की सरकारी सूचना के अनुसार कौंसिल ने यह घोषित किया कि चूँकि हिंदुस्तानी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने लिए ग्रंथ-संख्या पर्याप्त हो चुकी है, इसलिए भविष्य में बिना पूर्व सरकारी आज्ञा के हिंदुस्तानी अनुवाद-ग्रंथों पर कोई पुरस्कार नही दिया जायगा।[2] कौंसिल ने यह घोषणा ३० मई, १८१२ को प्रकाशित की।

हंटर की 'डिक्शनरी' का कार्य रोएबक के निरीक्षण में बराबर हो रहा था। बाबूराम पंडित को 'मिताक्षरा' की डेढ़ सौ प्रतियों के लिए तीन हज़ार रुपए मिले। इसके बाद उन्होंने 'मनुस्मृति' प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। 'बारहमासा' की सौ प्रतियों के लिए मिर्ज़ा काज़िम अली को तीन सौ सतहत्तर रुपए मिले। १६ फरवरी, १८१३ को निम्नलिखित पुस्तकें फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज के विद्यार्थियो के लाभार्थ भेजी गई :

'प्रेमसागर'—१० प्रतियाँ—	१६ रु०	फ़ी प्रति—	१६० रु०
'रामायण' (तु०)— ,,	२० रु०	,,	२०० रु०
'बैताल पच्चीसी' ,,	१८ रु०	,,	१८० रु०
'सिंहासन बत्तीसी' ,,	२२ रु०	,,	२२० रु०
'एन्साइक्लोपीडिया हिंदुस्तानिका ६.	१२ रु०	,,	६७. ८ रु०

साथ ही 'बाग़ो बहार' या 'चहार दरवेश' के नए संस्करण के लिए कौंसिल ने आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया।

---

[1] वही, पृ० ११२ ११६
[2] वही, पृ० ११४

१७ जनवरी, १८१२ के पत्र में सरकार ने कौंसिल से पूर्वीय साहित्य की उन सभी पुस्तकों का पूर्ण विवरण माँगा जो कॉलेज की स्थापना के समय से १७ जनवरी तक सरकारी व्यय से अथवा सरकारी प्रोत्साहन के कारण—और वे कारण क्या थे—छपी थीं। कॉलेज के मंत्री, ए० लॉकेट, ने सरकारी मंत्री, सी० एम० रिकेट्स, के पास ९ मार्च, १८१२ को वह विवरण भेज दिया। कुछ पुस्तकों की छपाई का व्यय इसलिए नहीं भेजा गया था क्योंकि वे कॉलेज की स्थापना के समय के व्यय थे और इकट्ठा दे देने के कारण उनके संबंध में ठीक-ठीक पता नहीं चल सका था।[1]

सरकारी कागज़ों के आधार पर अब तक प्रकाशित समस्त ग्रंथों का विवरण

कोष पूर्ण होने से पहले ही डॉ० हंटर का देहांत हो गया। इसलिए टेलर ने हंटर द्वारा संकलित सामग्री सार्वजनिक संपत्ति समझ कर कॉलेज के मंत्री, लॉकेट, से माँगी। किंतु उस समय मंत्री ने उस कार्य के स्थगित होने की सूचना दी। इसी बीच में रोएबक, जो स्वास्थ्य-सुधार के लिए बाहर गए हुए थे, वापिस आ गए। उन्होंने भी हंटर की सामग्री माँगी और प्रमाण में हिंदुस्तानी की अपनी सेवाओं और गिलक्राइस्ट के साथ कार्य करने की बात का उल्लेख किया। किंतु कॉलेज कौंसिल उस समय कोई निर्णय न कर सकी।

अन्य ग्रंथ

तारिणीचरण मित्र संस्कृत-ग्रंथ 'पुरुष परीक्षा' का हिंदुस्तानी अनुवाद प्रस्तुत करना चाहते थे। इस संबंध में टेलर ने एक पत्र कौंसिल के मंत्री के नाम लिखा। उनकी सम्मति में हिंदुस्तानी कक्षा के लिए एक पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता भी थी। तीन रुपया चार आना प्रति सौ अठपेजी पृष्ठों के हिसाब से उसका मूल्य चार सौ अठपेजी पृष्ठों के अनुमान से फ़ी प्रति का मूल्य तेरह रुपए रक्खे गए। सरकार ने २५ जून, १८१३ को तारिणीचरण मित्र के प्रस्ताव पर स्वीकृति दे दी।

डॉ० हंटर के कोष के संबंध में रोएबक और सरकार में पत्र-व्यवहार शुरू हुआ। सरकार उसे स्वयं लेकर फिर चाहे जिसे दे देना चाहती थी। किंतु कौंसिल ने रोएबक का पक्ष लिया। हंटर की वसीयत के प्रबंधकर्ताओं और रोएबक में समझौता हो गया था और फिर प्रबंधकर्ताओं ने सरकार के पत्रोत्तर में जिस अंश की ओर संकेत किया था वह हंटर कृत कोष के परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित होने के लिए नहीं था।

'बाग़ोबहार' (१९ मार्च, १८१३) की सौ प्रतियों के लिए कौंसिल ने एक हज़ार सात सौ सोलह रुपए की सरकारी स्वीकृति माँगी। यह स्वीकृति उसे मिल गई। टेलर के कहने से बेनी नारायण को उनके हिंदुस्तानी विविध-संग्रह (Miscelleny) के लिए अस्सी रुपए मिले। ग़ुलाम अकबर द्वारा 'गुलबकावली' और कैप्टेन रोएबक द्वारा 'अयार दानिश' के अनुवाद 'ख़िर्द अफ़रोज़' के प्रकाशन के लिए भी उसने आज्ञा माँगी।

---

[1] दे०, परिशिष्ट ध

.बूराम पंडित और विद्याकर मिश्र को १७ सितंबर, १८१४ को 'किरातार्जुन' प्रकाशित रने की आज्ञा दी गई। साथ ही 'खिर्द अफ़रोज़' के प्रकाशन के लिए भी कौंसिल ने प्रपनी स्वीकृति दी। इस ग्रंथ की रचना अकबर की आज्ञा से अबुलफ़ज़ल ने फ़ारसी में ी थी। इसका हिंदुस्तानी अनुवाद सबसे पहले मौलवी हफ़ीज़ुद्दीन ने किया था। ८१५ के लगभग लेफ़्टिनेंट डब्ल्यू० आर० थॉम्सन ने 'इकौनौमी ऑव ह्यूमैन लाइफ़' ा हिंदुस्तानी में अनुवाद किया और टेलर ने इसके संबंध में अच्छी सम्मति दी।

लल्लूलाल द्वारा संपादित 'सभाविलास'

१६ जनवरी, १८१५ को रोएबक ने, जो अब कौंसिल के मंत्री थे, ब्रजभाषा के एवज़ी प्रोफ़ेसर लेफ़्टिनेंट प्राइस को लल्लूलाल द्वारा संपादित 'सभाविलास' के प्रकाशन की सूचना दी और ग्रंथ की उपादेयता के संबंध में उनकी सम्मति माँगी। ब्रजभाषा में काव्य-ग्रंथ की आवश्यकता थी इसलिए प्राइस ने उसी दिन लिखा—"संग्रहकर्त्ता ने मेरे कहने से ही आपसे प्रार्थना की है। ब्रजभाषा की अधिकांश कविता अश्लील होने के कारण विद्यार्थियों के पढ़ाने योग्य नहीं है। इस ग्रंथ में केवल अनुमोदित अवतरणों का संग्रह है। अश्लील कविताएँ इसमें नहीं रक्खी गईं। इसलिए पाठ्य-पुस्तक के रूप में यह उपादेय ग्रंथ है।" अस्तु, २३ जनवरी, १८१५ को रोएबक ने एवज़ी सरकारी मंत्री, ट्रौटर, को उसके प्रकाशन के लिए सिफ़ारिश की। ग्रंथ में सैंतीस अठपेजी पृष्ठ थे और ढाई रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से सौ प्रतियों का मूल्य ढाई सौ रुपए होता था। सरकार के सौ प्रतियाँ न लेने पर उसका मूल्य चार रुपए फ़ी प्रति रक्खा गया। अनेक सैनिक विद्यार्थी ब्रजभाषा का अध्ययन करना चाहते थे। इसलिए प्राइस ने उस पर व्याख्यान देने शुरू भी कर दिए थे। इस प्रकार ग्रंथ की आवश्यकता देख कर २६ जनवरी, १८१५ को सरकार ने उसे प्रकाशित करने की स्वीकृति दे दी।[1]

१ फ़रवरी, १८१५ को प्राइस ने कौंसिल के मंत्री, रोएबक, के नाम निम्नलिखित पत्र लिखा :

"कॉलेज के विद्यार्थियों को ब्रजभाखा तथा पूर्व की अन्य बोलियों का ज्ञान सरकारी हितों के लिए आवश्यक समझा जाने और ब्रजभाखा विभाग में मेरी नियुक्ति हो जाने पर मैं अपना यह कर्त्तव्य समझता हूँ कि जब तक अन्य रचनाएँ प्रकाशित न हो जायँ मैं इस भाषा का ज्ञान उपलब्ध करने में प्रेस के माध्यम से शीघ्र ही सहायता पहुँचाऊँ।

"समस्त बोलियों में मूल रचनाएँ पढ़ने से पहले विद्यार्थियों को पौराणिक कथाओं से भली भाँति परिचित होना आवश्यक है ताकि वे इन बोलियों की रचनाओं में निरंतर आने वाले संदर्भ या कथात्मक अंश समझने में सफल हो सकें। कुछ वर्ष हुए 'प्रेमसागर' या कृष्ण देवता की कथा का कॉलेज के भाखा मुंशी ने खड़ीबोली में अनुवाद किया था। जितने ग्रंथों से मैं परिचित हूँ उनमें से इसे छोड़ कर अन्य कोई ऐसा ग्रंथ नहीं है जो

[1] फो० वि० १२ जून, १८१४—११ फ़रवरी १८१५, हो०, मि०, जि० ५ पृ० ३१२-३१४ इ० रे० वि०

[इ]स विषय की शिक्षा दे सकें। यद्यपि इस ग्रंथ के अनेक शब्द मेसर्स टेलर और हंटर [द्वा]रा संग्रहीत कोष में सम्मिलित कर लिए गए हैं, तो भी मैं इस ग्रंथ के अध्ययन की [स]हायता के लिए एक कोष की आवश्यकता समझता हूँ। टेलर-हंटर कृत कोष की फ़ारसी लिपि में शब्द इतने छिप गए हैं कि विद्यार्थियों को शब्द ढूँढ़ने में बड़ी दिक्क़त पड़ती है और इसीलिए उनके परिश्रम का कोई परिणाम नहीं निकलता। यह कठिनाई दूर करने के लिए मैंने इस ग्रथ के सभी प्रमुख-प्रमुख शब्द संकलित कर संस्कृत वर्णानुक्रम से रक्खे हैं ताकि विद्यार्थियों को शब्द ढूँढ़ने में कोई कठिनाई न हो। नमूना मैं इस पत्र के साथ भेज रहा हूँ। निरीक्षण के पश्चात् यदि कौंसिल इसे प्रोत्साहन देने योग्य समझे तो मेरी प्रार्थना है कि वह सरकार से इसकी सिफ़ारिश करे। मेरा अनुमान है कि इस प्रकाशन में एक सौ चार चौपेजी पृष्ठ होंगे। हिंदुस्तानी प्रेस में छपाने से पाँच सौ प्रतियों का व्यय आठ सौ बारह सिक्का रुपए के लगभग होगा। ग्राहकों तथा अन्य सज्जनों के लिए मैं फ़ी प्रति बारह रुपए मूल्य रखना चाहता हूँ।

"अंत में मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि जिस ग्रंथ से शब्द चुने गए हैं उसी के अध्ययन के लिए नहीं, वरन् भाखा की अन्य रचनाओं के अध्ययन के लिए भी कोष सहायक सिद्ध होगा; अन्य रचनाओं में ऐसे अनेक शब्दों का निरंतर प्रयोग होता है। भविष्य में एक संपूर्ण ब्रजभाखा कोष तैयार करने का कार्य भी मेरी रचना से अत्यंत सरल हो जायगा।"[1]

'सभा विलास' (२६ जनवरी, १८१५) की प्रतियाँ आ जाने पर रोएबक ने १० फ़रवरी, १८१५ को ढाई सौ रुपए का बिल सरकारी स्वीकृति के लिए भेजा। १४ फ़रवरी, १८१५ को सरकार ने अपनी स्वीकृति दे दी। फिर उन्होंने ने प्राइस द्वारा प्रस्तावित कोष की बारह रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से सौ प्रतियों की सिफारिश की और उन्हें उसके लिए सरकारी स्वीकृति मिल गई।[2] रोएबक ने अपनी 'हिंदुस्तानी-इँगलिश डिक्शनरी' के लिए भी कौंसिल से आर्थिक सहायता माँगी। कौंसिल के लिखने पर इस संबध में उन्हें सरकारी स्वीकृति प्राप्त हो गई। किंतु बाद को कौंसिल ने उनकी 'डिक्शनरी' के लिए दो साल तक के लिए और आर्थिक सहायता माँगी। १८१६ के लगभग आई० ऐलेग्जैंडर एटन (Ayton), दूसरी बटालियन, १७ वीं रेजीमेंट, नेटिव इंफैंट्री, ने 'अखलाक़-इ-हिंदी' का कुमायूँनी में अनुवाद किया।

रोएबक कृत 'ऐनल्स' तथा अन्य ग्रंथ

१६ मार्च, १८१६ को रोएबक ने विज़ीटरों के भाषणों, कॉलेज द्वारा प्रकाशित ग्रथों, विद्यार्थियों की सूची आदि के सहित कॉलेज के इतिहास (Annals) के संबंध में एक ग्रंथ प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। चार सौ छप्पन अठपेजे पृष्ठों में ग्रंथ समाप्त करने का उन्होंने अनुमान लगाया और तीन रुपया चार आना प्रति सौ पृष्ठ के हिसाब से सौ प्रतियों का मूल्य एक हज़ार चार सौ ब्यासी होता था। उनकी इच्छा सर्वोत्तम पटना

[1] वही पृ० २२८-२२९

[2] वही पृ० २२२

कागज पर ग्रंथ छपाने की थी। कॉलेज के लिए इँगलिश पेपर पर छपाने से सौ प्रतियों मे एक सौ तीस का अंतर पड़ता था। सोलह रुपए मूल्य रखने की दृष्टि से वे पाँच सो प्रतियाँ प्रकाशित करना चाहते थे। सौ प्रतियाँ लेने के लिए उन्होंने कौंसिल से प्रार्थना की। कॉलेज के सहायक मंत्री, ऐट्किंसन, ने सरकारी मंत्री, रिकेट्स, के नाम पत्र लिखा, किंतु कोर्ट के कारण सरकार ग्रंथ-प्रकाशन के लिए स्वीकृति न दे सकी।[1]

कॉलेज की शासन-व्यवस्था के संबंध मे रोएबक ने १० मई, १८१६ को कौंसिल के नाम एक पत्र लिखा था और उसके साथ कौंसिल की सूचना के लिए अपनी रचनाओं की एक सूची भी भेज दी थी। रोएबक कृत ग्रंथ-सूची पहले दी जा चुकी है। निम्नलिखित सूची अधिक विस्तृत है:—

"१. 'ब्रिटिश इंडियन मौनीटर', (एडिनबरा, १८०८)

२ 'इँगलिश ऐंड हिंदुस्तानी डायलौग्ज़', (एडिन०, १८०६)

३. 'दि इँगलिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी, विथ् ए ग्रैमर प्रिफ़िक्स्ड', (एडिन०, १८१०)

—'व्याकरण', कॉलेज मे पढ़ाया जाता है और, टेलर के मतानुसार, यह सर्वोत्तम व्याकरण है।

४. 'इँगलिश ऐंड हिंदुस्तानी नैवल डिक्शनरी ऑव टेक्नीकल वर्ड्स ऐंड फ़्रेज़ेज़' (१८११)

५. 'इँगलिश ऐंड हिंदुस्तानी एक्सर्साइज़ेज़', दो भाग (१८१२)

६. 'बाग़ो बहार' के नए संस्करण का संपादन—इस समय विद्यार्थियों को यही संस्करण पढ़ाया जाता है (१८१३)

७. अबुलफ़ज़ल कृत 'अयार दानिश' का हिंदुस्तानी अनुवाद—'खिर्द अफ़रोज़', दो जिल्द (१८१५)

८. विद्यार्थियों के लाभार्थ 'गुलबकावली' के नए संस्करण का संपादन (१८१५)— इस समय विद्यार्थियों को यही संस्करण पढ़ाया जाता है।

९. 'कलेक्शन ऑव ऑरिएंटल प्रौवर्ब्स' (अभी अप्रकाशित)

१०. 'ए कम्प्लीट हिंदुस्तानी ऐंड इँगलिश डिक्शनरी' (छपने को है)

११. 'ए पर्शियन डिक्शनरी—बरहान-इ-क़ातिन '(?) (छपने को है)।"

इसके अतिरिक्त रोएबक के निरीक्षण में निम्नलिखित ग्रंथों की रचना हुई या हो रही थी:

"१. 'दीवान-इ-जहाँ', लेखक, बेनी नारायण—विभिन्न शैलियो के हिंदुस्तानी कवियों की सूची (१८१२)

२. 'कसीरुल फ़वायद' या हिंदुस्तानी, फ़ारसी और पंजाबी विभक्तियाँ (१८१२)

३. काशीराज कृत पंजाबी भाषा में 'गुलिस्ताँ' (१८१३)

४. 'विद्या दर्पण'—यह हिंदी की उस अजीब बोली में लिखी गई है जिसे देशी सेना के सिपाही बोलते हैं। इसमें राम-कथा के अतिरिक्त हिंदुओं की प्रायः सभी कलाओं और विज्ञान का सार दिया गया है और इस भाषा में सबसे अधिक मूल्यवान और अनुपम

रचना समझी जाती है। लेखक, मिर्ज़ा बेग। यह ग्रंथ अभी-अभी समाप्त हुआ है और कॉलेज कौंसिल की आज्ञा से हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर के पास निरीक्षणार्थ भेजा गया है।

५. 'ए पंजाबी डिक्शनरी', गुरुमुखी लिपि में, प्रत्येक शब्द का उच्चारण देवनागरी में दिया गया है, फ़ारसी में अनूदित, ग्रंथकार, काशीराज, १८१३, में कॉलेज के पुस्तकालय को ग्रंथ भेंट दिया गया।"[1]

७ मार्च, १८१५ को स्वीकृत और प्राइस द्वारा संपादित खड़ीबोली और इँगलिश शब्द कोश की सौ प्रतियाँ कॉलेज के पुस्तकालय में आई। रोएबक ने प्राइस के बारह सौ रुपए के बिल के लिए सरकारी स्वीकृति माँगी जो उन्हें उसी दिन मिल गई।[2] कौंसिल ने 'पुरुष परीक्षा' की सौ प्रतियों के लिए आठ सौ नब्बे रुपए आठ आने का बिल स्वीकार किया। रोएबक ने 'बरहान-इ-क़ातिन', (?) प्रकाशित करने की आज्ञा माँगी। सरकार ने रोएबक कृत 'ऐनल्स' (इतिहास) के लिए स्वीकृति न दी थी। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः बाद को उन्हें स्वीकृति मिल गई थी। यद्यपि कॉलेज के विवरणों में इस संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता, तो भी रोएबक के ही एक पत्र के अनुसार उन्हें स्वीकृति मिल गई थी क्योंकि इस पत्र में उन्होंने लगभग तीन मास में ग्रंथ समाप्त करने की आशा प्रकट की है।[3] उनका पत्र कौंसिल की बैठक में पेश हुआ। १ जनवरी, १८१६ को रोएबक ने कौंसिल के मंत्री, लॉकेट, को 'दि ऐनल्स ऑव दि कॉलेज ऑव फ़ोर्ट विलियम' के पूर्ण होने की सूचना दी। उसमें सात सौ चवालीस रॉयल अठपेजी पृष्ठ थे। एक प्रति का मूल्य वे बत्तीस रुपए से कम न रख सके थे। तीन रुपया चार आना प्रति सौ साधारण अठपेजी पृष्ठ के हिसाब से सौ प्रतियाँ उन्होंने कॉलेज को दीं। इस हिसाब से कुल मूल्य दो हज़ार चार सौ अठारह रुपया बारह आना होता था अर्थात् एक प्रति का मूल्य चौबीस रुपया तीन आना। कौंसिल के मंत्री ने एक सिफ़ारिशी पत्र लिखा जिस पर उन्हें सरकारी स्वीकृति मिल गई। लॉकेट ने 'ऐनल्स' की सौ प्रतियाँ कॉलेज में आ जाने की सूचना सरकारी मंत्री, लशिंगटन, को दी और साथ में बिल इत्यादि भी भेजे।[4] ६ अक्तूबर, १८१८ को कॉलेज ने राममोहन राय कृत 'वेदांत दर्शन' की दस प्रतियाँ खरीदीं। २७ नवंबर, १८२० के पत्र में टेलर ने हंटर की 'डिक्शनरी' पूर्ण करने का इरादा प्रकट किया।

३० अप्रैल, १८२३ को लेफ़्टिनेंट कर्नल जे० मार्ले (Marlay) ने निम्नलिखित पुस्तकें कॉलेज से माँगीं थीं:

---

[1] फ़ो० वि०, २७ फ़रवरी, १८१६—२२ अप्रैल, १८१८, हो०, मि०, जि० ६, पृ० १०६-१२४, इं० रे० वि०

[2] वही, पृ० १२६-१२७

[3] वही, पृ० ४६८

[4] फ़ो० वि०, ४ मई, १८१८—६ दिसंबर, १८१६, हो०, मि०, जि० ७, पृ० २८६ २८८ ३४१ इं० रे० वि०

उर्दू बोली और फारसी लिपि—'बाग़ो बहार'
नागरी लिपि—'बैताल पचीसी'
हिंदवी या खड़ीबोली—'प्रेमसागर', प्राइस
कृत कोष सहित ।

समें 'बैताल पचीसी' और 'प्रेमसागर' का भाषा-संबंधी उल्लेख ध्यान देने योग्य है ।[1]

दुभाषियों के लिए आवश्यक ग्रंथों की आयोजना

ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना तथा सरकारी दफ़्तरों में दुभाषिए कॉलेज के विद्यार्थियों में से ही छाँटे जाते थे। इसलिए १८२३ में सरकार ने दुभाषियों की आवश्यक योग्यता निर्धारित करने की दृष्टि से एक कमेटी बनाई जिसमें जे० डब्ल्यू० टेलर, टी० मैकन (Macon) और चार्ल्स पाटन (Paton) थे। २२ अप्रैल, १८२३ को उन्होंने अपनी रिपोर्ट दी जिसमें एक दुभाषिए के लिए निम्नलिखित योग्यता आवश्यक बताई गई :

१. व्याकरण के सामान्य सिद्धांतों से भली भाँति परिचय ।

२. उर्दू की सुधरी हुई फ़ारसी लिपि और खड़ीबोली की देवनागरी लिपि सरलतापूर्वक पढ़ना ।

३. बोलचाल की उर्दू और हिंदुई का इतना ज्ञान कि कोई बात आसानी से समझ सकें या इन बोलियों में आज्ञा देते समय, या रिपोर्टों और पत्रों का परिचय देते समय सरलतापूर्वक बोलियों से अँगरेज़ी अनुवाद कर सकें ।

दुभाषियों की परीक्षा इस प्रकार होनी चाहिए :—

१. व्याकरण की जटिलताओं के स्थान पर सामान्यतः प्रधान सिद्धांतों पर प्रश्न ।

२. परीक्षकों के साथ मौखिक वार्तालाप करना ।

३. चुने हुए आज्ञापत्रों, या नियमों और विधानों का हिंदुस्तानी की दोनों लिपियों में लिखित अनुवाद करना ।

४. हिंदुस्तानी में 'बाग़ोबहार', खड़ीबोली में 'प्रेमसागर', और फ़ारसी में 'अनवर सुहेली' पढ़ना और अनुवाद करना ।[2]

कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर १ जुलाई, १८२३ को तारिणीचरण मित्र ने एक प्रार्थना-पत्र कौंसिल के पास भेजा और तीन ग्रंथों के लिए उसका और सरकार का संरक्षण चाहा। कमेटी की २२ अप्रैल की रिपोर्ट के बाद २७ मई, १८२३ को सरकार ने भी सेना-विभाग में कैप्टेन से नीचे दर्जे के कमीशन-प्राप्त अफ़सरों (Sub-alterns) के लिए एक ऐसे ग्रंथ की आवश्यकता समझी जो फ़ारसी और हिंदुस्तानी की स्वतंत्र रूप से शिक्षा दे सकता हो। इसलिए तारिणीचरण मित्र ने हिंदुस्तानी में दो संग्रह-ग्रंथ तैयार करने की आयोजना प्रस्तुत की। उनके प्रस्तावित ग्रंथों की आयोजना इस प्रकार है :

---

[1] फ़ो० वि०, १७ जून, १८२२—१९ दिसंबर, १८२४, हो०, मि०, जि० ३ पृ० २१७-२१८ इं० रे० वि०

[2] वही, पृ० २२४ २३०

पहले ग्रंथ में नागरी लिपि में, प्रधानतः हिंदी-उद्धरण, निम्नलिखित रूप में होंगे

१. एक संक्षिप्त व्यवहारोपयोगी ब्रजभाषा और हिंदुस्तानी व्याकरण
२. हिंदुस्तानी गिनती, भिन्नात्मक अंश, आदि
३. सप्ताह के दिन
४. हिंदू और मुसलमान महीने
५. सिपाहियों द्वारा प्रयुक्त सैनिक शब्दावली आदि
६. विभिन्न सैनिक विषयों पर वार्तालाप
७. 'बैताल पचीसी' से चुने हुए अंशों का संग्रह
८. 'सिंहासन बत्तीसी' " "
९. 'माधोनल' का एक अंश
१०. 'शकुन्तला' नाटक का एक अंश
११. ठेठ हिंदी कहानियों का संकलन

दूसरे ग्रंथ में उर्दू बोली से फ़ारसी लिपि में निम्नलिखित रूप में संकलन होगा :

१. 'बाग़ो बहार' से उद्धरण
२. 'गुलबकावली' से उद्धरण
३. 'आरायश-इ-महफ़िल' और 'इख़्वानुस्सफ़ा' से उद्धरण
४. गिलक्राइस्ट कृत 'आर्टिकिल्स ऑव वॉर' का अनुवाद—फ़ारसी और अंगरेज़ी लिपि में
५. विभिन्न विषयों पर उर्दू में बातचीत
६. तालिकाएँ, कहानियाँ और मनोहर चुटकुले
७. सौदा, जुरत, मीर तक़ी तथा अन्य कवियों की रचनाओं से चुने हुए व्यवहारोपयोगी उद्धरण
८. कुछ लोकप्रिय मुसलमानी गाने

और चूँकि सरकार फ़ौजी अफ़सरों की नागरी लिपि में लिखित 'प्रेमसागर' के आधार पर भी परीक्षा लेना चाहती थी, इसलिए तारिणीचरण मित्र ने उसका एक नया संस्करण प्रकाशित करने का प्रस्ताव रक्खा। इसी के साथ वे उसके समस्त शब्दों की अर्थ-सहित सूची और एक अँग्रेजी अनुवाद भी दे देना चाहते थे, क्योंकि ऐसा कोई हिंदुस्तानी कोष उपलब्ध नहीं था जिसमें 'प्रेमसागर' के सभी ठेठ शब्द मिल सकते थे। उनकी इस आयोजना के अनुसार 'प्रेमसागर' का अध्ययन करते समय अन्य किसी कोष की आवश्यकता न रह जाती थी।

इन प्रत्येक पाठ्य-पुस्तकों में से प्रत्येक में वे लगभग चार सौ चौपेजी पृष्ठ रखना और प्रत्येक की पाँच सौ प्रतियाँ छपाना चाहते थे। साढ़े छः रुपए प्रति सौ चौपेजी पृष्ठ की सरकारी दर से एक प्रति का मूल्य छब्बीस रुपए और सौ प्रतियों का मूल्य छब्बीस सौ रुपए होता था। छपाई का कुल व्यय पचहत्तर सौ रुपए पड़ता था। वे सरकार से छपाई का व्यय माँगते थे और सरकार के तीनों पुस्तकों की पाँच-पाँच सौ प्रतियों पर केवल चौबीस सौ रुपए का मुनाफ़ा देना स्वीकार कर लेने पर वे तुरंत ही प्रस्तावित ग्रंथों की एक-से काग़ज़ पर पन्द्रह सौ प्रतियाँ छपाने के लिए तैयार थे। वे उस नए फ़ारसी टाइप के

प्रयोग करना चाहते थे जिसे उस समय हिंदुस्तानी प्रेस के प्रोप्राइटर बना रहे थे। सरकार द्वारा अपना प्रस्ताव स्वीकृत होने जाने पर शीघ्र ही कार्य प्रारंभ करने की दृष्टि से तारिणी-चरण मित्र ने चार हज़ार रुपया पेशगी माँगा और अपने नमूने भी निरीक्षणार्थ भेजे। इस संबंध में कौंसिल के मंत्री, लॉकेट, ने सपरिषद् गवर्नर-जनरल के ६ मई, १८२३ के पत्र का हवाला देते हुए तारिणीचरण मित्र की अर्ज़ी २७ अगस्त, १८२३ को भेजते हुए छत्तीस सौ रुपए पेशगी देने की सिफ़ारिश की। २८ अगस्त, १८२३ को लशिंगटन ने सरकारी स्वीकृति भेज दी और तारिणीचरण मित्र तदनुसार सूचित कर दिए गए। उन्होंने शीघ्र ही अपना कार्य प्रारंभ कर दिया।[1]

टेलर का अवकाश-ग्रहण

२३ मई, १८२३ के सरकारी आज्ञापत्रानुसार टेलर के लेफ्टिनेंट कर्नल हो जाने से और फलतः कार्य अधिक हो जाने के फलस्वरूप उन्हें हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर की हैसियत से कार्य करने का अवकाश नहीं मिल पाता था। इसलिए सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने कैप्टेन विलियम प्राइस को उनके स्थान पर प्रोफ़ेसर नियुक्त किया।

---

[1] वही, पृ० २४८-१०।

६

विलियम प्राइस

(नवंबर, १८२३—मई, १८३०)

२३ मई, १८२३ के सरकारी आज्ञापत्र के अनुसार टेलर लेफ़्टिनेंट-कर्नल हो गए थे। इससे उनका सैनिक कार्य और भी बढ़ गया था। अवकाश न मिलने के कारण वे कॉलेज का कार्य सम्हाल सकने योग्य न रह गए थे। अतएव सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने कैप्टेन विलियम प्राइस को, जो उस समय परीक्षक और नेटिव इफैंट्री के बीसवें रेजीमेंट में थे, टेलर के स्थान पर और लेफ़्टिनेंट जे० डब्ल्यू० जे० आउज़्ले को, जो नेटिव इंफैंट्री के चौदहवे रेजीमेंट के थे, प्राइस के स्थान पर नियुक्त किया। २० नवंबर, १८२३ के सरकारी पत्रानुसार प्राइस हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष की हैसियत से कॉलेज में कार्य करने लगे।[1] उन्हें घटा हुआ वेतन, आठ सौ रुपया मासिक, मिला। प्राइस ने एक हज़ार रुपया मासिक वेतन माँगा और अपना प्रार्थना-पत्र लॉर्ड ऐम्हर्स्ट के पास भेजा। किंतु कोर्ट के २८ नवंबर, १८२१ के पत्रानुसार प्राइस की प्रार्थना स्वीकृत न हो सकी। वे आठ सौ रुपया मासिक पर ही कार्य करते रहे।

प्रधानाध्यापक के पद पर प्राइस की नियुक्ति

इसी बीच में लॉकिट महोदय रेज़ीडेंट होकर लखनऊ चले गए। उनके स्थान पर थोड़े दिन तक आउज़्ले ने कार्य किया। किंतु १ जून, १८२४ से कैप्टेन रडैल (Ruddell) आठ सौ रुपया मासिक वेतन पर मन्त्री और पुस्तकाध्यक्ष नियुक्त हुए।

१ मई, १८२४ को प्राइस, आउज़्ले और रडैल के अतिरिक्त कॉलेज का संक्षिप्त विवरण गत वर्ष की भाँति ही था। हिंदुस्तानी विभाग मे ग्यारह मुंशी थे। 'भाखा'-विभाग के मुंशी गंगाप्रसाद शुक्ल थे। इनकी नियुक्ति पचास रुपया मासिक वेतन पर १८२३ में हुई थी।

प्राइस को पहले से ही ब्रजभाषा और संस्कृत की ओर रुचि थी। कॉलेज में वे ये भाषाएँ पढ़ाते भी थे। प्रधानाध्यापक नियुक्त होने पर रडैल ने उनके निरीक्षण के लिए हिंदी का एक हस्तलिखित ग्रंथ भेजा था। प्राइस ने जून, १८२४ को रडैल के नाम पत्र लिखते हुए कहा :

प्राइस का हस्तलिखित ग्रंथों के संबंध में पत्र

"आपकी प्रार्थना के अनुसार मैं कॉलेज कौंसिल के सूचनार्थ हिंदी के हस्तलिखित ग्रथ का बिवरण भेज रहा हूँ। यह ग्रंथ इंदौर के रेज़ीडेंट श्री वेलेज़ली ने डॉ० ऐट्किसन द्वारा कॉलेज के पुस्तकालय में सुरक्षित रखने के लिए भेजा है।

"कथा में गोरा और बादल नामक दो राजपूत सरदारों की वीरता का वर्णन है। इन्होंने चित्तौड़ के कुमार (राणा) रत्नसेन को अलाउद्दीन के पंजे से छुड़ाया था।

---

[1] फो० वि० १७ जून १८२२ १६ दिसंबर १८१४ हो० मि०, जि० ४, पृ० ३२६, इ० रे० वि०

१३०५ ई० में अलाउद्दीन दिल्ली मे राज्य करता था। हिंदुस्तानी में विख्यात अनेक घटनाओं में से यह एक घटना है और जिसका वर्णन विभिन्न रूपों मे मिलता है। रत्नसेन की रानी पद्मिनी या पद्मावती अपने सौन्दर्य के लिए जगत्-प्रसिद्ध थी। अलाउद्दीन ने उसे प्राप्त करने की चेष्टा की थी। इसी घटना से कथा का जन्म हुआ है। डाउ (Dow) और अबुलफ़ज़ल कृत 'आईने अकबरी' (जिल्द २, पृष्ठ ८२) में इसका उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ की भाषा हिंदी है जिसमें अनेक संस्कृत शब्द तथा अन्य अनेक ऐसे शब्द हैं जो दूसरे प्रदेशों में प्रचलित नहीं हैं। इसीलिए हिंदी के अनेक रूपों से इसका रूप भिन्न है। हिंदुस्तानी अनुवाद की भाषा भी उर्दू भाषा से भिन्न है। किन्तु सब बातें सरलतापूर्वक समझ में आ जाती हैं। लेख शुद्ध नहीं है। पोथी में अनेक अशुद्धियाँ हैं। इससे अनेक स्थलों पर पढ़ने और समझने मे कठिनाई पड़ती है। जब कभी भी कॉलेज में हिंदी का अध्ययन होगा, निस्सदेह यह ग्रंथ पाठ्य-पुस्तक के रूप में उपादेय सिद्ध होगा। इस समय तो कोई भी विद्यार्थी इस बोली को नहीं समझ सका।

"मुझे इस बात की आशा है कि भविष्य मे श्री वेलेज़ली संस्कृत और हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथ उपलब्ध करने में सफल हो सकेंगे। ऐसे ग्रंथों का संग्रह अत्यंत आवश्यक है। कदाचित् उनसे उनके आसपास के प्रदेशों में प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथों की एक सूची भेज देने की प्रार्थना करना उचित होगा। क्योंकि उन प्रदेशों के ग्रंथों के सबध में हमें कोई जानकारी नहीं है। वहाँ अनेक अनमोल चरित्र बिखरे पड़े हैं। कहा जाता है कि इन चरित्रों की रचना उदयपुर के एक राणा की आज्ञा से हुई थी और उनमें मुसल-मानी आक्रमण से पूर्व उनके वंश का इतिहास मिलता है। एक चरित्र का खंड भाग स्वर्गीय कर्नल मैकेन्ज़ी के संग्रह में है जिसका नाम 'पृथ्वीराय चरित्र' या पृथ्वी राय या पिथौरा का इतिहास है। किंतु उसका साधारण हिंदी में रूपांतर कराना आवश्यक है, क्योंकि जिस बोली में यह तथा अन्य ग्रथ लिखे गए हैं, वह मारवाड़ी है और उसे समझने वाला कोई व्यक्ति कलकत्ते में नहीं है। हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त करने के लिए श्री विल्सन ने कैप्टेन कौब (Cobbe) को लिखा है, किंतु अभी तक कोई उत्तर नहीं आया। यदि श्री वेलेज़ली स्वयं इन ग्रंथों को प्राप्त करने मे असमर्थ हों तो वे कैप्टेन कौब से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।

"इंदौर में प्राप्त संस्कृत ग्रंथों की सूची भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण सिद्ध न होगी। इंदौर जैसे अन्य अनेक स्थान हैं, किन्तु यह जानना एक प्रकार से असभव है कि अन्य स्थानों की अपेक्षा इंदौर में कौन-कौन से ग्रंथ आसानी से मिल सकते हैं। और चूँकि वेदों और पुराणों की शुद्ध प्रतियों का अत्यन्त अभाव है और भिन्न-भिन्न प्राप्त प्रतियों में विषयांतर भी मिलता है, इसलिए उनकी पारस्परिक तुलना के लिए भारत के विभिन्न भागों से प्रतियाँ प्राप्त करना वाञ्छनीय है। श्री वेलेज़ली वेदों, वेद-भाष्यों और पुराणों की प्रतियाँ तुरंत भेज सकते हैं। प्रति एक हज़ार श्लोकों के लिए एक रुपए से तीन रुपए तक मूल्य उचित होगा। कुछ नाटक भी सूची में सम्मिलित किए जा सकते हैं।"[1]

---

[1] वही, पृ० ९२९-९३०

इस पत्र से प्राइस की हिंदी और संस्कृत के प्रति रुचि का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। प्राइस के पूर्ववर्ती प्रधानाध्यापकों की अथवा उनके समय में अन्य किसी व्यक्ति की इस विषय में तनिक रुचि का भी पता नहीं चलता। उनका उत्साह देख कर ही कौंसिल के मंत्री, रडैल, ने एक पत्र इंदौर के रेजीडेंट श्री वेलेज़ली को लिखा था। प्रधानाध्यापक की हैसियत से उनकी उपस्थिति के कारण ही कॉलेज के शिक्षा-क्रम में परिवर्तन हुआ जो गिलक्राइस्ट द्वारा निर्धारित नीति के देखते हुए अभूतपूर्व था।

कॉलेज में बँगला की उपेक्षा : भाषा समस्या पर विचार

कुछ दिनों से कॉलेज में बँगला के अध्ययन की उपेक्षा हो चली थी। फ़ारसी के अतिरिक्त विद्यार्थियों को एक दूसरी भाषा और लेनी पड़ती थी। बँगला लेने पर उनको फ़ारसी से एक बिल्कुल ही भिन्न भाषा का अध्ययन करने से कठिनाई का अनुभव होता था। अतएव परिश्रम बचाने की दृष्टि से विद्यार्थी फ़ारसी के बाद हिंदुस्तानी की ओर झुकते थे। फ़ारसी का प्रचार तो उस समय राजकीय दृष्टि से था ही और लगभग प्रत्येक विद्यार्थी को उसका अध्ययन करना पड़ता था। गिलक्राइस्ट द्वारा निर्धारित हिंदुस्तानी के रूप का अध्ययन करते समय उन्हें फ़ारसी शब्दावली की सहायता मिल जाती थी। इससे उनका भार अत्यधिक हल्का हो जाता था। फलतः बँगला के स्थान पर फ़ारसी और हिंदुस्तानी भाषाओं को प्रोत्साहन मिला। समय-समय पर बनने वाले कॉलेज के नियमों का इसमें बहुत-कुछ हाथ था, जैसे चौथे परिच्छेद का उन्नीसवाँ नियम। कोर्ट का ध्यान भी हिंदुस्तानी की ओर ही अधिक रहता था। अस्तु, २४ सितंबर, १८२४ को रडैल ने सामान्य (जनरल) विभाग के सरकारी मंत्री, सी० लशिंगटन, को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने भाषा-संबंधी अव्यवस्था की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने बँगला के अध्ययन के अधिकाधिक प्रचार के उपायों पर तो विचार किया ही है, जिससे हमारा अधिक संबंध नहीं है, किन्तु हिंदी-हिंदुस्तानी भाषाओं के संबंध में भी अपना मत प्रकट किया है और जो हमारे लिए महत्वपूर्ण है। उनका कहना है :

रडैल का पत्र

"हिंदुस्तानी, जिस रूप में यह कॉलेज में पढ़ाई जाती है और जिसे उर्दू, दिल्ली-ज़बान आदि या दिल्ली-दरबार की भाषा के नाम से भी पुकारा जाता है, समस्त भारतवर्ष के उच्च श्रेणी के लोगों, और विशेष रूप से मुसलमानों, में बोलचाल के लिए काम में लाई जाती है। किंतु क्योंकि इसे मुग़लों ने चलाया था और अरबी, फ़ारसी तथा अन्य उत्तर-पश्चिमी भाषाएँ इसका मूल स्रोत हैं, इसलिए अधिकांश में अब भी यह एक विदेशी भाषा समझी जाती है।

"फ़ारसी और अरबी से घनिष्ठ संबंध होने के कारण यह स्पष्ट है कि प्रत्येक विद्यार्थी कॉलेज में रहने की अवधि अधिक से अधिक कम करने की दृष्टि से फ़ारसी और हिंदुस्तानी की ओर ही झुकते हैं, क्योंकि फ़ारसी के साधारण ज्ञान से वह हिंदुस्तानी में आवश्यक योग्यता प्राप्त करने योग्य हो जाता है। किंतु इन दोनों भाषाओं में आवश्यक योग्यता प्राप्त कर लेने पर भी भारत की कम-से कम तीन-चौथाई जनसंख्या के लिए इसकी अरबी-फ़ारसी शब्दावली दुरूह सिद्ध होती है—उतनी ही दुरूह जितनी स्वयं उसके (विद्यार्थी के) लिए संस्कृत से संबंध रखने वाले मुहावरे या भाषा और जो हिंदुओं में प्रचलित समस्त बोलियों की जननी है

"साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि हिंदुओं में जिन विभिन्न बोलियों का चार है संस्कृत का एक अच्छा विद्वान् उनके प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत से सिद्ध कर सकता है। बँगला और उड़िया लिपियों ने तो अपनी अलग ही नियमित और शुद्ध वर्ण-विन्यास-कला बनाए रक्खी है। नहीं तो प्रायः सभी हिंदुओं की लिपि नागरी है और शब्दों में विभक्ति-चिन्ह लगाने के व्याकरण-संबंधी प्रमुख नियम लगभग समान हैं। इसलिए अन्य भाषाओं का अध्ययन करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा संस्कृत-ज्ञान-प्राप्त व्यक्ति संस्कृत से निकली हुई भाषाओं पर अधिक अधिकार प्राप्त कर सकता है।

"कॉलेज में रहने की साधारण अवधि में संस्कृत जैसी कठिन भाषा चौथे परिच्छेद के उन्नीसवें नियम से आगे—'जो कुछ हिंदुस्तानी और बँगला के व्याकरणानुमोदित और शुद्ध ज्ञान के लिए आवश्यक है'—निर्धारित पाठ्य-क्रम का अंग नहीं बनाई जा सकती। किंतु संस्कृत से निकली किसी भी देशी भाषा का, जिसका फ़ोर्ट विलियम प्रेसीडेंसी के अंतर्गत प्रदेशों में प्रचार है, व्याकरणानुमोदित और शुद्ध ज्ञान प्राप्त करने में लाभ है, क्योंकि इससे एक ही उद्‌गम से निकली हुई बोलियों का ज्ञान प्राप्त करने में उतनी ही सरलता होगी जितनी कि स्वयं संस्कृत के प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने में।

"ऐसा विश्वास किया जाता है कि बँगला और उड़िया अपने मूल उद्‌गम के अत्यधिक समीप हैं। किंतु खड़ीबोली, ठेठ हिंदी, हिन्दुई आदि विभिन्न नामों से प्रचलित 'ब्रजभाखा' का सामान्यतः समस्त भारतवर्ष में प्रचार है, विशेषतः जयपुर, उदयपुर और कोटा की राजपूत जातियों में। इसके अतिरिक्त यह उन सभी श्रेणियों के हिंदुओं की बोली है जिनसे हमारी और देशी नरेशों की सेना के सैनिक आते हैं।"[1]

अस्तु, कौंसिल ने सपरिषद् गवर्नर-जनरल से चौथे परिच्छेद के उन्नीसवें नियम में सुधार करने की प्रार्थना की ताकि उसके बाद के भर्ती हुए विद्यार्थियों से फ़ारसी-ज्ञान के अतिरिक्त हिंदुस्तानी भाषा के स्थान पर बँगला या ब्रजभाषा के, जिसे हिंदी और हिंदुई भी कहते थे, पर्याप्त ज्ञान की आशा की जा सकती। बँगला के अतिरिक्त स्वयं प्राइस पहले से ब्रजभाषा की शिक्षा देते थे। किंतु इस शिक्षा का कोई विशेष महत्त्व नहीं था। विद्यार्थियों को बोलचाल की बँगला और ब्रजभाषा का जैसा ज्ञान होना चाहिए था नहीं था। देशी लोगों के संपर्क में आने से बँगला और ब्रजभाषा का ज्ञान और भी परिपक्व होकर कर्मचारियों को राजकीय कार्यों में सुविधाजनक सिद्ध हो सकता था। इस विधि से बँगला की उपेक्षा भी न हो सकती थी। प्राइस के ब्रजभाषा-विशेषज्ञ होने से इस नई व्यवस्था के सफल होने की और भी अधिक आशा थी। राजनीतिक तथा शासन के व्यवहारोपयोगी दृष्टिकोणों से दोनों भाषाओं के ज्ञान की आवश्यकता थी। परीक्षा-क्रम तथा अन्य प्रयोजनों से कौंसिल ने चौथे परिच्छेद के बीसवें और इक्कीसवें नियमों में सुधार की प्रार्थना भी की।[2]

---

[1] वही, पृ० ३१६-३९७

[2] वही, पृ० ३९७-४००

तदनुसार लशिंगटन ने ३० सितंबर, १८२४ के पत्र द्वारा गवर्नर-जनरल की स्वीकृति भेज दी। परीक्षा संबंधी समस्या पर भी गवर्नर-जनरल ने अपने विचार प्रकट किए।[१] आज्ञा प्राप्त कर कौंसिल ने विधान का सातवाँ परिच्छेद तैयार कर २० अक्तूबर, १८२४ को सपरिषद् गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए भेज दिया। २८ अक्तूबर, १८२४ को उन्होंने उस पर अपनी स्वीकृति दे दी और कौंसिल की प्रार्थना के अनुसार नागरी लिपि, बँगला और हिंदी की प्राथमिक शिक्षा के संबंध में कोर्ट को लिखने का भी वचन दिया।[२]

कॉलेज के विधान का सातवाँ परिच्छेद

विधान के सातवें परिच्छेद के साथ कौंसिल ने प्राइस का एक पत्र भेजा था जिसमें उन्होंने (प्राइस ने) भाषा-संबंधी समस्या और ब्रजभाषा, खड़ीबोली, हिंदवी या हिंदुई, ठेठ हिंदी आदि के स्थान पर केवल 'हिंदी' नाम चुनने के कारणों पर विचार किया है। यह पत्र ११ अक्तूबर, १८२४ को कौंसिल के मन्त्री, रडैल, के नाम लिखा गया था। इसमें प्राइस ने अपने को 'हिंदी प्रोफ़ेसर' लिखा है, न कि 'हिंदुस्तानी प्रोफेसर', यद्यपि सरकारी पत्र-व्यवहार में 'हिंदी' और 'हिंदुस्तानी', मुख्यतः 'हिंदुस्तानी', शब्द का अनिश्चित प्रयोग मिलता है। कॉलेज के, और संभवतः अँगरेज़ी राज्य के, इतिहास में कदाचित् टेलर के बाद 'हिंदी' शब्द का आधुनिक अर्थ में निश्चित और लगातार प्रयोग—क्योंकि १८२४ से पहले भी एकाध बार 'हिंदी' का आधुनिक अर्थ में प्रयोग मिल जाता है[३]—प्राइस के इसी पत्र में मिलता है। प्राइस का वह महत्वपूर्ण पत्र निम्नलिखित है :

प्राइस का भाषा-संबंधी पत्र

"कॉलेज में उर्दू के स्थान पर हिंदी का अध्ययन जारी करने के कई कारण हैं। यह विषय कदाचित् ठीक-ठीक समझा नहीं गया। इसलिए आपके पत्र के उत्तर में मैं कुछ विस्तार से अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ।

"उत्तरी प्रांतों (Upper Provinces) की भाषाओं को हिंदुस्तानी और आपस में एक दूसरी से भिन्न तथा एक मूल रूप के विभिन्न रूप न समझी जाने के कारण उनके संबंध में बड़ी उलझन पैदा हो गई है। उन सबका निर्माण तो एक-सा है, चाहे शब्दावली भले ही भिन्न हो।

"गंगा की घाटी के हिंदुस्तान की बोलचाल की भाषा कभी संस्कृत रही थी या नहीं, यदि इस संबंध में सोच-विचार करने का समय नहीं रहा तो यह विचारणीय है कि देशी भाषाओं का निजी व्याकरण किस समय बना। यह एक तथ्य है जिसके कारण संस्कृत और हिंदी के विभिन्न रूपों में लाक्षणिक अंतर है। यद्यपि कुछ शब्दों का संतोषजनक संस्कृत रूप मालूम नहीं किया जा सकता, तो भी ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है। यदि

---

[१] वही, पृ० २००-२०१

[२] वही, पृ० २०१-२०३

[३] जैसे, मे० रामर ने अपने २० सितंबर, १८०४ के दावे में 'हिंदी' और 'हिंदवी' का समान अर्थ में प्रयोग किया है

गवेषणा की जाय तो उनकी संख्या और भी कम रह जायगी, यह निस्सन्देह है। इतने पर भी सहायक क्रिया 'होना' की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'भू' से सोचना कठिन है।

"साथ ही यदि क्रिया संस्कृत है, तो क्रिया के सामान्य रूपों को छोड़ कर विभक्ति-चिन्ह संस्कृत से नहीं मिलते। क्रियाओं के रूपों और कालों का अंत भी सामान्यतः बिल्कुल अजीब है। वर्तमान काल और भूत कृदंत के साथ सहायक क्रिया का प्रयोग और प्रत्यय लगा कर संज्ञाओं के कारक बनाना संस्कृत भाषा की प्रकृति के सर्वथा विपरीत है। अस्तु, मूल रूप चाहे जो कुछ रहा हो, अब एक हिंदी-व्याकरण है जिसका स्वतंत्र रूप से निर्माण हुआ है। यह एक ओर तो पूर्ण वस्तु के मूल स्रोत से भिन्न है और दूसरी ओर उन भाषाओं से भिन्न है जो संस्कृत से निकली बताई जाती हैं, जैसे, मराठी और बँगला। इसलिए वह भाषा स्वतंत्र समझे जाने योग्य है जिसे हम 'हिंदी' नाम से सरलतापूर्वक अभिहित कर सकते हैं—यद्यपि 'हिंदुई', अपभ्रंश 'हिंदवी', अधिक उपयुक्त शब्द होता।

"विदेशी शब्दों के अत्यधिक प्रभाव ने हिंदी का ऐसा रूप-परिवर्तन कर दिया है कि उसकी कुछ बोलियाँ बिल्कुल ही उससे भिन्न प्रतीत होती हैं। उर्दू के बड़े-बड़े विद्वान् ब्रजभाखा का एक वाक्य भी नहीं पढ़ सकते। प्राचीन और परिवर्तनशील प्रान्तीय विशेषताओं और विभिन्न अंशों में पंडित या मुंशी, मुसलमान शहज़ादा या हिन्दू ज़मींदार की बोलियों के पारस्परिक सम्मिश्रण ने ये परिवर्तन और बढ़ा दिए हैं। इससे हिंदी भाषा के अनेक रूप हो गए हैं। किन्तु इन विभिन्न रूपों का व्याकरण अपरिवर्तित रहा है। वह अब भी प्रधानतः एक ही है। कठिन से कठिन उर्दू और सरल से सरल भाषा में एक ही अथवा लगभग एक ही रचना-पद्धति, योगात्मक और पदान्तक शब्दों का प्रयोग होता है। 'का', 'के', 'की' और 'कौ', 'के', 'की' क्रमशः उर्दू और भाषा के संबंधकारक चिन्हों में कोई बहुत अधिक अंतर नहीं है। भाषा का 'मैं मारयो जातु हूँ' उर्दू के 'मैं मारा जाता हूँ' के लगभग समान है।

"ब्रजभाषा और उर्दू का थोड़ा सा अंतर, जो अभी दिखाया जा चुका है, प्रादेशिकता मात्र है। अन्य स्थलों पर ऐसी और भी प्रादेशिकताएँ हो सकती हैं, किंतु वे कम स्थिर और महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि इन अन्य बोलियों का प्रयोग कम होता है। अत्यधिक प्रचलित होने के कारण हिंदी का रूप ही अधिक अपेक्षित है, जैसा कि हिंदुस्तानी कही जाने वाली भाषा के संबंध से ज्ञात होता है। खड़ीबोली के विषय में भी यही कहा जा सकता है। खड़ीबोली ही अब तक हिंदुस्तानी और उसके व्याकरण का आधार है, न कि ब्रजभाखा, यद्यपि डॉ० गिलक्राइस्ट ने ब्रजभाखा को ही उसका आधार माना है।

"तो प्रादेशिकताओं को छोड़ कर, जिनकी ओर तुलनात्मक दृष्टि से विद्यार्थियों का ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है, उन भाषाओं के व्याकरण में, जो कॉलेज में पढ़ाई जाती हैं, परिवर्तन करने योग्य कोई बात नहीं है किंतु एक दूसरा दृष्टि से कुछ परिवर्तन है

"हिंदी और हिंदुस्तानी में सबसे बड़ा अंतर शब्दों का है। हिंदी के लगभग सभी शब्द संस्कृत के है और हिंदुस्तानी के अधिकांश शब्द अरबी और फ़ारसी के। डॉ० गिलक्राइस्ट के 'पौलीग्लौट फैब्यूलिस्ट' से एक साधारण उदाहरण लेकर हम संतोष कर सकते हैं :

"हिंदुस्तानी—'एक बार, किसी शहर में, यूँ शुहरत हुई, कि उसके नज़दीक के पहाड़ को जनने का दर्द उठा।"

"हिन्दी—'एक समय, किसी नगर में, चर्चा फैली, कि उसके पड़ौस के पहाड़ को प्रसूत की पीर हुई।"

"दोनों के शब्द कहाँ से लिए गए हैं, इस संबंध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। दोनों में से एक के भी रूप की विशेषता नष्ट किए बिना अंतर और भी अधिक हो सकता था।

"हिंदी की विशेषता के लिए एक और महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि वह नागरी अक्षरों में लिखी जानी चाहिए। संस्कृत-प्रधान रचना जब फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है तो ऐसे शब्द बनते हैं जो समझ ही में नहीं आते। कॉलेज के पुस्तकालय में 'पद्मावत' नामक हिन्दी-काव्य की दो प्रतियाँ हैं। उसके पढ़ने में मेरा और भाषा मुंशी का सतत परिश्रम व्यर्थ सिद्ध हुआ है।

"नई लिपि और नए शब्द सीखना विद्यार्थियों के लिए बड़े परिश्रम की बात होगी। किंतु इससे उनके ज्ञान की वास्तविक वृद्धि होगी। अपना फ़ारसी ज्ञान नए रूप में रखने के सिवाय उनका हिंदुस्तानी-ज्ञान और कुछ नहीं है। वह उनका परिचय न तो भाषा के साथ और न देशी लोगों के विचारों के साथ ही बढ़ाता है। हिंदी के अध्ययन में भी इससे कोई सहायता नहीं मिलती। किंतु हिंदी के साथ-साथ फ़ारसी का ज्ञान विद्यार्थी को हिंदुस्तानी रचनाएँ सरलतापूर्वक पढ़ने में सहायता पहुँचाएगा और वार्तालाप के उपयोगी माध्यम द्वारा हिंदुओं के चरित्र और विचारों के साथ परिचित कराएगा।"[1]

हिंदी को प्रधानता : नई व्यवस्था के अनुसार नई आवश्यकताएँ

किंतु प्रस्तावित नवीन व्यवस्था के सफल होने में एक बड़ी बाधा थी। उस समय तक अध्यापन-कार्य करने वाले कॉलेज के मुंशी न तो नागरी लिपि जानते थे और न हिंदी। दोनों ही बातें उनकी रुचि और अनुशीलन के विपरीत थीं। अतः सरकारी दृष्टिकोण से प्रस्तावित परिवर्तन में उनसे सहायता मिलने की आशा व्यर्थ थी। थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी वे विद्यार्थियों को अध्ययन के उचित मार्ग पर लगाने के बजाय भुलावे में डाल सकते थे। जिस समय कॉलेज में फ़ौजी विद्यार्थियों का दाखिला हुआ था उस समय काम के कई हिंदू थे। किंतु अब वे कॉलेज में नहीं थे। क्योंकि नेपाल-युद्ध के छिड़ते ही फ़ौजी विद्यार्थियों को हटा कर सैनिक-कार्य

---

[1] वही, पृ० १०३-२०१

के लिए भेज देने से वे काम के हिंदू व्यक्ति भी अलग कर दिए गए थे उनके स्थान पर तुरत ही सुयोग्य देशी अध्यापकों का यथेष्ट संख्या में मिलना कठिन था।

ज्यों-ज्यों हिंदू जातियों पर अँगरेज़ी राज्य स्थापित होता गया, त्यों-त्यों सरकार को उनसे घनिष्ठ संबंध स्थापित कर शासन-व्यवस्था सुचारु रूप से चलाने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता हुई। इसलिए विधान के नवीन अर्थात् सातवें परिच्छेद में अधिकारियों ने यह नियम रक्खा कि भविष्य में प्रत्येक विद्यार्थी फ़ारसी के साथ बँगला या हिंदी लेगा, न कि हिंदुस्तानी—जैसा अब तक था। कौंसिल को यह भी शंका थी कि कदाचित् विद्यार्थी बँगला की ओर अधिक झुकें और हिंदी को कठिन समझ कर उसकी ओर उनकी रुचि न हो। अतएव उन्होंने दोनों भाषाओं में ऐसी नई पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराने का विचार किया जो जहाँ तक हो सके, लिपि और व्याकरण का भेद छोड़ कर, विषय, शैली और भाव-व्यंजना की दृष्टि से समान हों। बँगला लिपि की कठिनाई बँगला पुस्तकों को नागरी लिपि में छाप कर दूर की जा सकती थी। कॉलेज के परीक्षा-काल की प्रत्येक अवधि के अंत में विद्यार्थियों से ये नई पुस्तकें पढ़वाने और इन्हीं में से प्रश्न पूछने की आशा की गई। इस परीक्षा में सफल होने पर ही उन्हें सरकारी नौकरी मिल सकती थी। हर्टफ़र्ड के अधिकारियों को भी यह लिखा गया कि विद्यार्थियों में बँगला और हिंदी दोनों को नागरी लिपि में पढ़ने की क्षमता उत्पन्न की जाय। साथ ही कौंसिल ने बँगला और हिंदी दोनों भाषाओं के जानने वाले अध्यापक नियुक्त करने की चेष्टा की। २९ अक्तूबर, १८२४ को उसने डॉ० विलियम कैरे और विलियम प्राइस को अपने-अपने विचार प्रकट करने के लिए लिखा।

विलियम प्राइस ने १ नवंबर, १८२४ को उत्तर देते हुए लिखा : हिंदी (हिंदू भाषा) के पठन-पाठन के लिए नए अध्यापक और नई पुस्तकों की आवश्यकता होगी। कॉलेज के मुंशी देवनागरी लिपि, हिंदी के अधिकांश शब्दों और हिंदुओं के आचार-विचारों से परिचित नहीं हैं। उनकी अवस्था, अभ्यास और संस्कार ने उन्हें नए प्रकार के उपयुक्त शिक्षक बनने योग्य नहीं छोड़ा। जितने भी पंडित हैं वे लगभग सभी बंगाल के रहने वाले और हिंदी अथवा हिंदुस्तानी व्याकरण से मुंशियों से भी कम परिचित हैं। साथ ही वे अपने प्रांतीय उच्चारण का हिंदी में प्रयोग करेंगे जिससे विद्यार्थी एक ऐसा उच्चारण सीख जाएँगे जो उत्तरी प्रांतों के निवासियों की समझ में न आ सकेगा। अस्तु, कॉलेज के न तो हिंदुस्तानी विभाग के मुंशी और न बँगला विभाग के पंडित हिंदी पढ़ाने योग्य हैं। हिंदी पढ़ाने के लिए उत्तरी प्रांतों से पंडित बुलाने पड़ेंगे। कितने पंडित बुलाने होंगे, इस बात का निश्चय कौंसिल स्वयं करे। हाँ, संस्कृत के साथ-साथ हिंदी की योग्यता भी उनमें होनी चाहिए। इस योग्यता के कारण वे उच्च कोटि के अध्यापक ही नहीं समझे जाएँगे, वरन् संस्कृत-विभाग में स्थान रिक्त होने पर वे सरलतापूर्वक वहाँ भी कार्य कर सकेंगे। बँगला कक्षाओं के लिए आवश्यक अध्यापकों की संख्या से उनकी संख्या अवश्य अधिक होनी चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों की दृष्टि से 'बैताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी' और 'प्रेमसागर' के नए संस्करण तैयार कराना भी आवश्यक होगा क्योंकि ये पुस्तकें इस समय यथेष्ट संख्या में प्राप्त नहीं हैं 'हितोपदेश' का

अध्यापक और ग्रंथ : प्राइस का मत

भी एक हिंदी अनुवाद हो रहा है जो काफ़ी लाभदायक सिद्ध होगा। ये ग्रंथ पाठ्य-पुस्तकों का काम भली भाँति दे सकेंगे। इनमें योग्यता प्राप्त करना पर्याप्त ज्ञान का प्रमाण समझा जायगा। किंतु इन ग्रंथों के छपने में समय लगेगा। मैं कौंसिल के इस विचार से सहमत नहीं कि विषय और भाव-व्यंजना के साम्य से बँगला और हिंदी पुस्तकों को नागरी लिपि में छापने से लाभ पहुँच सकता है। बँगला को आसान समझना ग़लत धारणा है। हर्टफ़र्ड से बँगला में कुशल विद्यार्थियों के आने से बँगला कक्षा के अधिक बढ़ जाने का डर है। बँगला कदापि हिंदी से आसान नहीं है। हर्टफ़र्ड में हिंदी की अपेक्षा हिंदू साहित्य, विशेषतः संस्कृत साहित्य, के अध्ययन की ओर अधिक ध्यान देने से हिंदी का अध्ययन पिछड़ सकता है। यूरोप में संस्कृत का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने से बँगला और हिंदी की ज्ञान-प्राप्ति में अत्यधिक सहायता प्राप्त होगी। किंतु जब तक वहाँ यह प्रबंध न हो जाय तब तक बँगला के विद्यार्थियों की संख्या कुल विद्यार्थियों की संख्या के $\frac{1}{3}$ के बराबर सीमित कर दी जाय।[1]

इस पत्र के साथ ही प्राइस ने ११ अक्तूबर के पत्र का उल्लेख भी किया। प्राइस की आयोजना से यही निष्कर्ष निकलता है कि हिंदी को प्रोत्साहन देने पर भी वे हिंदी के समुचित अध्ययन के लिए, जैसा कि आगे ज्ञात होगा, न तो नए अध्यापकों की और न नए गद्य-ग्रंथों के निर्माण की ही व्यवस्था कर सके। वे लल्लूलाल के ग्रंथों पर ही निर्भर रहे। संभवतः वे कोर्ट की आर्थिक नीति के कारण विवश थे।

प्राइस का अधकचरा प्रयास

डॉ० विलियम कैरे ने अपने १६ नवंबर, १८२४ के उत्तर में बँगला और हिंदी की समान पुस्तकों के प्रस्ताव की सराहना की। किंतु वे चाहते थे कि विषय मौलिक तथा इतिहास, विज्ञान और नीति-संबंधी हों। यूरोप में अधिकतर साहित्यिक ग्रंथों के आधार ऐसे ही विषय थे। ऐसे ग्रंथ ही जीवन में लाभदायक सिद्ध हो सकते थे। मौलिक ग्रंथों के अभाव में वे अँगरेज़ी से अनूदित ग्रंथों के पक्ष में थे। उनकी सम्मति में कॉलेज की पाठ्य-पुस्तकों में दी गई कहानियाँ पूर्वी आचार-विचार पर प्रकाश डालने वाली थीं। और यदि नीति भी लचर हुई तो कहानियाँ साधारण और अरुचिकर प्रतीत होती थीं। उनकी लेखन-प्रणाली और शैली भी नीरस, साधारण और तबियत उबा देने वाली थी। डॉ० मार्शमैन ने इतिहास, विज्ञान, भूगोल, और सौर-विज्ञान-संबंधी पुस्तकों का बँगला में अनुवाद किया था। कैरे उन्हें कॉलेज की पाठ्य-पुस्तकों के रूप में चाहते थे। बँगला के लिए नागरी उन्हें भी अस्वाभाविक जँची। नागरी लिपि के ज्ञान के लिए एक छोटी-सी पुस्तक से काम निकल सकता था। लेकिन दोनों भाषाओं के लिए एक ही सुलेखक रक्खा जा सकता था।[2]

कैरे का मत

---

[1] वही, पृ० २०८-२१०

[2] वही, पृ० २१०-२११

नागरी लिपि का कितना प्रचार था इस बात के उदाहरण में यह कहा जा सकता है कि बैरकपुर के देशी सिपाहियों के ४७वें रेजीमेंट ने जब विद्रोह किया तो सैनिक पत्रों की हिंदुस्तानी और नागरी लिपि में रचना हुई थी। लेफ़्टिनेंट कर्नल विलियम केसमेंट ने ४ नवंबर, १८२४ को कौंसिल के नाम पत्र लिखा था। सपरिषद् गवर्नर-जनरल की आज्ञा से प्राइस ने उन आज्ञापत्रों का अनुवाद किया था। यह अनुवाद १० नवंबर को केसमेंट के पास पहुँच गया था। प्राइस द्वारा अनूदित ये आज्ञापत्र अभी उपलब्ध नहीं हो सके।

नई व्यवस्था के अंतर्गत कॉलेज द्वारा प्रयुक्त हिंदी का रूप

किंतु एक अन्य उदाहरण से प्राइस की भाषा-नीति के प्रभाव का ज्ञान प्राप्त होता है। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के तत्त्वावधान में डॉ० गिलक्राइस्ट के हिंदुस्तानी-संबंधी विचारों और जिस हिंदुस्तानी भाषा की नींव उन्होंने डाली, उनके संबध में अन्यत्र विचार किया जा चुका है।[1] प्राइस के समय में भाषा को जो रूप मिला वह ध्यान देने योग्य है। किसी ग्रंथ के प्रकाशन के समय लेखक अथवा प्रकाशक को किन-किन बातों का उल्लेख करना चाहिए, इस संबंध में कौंसिल के १५ जनवरी, १८२५ के अधिवेशन में कुछ नियम बनाए गए थे। कौंसिल की आज्ञा से मंत्री, रडैल, ने ये नियम फ़ारसी, हिंदी, बँगला और अँगरेज़ी मे प्रकाशित किए थे। वह इश्तहार, जिसमें नागरी लिपि का प्रयोग हुआ है, इस प्रकार है:

> 'इश्तहार यह दिया जाता है कि जो कोई पोथी छपाने के लिये कालिज कौनसल से सहाय चाहता हो वुह अपनी दरखास में यह लिखे १. कि पोथी में केत्ता पन्ना औ पन्ने में कित्ती औ पांति कित्ती लंबी २. कितनी पोथियां छापेगा औ कागद कैसा तिस लिये अक्षर औ कागद का नमूना लावेगा ३. औ किस छापेखाना में छापेगा औ सब छप जाने में कित्ता खरच लगेगा ४. तयार हुये पर पोथी कित्ते दाम को बेचेगा'[2]

यह भाषा गिलक्राइस्ट के भाषा-संबंधी सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। यद्यपि भाषा अव्यवस्थित और वाक्य असंगठित हैं, किन्तु यह हिंदी है। इसी हिंदी का साधारण जनता में प्रचार था। जिस समय राज्य-भाषा फ़ारसी थी और फ़ारसीमय खड़ीबोली का भी यथेष्ट प्रचार था, उस समय सरकारी इश्तहार में ऐसी सरल और जन-साधारण में समझी जाने वाली हिंदी का प्रयोग करना वास्तव में असाधारण बात थी।

अस्तु, २६ जनवरी, १८२५ को मंत्री, रडैल, ने डॉ० कैरे को सूचित किया कि बिना परीक्षा लिए बँगला और संस्कृत का कोई अध्यापक कॉलेज मे न रक्खा जाय। और

मुंशियों को हिंदी पढ़ाने के लिए सीताराम पंडित की नियुक्ति

क्योंकि कौंसिल एक पृथक हिंदी विभाग स्थापित करना नहीं चाहती थी (आर्थिक कारणों से) इसलिए उन्हीं अध्यापकों को रखने का और आदेश दिया गया जो बँगला और संस्कृत के साथ-साथ हिंदी भी जानते थे। व्यय और कठिनाइयाँ बचाने के लिए कौंसिल ने

---

[1] दे०, 'हिंदुस्तानी' (अक्तूबर, १९४०) में 'गिलक्राइस्ट और हिंदी' शीर्षक लेख।

[2] फ़ो० वि०, १९ जनवरी, १८२५—२६ दिसंबर १८२६ प्रो०, भि०, जि० १०, पृ० ११, इ० रे० वि०

पश्चिमी प्रांतो के निवासी सीताराम पंडित को रख लिया था ताकि जिन लोगों की रुचि हो वे उनकी उपस्थिति से लाभ उठा सकें। फलतः कॉलेज की स्थायी और अस्थायी व्यवस्था के छब्बीस मुशी सीताराम पंडित की सहायता से हिंदी ग्रंथों का अध्ययन करने लगे। किंतु ये मुंशी अपने धर्म, आचार-विचार, क़ानून और संस्कार के कारण संस्कृत से संबंधित भाषाएँ सीखने में कठिनाई का अनुभव करते थे। इसलिए कुछ हिंदू, जैसे, राममोहन तर्कवागीश, ही कौंसिल के इस उद्देश्य में हाथ बँटा सकते थे।

नेटिव इंफैंट्री के कंपनी कमांडर को यह आज्ञा मिली कि भविष्य में अनुपस्थिति के संबंध में अर्ज़ियाँ नागरी और फ़ारसी में ली जायँ।[१]

मौलवी बख्शीश अली ने 'सैरुलमुताखरीन' का हिंदुस्तानी में अनुवाद किया था। रडैल ने उसे प्राइस के पास निरीक्षणार्थ भेजा। २५ मार्च, १८२५ को रिपोर्ट भेजते हुए उन्होंने लिखाः '...यदि हिंदुस्तानी के उर्दू रूप का अध्ययन जारी रहता तो मीर बख्शीश अली का अनुवाद बहुत उपयोगी सिद्ध होता। लेकिन हाल ही में मेरे विभाग में उर्दू के स्थान पर हिंदी का अध्ययन प्रारंभ हो जाने से इस प्रकार के अनुवादों की आवश्यकता नहीं है। अब ऐसे ग्रंथों के बजाय नए प्रकार के ग्रंथों की आवश्यकता होगी।....'[२]

नए प्रकार के ग्रंथों की आवश्यकता अवश्य थी, किंतु उनकी रचना हुई नहीं। इसी प्रकार नए अध्यापकों की आवश्यकता थी। इस संबंध में भी जो होना चाहिए था वह नहीं हुआ। पुरानों को ही ठोक-पीट कर वैद्यराज बनाया जा रहा था। इससे हिंदी की उन्नति की कोई आशा नहीं थी।

मुंशियों और पंडितों (बंगाली) को हिंदी-शिक्षा देने के लिए सीताराम पंडित रक्खे गए थे। वे पिछले नवंबर से उन्हें 'प्रेमसागर', 'राजनीति' आदि ग्रंथ पढ़ाते थे। थोड़े ही दिन बाद मुंशियों और पंडितों ने परीक्षा में बैठने की इच्छा प्रकट की।

मुंशियों की हिंदी-परीक्षा और फल

इसलिए मंत्री, रडैल, ने १८ मई, १८२५ को प्राइस को सूचित किया कि २४ मई, १८२५ के बाद जिस दिन भी उन्हें सुविधा हो वे अध्यापकों की हिंदी-परीक्षा लें। लेफ़्टिनेंट ए० डी० गॉर्डन उनकी सहायता के लिए नियुक्त किए गए। जिन मुंशियों और पंडितों की परीक्षा होने वाली थी उनके नाम ये हैं—क़ुर्बान अली, बाक़िर अली, सादुद्दीन, मीर सैयद अली, मुहम्मद वसी, अब्दुस्समद, ग़ुलाम फ़रीद, मज़हरुल्लाह, मौला बख्श, फ़खुज़्ज़मन, मीर तसद्दुक़ हुसैन, मिर्ज़ा हसन अली, वाजिबुद्दीन, ग़ुलाम हैदर, अब्दुल्ला, मुहम्मद मुस्तकिम, दलीलुद्दीन, अलताफ़हुसैन, हाफ़िज मुज़फ़्फ़र अली, ग़ुलाम हैदर, बदरुद्दीन, मुज़फ़्फ़र हुसैन, अब्दुल अहद, नज़रुल्लाह, रामनारायण, कालीप्रसाद, नरोत्तम, रामचन्द्र, मधुसूदन, पद्मलोचन और राममोहन।

६ जून, १८२५ को प्राइस और गॉर्डन ने अपनी रिपोर्ट भेज दी। इस रिपोर्ट के

---

[१] वही, पृ० ७१

[२] वही, पृ० ८१-८२

अनुसार मुंशियों में से अधिकतर 'प्रेमसागर' और 'राजनीति' काफ़ी अच्छी तरह पढ़ लेते थे और विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए उपयुक्त थे। किंतु उनमें से बहुत कम नागरी अक्षर लिख सकते थे। उनमें से कुछ फ़ारसी से हिंदी में अनुवाद करने योग्य भी हो गए थे। नागरी अक्षर लिखने की क्षमता रखने वाले बड़े भद्दे अक्षर लिखते थे। इसलिए परीक्षकों ने उन्हें नागरी सुलेखक के पास भेजने का विचार प्रकट किया, क्योंकि नागरी पढ़ाने वालों को नागरी अक्षर लिखने की क्षमता होना परमावश्यक था।

उन्होंने मुंशियों और 'भाखा'-अध्यापक सीताराम के परिश्रम की सराहना की। मुंशी पढ़ाने योग्य हो अवश्य गए थे, किंतु अध्ययन की केवल प्रारंभिक अवस्था तक के लिए। सब कुछ होने पर भी उनका हिंदी-ज्ञान अपरिपक्व और केवल 'प्रेमसागर' और 'राजनीति' तक ही सीमित था। अधिकतर अध्यापकों ने तो ये दोनों पुस्तकें रट ली थीं। केवल पढ़ाने का अभ्यास करते रहने पर ही वे उन्हें स्मरण रख सकते थे। कुछ समय तक अध्यापन कार्य न मिलने पर उनके सब कुछ भूल जाने और तत्पश्चात् पढ़ाने के लिए और भी अयोग्य हो जाने का भय था। विद्यार्थियों को पढ़ाने के साथ-साथ अपना अध्ययन भी वे जारी रख सकते तो कहीं अच्छा होता।

पंडित तो और भी अयोग्य निकले और परीक्षकों की सम्मति में उनसे कोई आशा नहीं थी। किंतु उनको हिंदी के अधिक ज्ञान की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि शायद ही कोई विद्यार्थी हिंदी और बँगला का एक साथ अध्ययन करता था। इसलिए दोनों भाषाएँ पढ़ाने की क्षमता होना पंडितों के लिए आवश्यक न समझा गया।[1]

कॉलेज में हिंदी के पठन-पाठन के लिए अवैज्ञानिक साधनों और अधकचरे प्रयासों का अवलंबन ग्रहण करने पर भी इसमें संदेह नहीं कि हिंदी की महत्ता सबको स्पष्ट ज्ञात हो गई थी। यह वह समय था जब कि अँगरेज़ों का हिंदी जनता के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित हो चुका था और सुचारु शासन-व्यवस्था, राजनीति तथा जनता के रीति-रस्म और आचार-विचार समझने की उन्हें आवश्यकता हुई। २५ जुलाई, १८१५ को कॉलेज के वार्षिक अधिवेशन के समय भाषण देते हुए ऑन० एन० बी० एड्मॉन्स्टन, स्थानापन्न विज़िटर, ने कहा था :

एड्मॉन्स्टन के भाषा-संबंधी विचार

'लेफ़्टिनेंट प्राइस की अध्यक्षता में कई सैनिक विद्यार्थियों को ब्रजभाषा का अध्ययन करते देख अत्यंत संतोष होता है। हिंदी का हिंदुस्तानी के साथ वही संबंध है जो ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दी की सैक्सन का आधुनिक अँगरेज़ी से है। ब्रजभाषा अथवा प्राचीन ब्रज प्रदेश की भाषा इसी हिंदी की एक बोली है। इस समय भारत की अधिकांश जन-संख्या की भाषा हिंदी है जो विविध रूप धारण करने और अरबी-फ़ारसी-शब्दों के सम्मिश्रण के बाद उस शिष्ट और परिमार्जित भाषा का रूप धारण कर लेती है जिसे उर्दू अथवा हिंदुस्तान की दरबारी भाषा कहते हैं।

---

[1] वही, पृ० १०२-१००

'इसलिए हिंदी का अध्ययन यद्यपि अँगरेजी के पूर्ण ज्ञान के लिए ऐंग्लो-सैक्सन के अध्ययन की अपेक्षा यथार्थतः उर्दू कही जाने वाली भाषा के घनिष्ठ और आलोचनात्मक ज्ञान के लिए अधिक आवश्यक है, तो भी भारतीय जनसमाज के सभी वर्गों के साथ व्यापक संसर्ग और व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने वालों के लिए महत्त्वपूर्ण ही नहीं आवश्यक भी है। कंपनी के सैनिक अफ़सरों के लिए तो यह ज्ञान विशेष रूप से आवश्यक है क्योंकि बंगाल क्षेत्र के अधिकतर सिपाही या तो ब्रजभाषा का व्यवहार करते हैं अथवा ऐसी बोली का जिसका प्रधान अंग हिंदी है। इसलिए यह अत्यंत वांछनीय है कि ऐसी भाषा कॉलेज में सभी के अध्ययन का विषय बने।'[1]

लॉर्ड ऐम्हर्स्ट के भाषा-संबंधी विचार : भाषा-समस्या का वैज्ञानिक विश्लेषण

किंतु उस समय अर्थात् १८१५ में व्यावहारिक दृष्टि से हिंदी के लिए कुछ भी न किया जा सका था। गिलक्राइस्ट की भाषा-नीति का ही प्रधान रूप से अनुसरण होता रहा। यद्यपि विलियम प्राइस हमें कोई नया गद्य-ग्रंथ न दे सके और न सुयोग्य अध्यापक वर्ग ही उन्होंने रक्खा, तो भी कॉलेज के शिक्षा-क्रम में हिंदी को उसका उच्च स्थान दिलाने का श्रेय उन्हीं को है। कॉलेज के पदाधिकारियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने हिंदी का महत्त्व पहिचाना। जुलाई, १८२५ के वार्षिक अधिवेशन के समय भाषण देते हुए भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के गवर्नर-जनरल और फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के विज़िटर, राइट ऑनरेबुल विलियम पिट, लॉर्ड ऐम्हर्स्ट, ने कहा था :

'नए विधान के स्वीकृत होने से गत वर्ष कॉलेज के पाठ्यक्रम में एक परिवर्तन हुआ है जिसके अंतर्गत प्रत्येक विद्यार्थी को सरकारी नौकरी पाने के लिए फ़ारसी के अतिरिक्त हिंदी या बँगला भाषा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

'हिंदी और बँगला भाषाओं की अब तक उपेक्षा होती रही थी। प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर इस आसन से उनके अध्ययन की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाता था, किंतु उसका कोई प्रभाव न हुआ। अब नए विधान के अनुसार उनका अध्ययन कॉलेज के पाठ्य-क्रम का अनिवार्य अंग बन गया है। 'हिंदी' शब्द के सामान्य अर्थ के अन्तर्गत वे बोलियाँ आती हैं जो थोड़े-से स्थानीय भेदों और परिवर्तनों के साथ बनारस और बिहार तथा समर्पित और विजित प्रांतों के अधिकांश हिंदू जनसमूह द्वारा व्यवहृत होती हैं।

'इस विषय के विशेषज्ञों द्वारा मुझे इस संबंध में जो कुछ भी ज्ञात हुआ है उसके आधार पर मैं बड़े ज़ोरों से आपका इन भाषाओं की ओर, जिन्हें मैं इस देश की भाषाएँ कहता हूँ, ज़ोरों के साथ ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।

'पिछले समय में जब अल्पसंख्यक अँगरेज़ों को नागरिक शासन की सब बातों के संचालक उच्च श्रेणी के या प्रभावशाली देशी व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करना

---

[1] **'एशियाटिक जर्नल', १८१६**

पड़ता था तो सरकारी काग़ज़ों की भाषा फ़ारसी और उच्च वर्ग के पारस्परिक व्यवहार की भाषा हिंदुस्तानी का ज्ञान उस कार्य के करने में यथेष्ट रूप से सहायक सिद्ध हो सकता था जिसे मामूली तौर से कंपनी के कर्मचारी किया करते थे।

'किंतु वह परिस्थिति अब नहीं है। अब आपको लगातार छोटे-से-छोटे व्यक्ति के साथ न्याय करना पड़ता है और नीची से नीची श्रेणी के व्यक्तियों के अधिकारों, हितों और उनकी संस्थाओं की रक्षा करनी पड़ती है। ये लोग वास्तव में वे हैं जो अत्याचार से पीड़ित होने पर आपका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करेंगे। उनको सुखी बनाना आपके देश के लिए सब से अधिक गौरव की बात होगी और वही भारतीय साम्राज्य का पक्की जड़ होगी। हम जिस दुर्ग में एक किसान की झोंपड़ी की रक्षा करते हैं वह किसी हालत में उस दुर्ग से कमज़ोर नहीं है जो सर्वोच्च और अति धनिक वर्ग की सम्पदा की रक्षा करता है। और यदि उनके छोटे होने से हम उनके तुच्छ किंतु अत्यंत मूल्यवान अधिकारों की अवहेलना करें, तो क्या सबसे अधिक संरक्षण चाहने वालों की साधारण से अधिक रूप में सहायता करने के हृदय के भार की उपेक्षा भी आप कर सकते हैं। तो भी उनके वर्ग की संख्या और महत्ता—वास्तव में वे इस देश के किसान हैं—हमें यथेष्ट रूप से उनके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने योग्य हैं।

'किंतु यदि आप उनकी भाषा नहीं बोल सकते—फ़ारसी और उर्दू उनके लिए उतनी ही विदेशी हैं जितनी अँगरेज़ी—तो अच्छे से अच्छा सरकारी क़ानून एक मज़ाक ही रहेगा; आपके बड़े से बड़े उदारतापूर्ण निश्चयों का अंत निराशा में होगा; जनता का वास्तविक गँवारपन और अज्ञान और भी बढ़ेगा; लोग आपको मूर्ख मालूम होंगे क्योंकि वे आपको अपनी बात नहीं समझा सकेंगे; आप चाहे जितनी अच्छी नीयत से कोई काम करें तो भी वे आपको अत्याचारी नहीं तो सनकी अवश्य समझेंगे क्योंकि आप अपने कार्यों का प्रभाव जानने में असमर्थ रहेंगे। संक्षेप में, आप जनता के लिए और जनता आपके लिए अजनबी बनी रहेगी। इस अजनबीपन में स्वार्थी लोगों की करतूतों से यह कठिनाई असह्य उत्पात के रूप में परिवर्तित हो सकती है।

'इसलिए मैं पश्चिमी प्रांतों में जाने वाले कर्मचारियों से आग्रह करता हूँ कि वे हिंदी पर अधिकार प्राप्त करें। जिन्हें बंगाल में रह कर ही शासन-भार ग्रहण करना है उनके लिए बँगला का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

'इस प्रकार की जड़ जमाए हुए व्यक्तियों के लिए शिष्टतापूर्ण वार्तालाप में परिमार्जन लाना कठिन न होगा। वस्तुतः आपको किसी देशी सज्जन से ऐसी भाषा में बातचीत करनी चाहिए जिससे वह स्वयं लज्जित हो जाय। किंतु जनता के अधिकांश भाग को समझना और स्वयं उनसे समझा जाना तो आपका निश्चित कर्त्तव्य है जिसकी आप अपने को अपमानित, सरकार के प्रति विश्वासघात, अपने देश की बदनामी और इस देश के प्रति अन्याय किए बिना उपेक्षा नहीं कर सकते।'[1]

---

[1] 'एशियाटिक जर्नल', १८२१

अँगरेज़ी राज्य के इतिहास में यदि भाषा-संबंधी समस्या का कोई भी संतोषजनक विश्लेषण मिलता है तो वह यही है। २३ सितंबर, १८२६ को प्राइस ने मंत्री, रडैल, के नाम पत्र लिखते हुए कहा था कि फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में ही नहीं, हर्टफ़र्ड कॉलेज में भी हिंदी के पठन-पाठन का प्रबन्ध नहीं किया गया। वहाँ से आए हुए विद्यार्थियों का हिंदी-ज्ञान तो और भी कम था। प्राइस के इस मत का अनुमोदन परीक्षकों ने अपनी ३० अक्तूबर, १८२६ की रिपोर्ट में भी किया।[1]

प्राइस अब अपने को प्रायः 'हिंदी प्रोफ़ेसर' लिखा करते थे, किंतु मंत्री तथा कॉलेज के अन्य पदाधिकारी उन्हें 'हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर' ही लिखा करते थे।

अक्तूबर, १८२७ मे हिंदी अध्यापक होने के लिए फिर चालीस मुंशियो की परीक्षा ली गई। निम्नलिखित परीक्षा-फल से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिंदी के पठन-पाठन के लिए कॉलेज के पदाधिकारी जिन व्यक्तियों का आश्रय ले रहे थे उनसे कहाँ तक हिंदी की उन्नति में सहायता मिल सकती थी :

सफल	असफल	अनुपस्थित	सफल होने की संभावना
४	१८	१५	१

जिनके संबंध मे कुछ नहीं कहा जा सकता
१

हाँ, हिंदी के विद्यार्थियों की संख्या पहले की अपेक्षा अब बढ़ती जा रही थी। लेकिन साथ ही सरकार यह चाहती थी कि जूनियर सिविल कर्मचारियों की भाषा-संबंधी शिक्षा-अवधि और मापदण्ड कम कर दिया जाय। स्थानापन्न सरकारी मंत्री, ई० मोलोनी, ने १७ जनवरी, १८२८ को इस आशय का पत्र लिखा भी था। किंतु कॉलेज के अधिकारियो ने उत्तर में लिखा कि कॉलेज मे शिक्षा-अवधि और मापदण्ड वैसे ही कम है, और कम कर देने से विद्यार्थी कुछ न सीख पावेंगे।[2]

इस उत्तर से सरकार की इच्छा पूर्ण न हुई। परंतु हर्टफ़र्ड कॉलेज के अतिरिक्त कोर्ट के डाइरेक्टर सिविलियन कर्मचारियो की शिक्षा के लिए अन्य किसी संस्था पर खर्च करना भी नहीं चाहते थे। अतएव इस समय कॉलेज मे जो परिवर्तन हुए उनसे कॉलेज का व्यय कम हुआ और साथ ही, अप्रत्यक्ष रूप से, भारतीय सरकार की इच्छा भी पूर्ण हुई। कॉलेज के अंतिम समय का सूत्रपात यहीं से समझना चाहिए। एक इस कारण से भी प्राइस द्वारा हिंदी के पठन-पाठन के लिए जिस प्रकार और जिन अनुपयुक्त साधनो का आश्रय ग्रहण कर प्रयास किया गया उसका कोई ठोस परिणाम न निकल सका।

लम्सडन के अवकाश ग्रहण कर लेने पर जून, १८२५ में अट्ठाइसवीं रेजीमेंट,

---

[1] फ़ो० वि०, १२ जनवरी, १८२९—२६ दिसंबर, १८२९, हो०, मि०, जि० १०, पृ० २९८, २६०-२६१, इं० रे० वि०

[2] फ़ो० वि०, ३० जून १८२७—[illegible], १८२८ हो०, मि०, जि० ११ पृ० ३२७ ३३२, ३६२, इं० रे० वि०

नेटिव इन्फ़ैन्टरी के लफ़्टिनेंट जे० डब्ल्यू० जे० आउज़्ले आठ सौ रुपया मासिक वेतन पर अरबी-फ़ारसी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए।

लगभग इसी समय विद्यार्थियों पर बढ़ता हुआ कर्ज़ देख कर अकाउंटेंट-जनरल, वुड, ने सरकार को कॉलेज तोड़ देने की सलाह दी थी। उनकी रिपोर्ट के साथ कौंसिल की मिनिट्स भी भेजी गई। किंतु गवर्नर-जनरल ने कॉलेज तोड़ने के स्थान पर विद्यार्थियों की कर्ज़ लेने की कुप्रवृत्ति रोकने का प्रयत्न करना अधिक अच्छा समझा। इस संबंध में कैरे, प्राइस, आउज़्ले से भी परामर्श किया गया था।[1]

जून, १८२५ को आउज़्ले के अतिरिक्त अध्यापक-वर्ग गत वर्ष ही की भाँति था। ए० डी गॉर्डन (१८२४) और एच० टॉड (१८२५) परीक्षक थे। फ़ौजी भत्ता मिला कर (पाँच सौ और एक सौ चौरानवे) उन दोनों में से प्रत्येक को छः सौ चौरानवे रुपया मासिक वेतन मिलता था। 'भाखा'-विभाग में जनवरी, १८०७ में स्वीकृत की गई जगह पर गंगाप्रसाद शुक्ल १८२३ से पचास रुपया मासिक वेतन पर कार्य कर रहे थे।[2]

कॉलेज के विधान का आठवाँ परिच्छेद

विद्यार्थियों के अनुशासन तथा अन्य विषयों के संबंध में सपरिषद् गवर्नर-जनरल की आज्ञा से सरकारी मंत्री, लशिंगटन, ने कौंसिल के नाम एक पत्र लिखा जिसमें कौंसिल के सदस्यों से कॉलेज-विधान का एक नया परिच्छेद प्रस्तुत करने की आशा की गई थी। तदनुसार कौंसिल ने ८ अगस्त, १८२५ को एक नया परिच्छेद तैयार कर सपरिषद् गवर्नर-जनरल के पास भेज दिया। कॉलेज-विधान का यह आठवाँ परिच्छेद था। ऑन० विलियम पिट, लॉर्ड ऐम्हर्स्ट, ने १८ अगस्त, १८२५ को अपने हस्ताक्षर कर उसे क़ानून में परिणत कर दिया। कौंसिल ने उसकी घोषणा प्रकाशित की और पहले के परिच्छेद रद्द समझे गए।[3] कोर्ट की इच्छानुसार कॉलेज का पुस्तकालय भी सर्वसाधारण के लिए खोल दिया गया। किंतु अंत में गवर्नर-जनरल ने उसे केवल साहित्यिक व्यक्तियों के उपयोग तक ही सीमित रक्खा। १ मई, १८२६ को कॉलेज का अध्यापक-मण्डल पिछले वर्ष की ही भाँति था। कॉलेज के वार्षिक व्यय में भी अभी कोई परिवर्तन न हुआ था।[4] परंतु २४ जनवरी, १८२८ को स्थानापन्न सरकारी मंत्री, ई० मोलौनी, ने कौंसिल को वार्षिक व्यय कम करने के लिए लिखा—विशेष रूप से आकस्मिक व्यय।[5] फिर एच० टी० प्रिंसेप

---

[1] फ़ो० वि०, १९ जनवरी, १८२५—२६ दिसंबर, १८२६, हो०, मि० जि० १०, पृ० ६५-१२३ १८९-१९९, इं० रे० वि०

[2] वही पृ० १२५-१२७

[3] वही, पृ० २८६ २०१

ने कौंसिल के सभापति और सदस्यों का ध्यान कोर्ट के १६ दिसंबर, १८२७ के सरकारी सामान्य पत्र की ओर आकृष्ट किया। इस सामान्य पत्र में शिक्षा की दृष्टि से कॉलेज और कॉलेज के विभिन्न पदाधिकारियों की अभीष्टता तथा योग्यता अथवा अपव्यय आदि के संबंध में प्रश्न पूछे गए थे। जूनियर सिविल कर्मचारियों के विषय में भी उनकी सम्मति माँगी गई थी। क्या वे कॉलेज तोड़ना चाहते थे या बम्बई और मद्रास की संस्थाओं की तरह कोर्ट की इच्छानुसार कॉलेज की व्यवस्था में कमी करना चाहते थे? कॉलेज में दो प्रकार की पढ़ाई होती थी—१. निजी ढंग से मुंशियों के माध्यम द्वारा और २. सरकारी ढंग से कॉलेज में जहाँ प्रत्येक विद्यार्थी के लिए प्रत्येक दिन एक घंटे का समय निर्धारित था। इन दोनों प्रकार की पढ़ाइयों में से किस प्रकार की पढ़ाई वे अच्छी समझते थे। इसी प्रकार और भी कई प्रश्न थे जो कॉलेज की तत्कालीन व्यवस्था से संबंध रखते थे। कॉलेज के मंत्री, रुडैल, ने आउज़्ले, प्राइस, कैरे, टॉड और टी० प्रॉक्टर को २४ जून, १८२८ को उनकी सम्मतियों के लिए एक-एक पत्र लिखा।

१२ जून, १८२८ के पत्रोत्तर में ७ अगस्त, १८२८ को कॉलेज कौंसिल ने लॉर्ड विलियम कवेंडिश् बेंटिक को अपनी मिनिट्स तथा उपर्युक्त अफ़सरों की सम्मतियाँ भेजते हुए लिखा: कॉलेज एक उपयोगी संस्था है और उसे तोड़ना साम्राज्य के लिए किसी भी हालत में लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकता। विद्यार्थियों में अनुशासन का अत्यधिक अभाव नहीं है और न उसका कोई घातक परिणाम ही दृष्टिगोचर हुआ है। कॉलेज की वर्तमान आयोजना अभीष्ट फलदायक है। उसके विधान में कोई विशेष परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। विद्यार्थियों में जो कुछ अनुशासन का अभाव है भी उसे दूर करने के लिए आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं। हिंदी की पढ़ाई भी समुचित ढंग से हो रही है। विद्यार्थी लगभग छः महीने तक के अध्ययन में काफ़ी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं।

मिनिट्स के साथ-साथ कौंसिल ने कॉलेज की स्थापना-तिथि से अब तक क्या-क्या काम हुआ, कितने विद्यार्थियों ने शिक्षा पाई और कितनी भाषाएँ कितनी योग्यता के साथ पढ़ाई गईं, इन सब बातों का विवरण भी भेजा।[1]

सरकारी मंत्री, एच० टी० प्रिंसेप, ने १८ सितंबर, १८२८ को कौंसिल के सभापति तथा सदस्यों के नाम पत्र लिखते हुए कहा कि सरकार अभी किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँच सकी। किंतु एक ओर तो कौंसिल के सभापति कॉलेज की दशा सुधारने के लिए आवश्यक सुधार चाहते थे, दूसरी ओर कोर्ट ऐसे सुधार अव्यावहारिक समझता था। ऐसी हालत में भारतीय सरकार के लिए किसी अंतिम निर्णय पर पहुँचना कठिन ही था। इसीलिए प्रिंसेप ने अपने पत्र में सपरिषद् गवर्नर-जनरल की आज्ञा से कौंसिल के सभापति से सुधार-संबंधी सुझाव माँगे।

---

[1] फो० वि०, ७ अगस्त १८२८ १३ फ़रवरी १८३० हो० मि० जि० १२, पृ० १-८१ इ० रे० वि०

इस पर सभापति, सदस्यों तथा आउज़्ले, प्राइस, कैरे आदि ने अपने-अपने विचार प्रकट कर तरह-तरह के सुझाव पेश किए और २० फ़रवरी, १८२६ को सब काग़ज़ात सरकारी मंत्री के पास भेज दिए।[1]

२ जून, १८२६ को सरकारी मंत्री, प्रिंसेप, ने कौंसिल के सभापति, शेक्सपियर, तथा सदस्यों को पत्र लिखते हुए कोर्ट के पत्र के तेईसवें और चौबीसवें अनुच्छेदों द्वारा दिए गए इच्छाधिकार के अंतर्गत कॉलेज को उसी स्थिति में जारी रखने की सरकारी आज्ञा प्रदान की। किंतु विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता तथा अन्य दोष दूर करने के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई और साथ ही उसे गवर्नर-जनरल के मातहत रखने का विचार हुआ। ऐसा एक अधिकारी व्यक्ति कॉलेज का मंत्री बनाया भी गया। वह कलकत्ता तथा कलकत्ते से बाहर रहने वाले सभी विद्यार्थियों की देखभाल करने लगा। अपराधी विद्यार्थियों को दण्ड देने का उसे अधिकार था। न सुधर सकने वाले विद्यार्थी या तो इँगलैंड वापस भेज दिए जाते थे अथवा उन्हें कड़े फ़ौजी अनुशासन में रक्खा जाता था।[2]

रडैल के २८ अगस्त, १८२६ के पत्रानुसार कॉलेज की व्यवस्था का विवरण निम्नलिखित है और बैंटिक सरकार ने इसे बनाए रखना उचित समझा था :

नाम	नियुक्ति की तिथि	मासिक वेतन	कॉलेज में काम करने के दिन	काम
डॉ० कैरे	अप्रैल, १८०१	१०००	मंगल और शुक्र	...
कैप्टेन प्राइस	अक्तूबर, १८१३	८००	बुध और शनि	हिंदी के प्रोफ़ेसर, इनके विशेष कार्यों के लिए १६ अगस्त, १८२६ का पत्र देखिए। अपने पदानुसार फ़ौजी भत्ता पाते हैं।
कैप्टेन डी० रडैल	जनवरी, १८२०	८००	...	मंत्री और पुस्तकाध्यक्ष
कैप्टेन जे० डब्ल्यू० जे० आउज़्ले	नवंबर, १८२३	८००	सोमवार और मंगल	अरबी और फ़ारसी के प्रोफ़ेसर
लेफ़्टिनेंट एच० टॉड	मार्च, १८२५	५००		अरबी और फ़ारसी के सरकारी परीक्षक
रेव० टी० प्रॉक्टर	जनवरी, १८२१	२५०		फ़ारसी के स्थानापन्न सरकारी परीक्षक

अध्यापकों में से हिंदुस्तानी विभाग के अध्यापक निम्नलिखित थे :

---

[1] वही, पृ० ८६-१०४

[2] वही, पृ० १०४-१०५

नाम	नियुक्ति की तिथि	वेतन	
तारिणीचरण मित्र	मई, १८०१	२००	हिंदी के प्रोफ़सर का १६ अगस्त, १८२६ का पत्र देखिए।
मीर बख़शीश अली	नवबर, १८०३	१००	
मुर्तज़ा ख़ाँ	मई, १८०१	८०	विद्यार्थियों को फ़ारसी और हिंदी भाषाओं की शिक्षा देते हैं और पुस्तकालय में काम करते हैं।
मौला बख़्श	सितबर, १८०२	४०	
दलीलुद्दीन	अक्तूबर, १८०१	४०	
मीर तसद्दुक हुसैन	नवबर, १८०२	४०	
मुहम्मद वसी	जनवरी, १८०५	४०	
वाजिबुद्दीन	नवबर, १८०८	४०	विद्यार्थियों को फ़ारसी और हिंदी भाषाओं की शिक्षा देते हैं। बँगला सुलेख की शिक्षा देने के लिए गंगानारायण उसी प्रकार हैं जिस प्रकार फ़ारसी और अरबी विभागों में मुहम्मद ताहा हैं।[1]
फ़ख़्रुज़्ज़मन	अगस्त, १८१२	४०	
गंगानारायण नागरी और बँगला सुलेखक	दिसबर, १८२४	५०	
ख्यालीराम 'भाखा-मुंशी'	जनवरी, १८२७	५०	

ख्यालीराम पंडित

जुलाई, १८२६ को गंगाप्रसाद 'भाखा'-पंडित अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए छुट्टी लेकर उत्तरी प्रांत (Upper Provinces, जो बाद को उत्तर-पश्चिम प्रदेश कहलाया) गए थे। किंतु कुछ ही महीनों बाद मुर्शिदाबाद में या वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते ही उनका देहांत हो गया। १५ जनवरी, १८२७ को प्राइस ने कॉलज के मत्री, रडैल, को स्थानापन्न 'भाखा'-पंडित की नियुक्ति के लिए लिखा। उसी दिन कौंसिल ने ख्यालीराम को हिंदुस्तानी विभाग में 'भाखा'-पंडित नियुक्त किया।[2]

हिंदी के प्रोफ़ेसर, विलियम प्राइस, का १६ अगस्त, १८२६ वाला पत्र इस प्रकार है :

'मैं सप्ताह में दो दिन हिंदी के प्रोफ़ेसर की हैसियत से कॉलेज में काम करता हूँ। मेरे साथ जो विद्यार्थी हैं वे शेष दिनों में जो कुछ अध्ययन करते हैं उसे इन दो दिनों में मैं उन्हें पढ़ाता और अर्थ समझाता अथवा व्याख्या करता हूँ। उनके अध्ययन के सबंध में

[1] वही, पृ० ४८१-४६२

[2] फ़ो० वि०, ३० जून. १८२७—1, १८२८. हो०. मि०. जि० ११, पृ० ३४, ६० २० वि०

मैं उन्हें और भी उपयोगी बातें बताता हूँ। इन दो दिनों में वे जो पाठाभ्यास लिख कर लाते हैं उन्हें शेष दिनों में पढ़ कर मैं ठीक करता हूँ। हिंदी के प्रोफ़ेसर की हैसियत से मैं विद्यार्थियों की सरकारी तथा निजी तौर से परीक्षाएँ लेता हूँ। फ़ौजी दुभाषियों की परीक्षा भी मैं ही लेता हूँ। कुछ दिनों से मैं बँगला भाषा का स्थानापन्न परीक्षक भी हूँ।

'मेरी अध्यक्षता में इस समय निम्नलिखित देशी अध्यापक हैं :

		मासिक वेतन		
तारिणीचरण मित्र	हिंदी और हिंदुस्तानी विभाग में हेड मुंशी	२००	सि०	रु०
मीर बख्शीश अली	हिंदुस्तानी मुंशी	१००	,,	,,
ख्यालीराम	'भाखा'-पंडित	५०	,,	,,
गदाधर	बंगाली पंडित	१००	,,	,,

'मेरे बँगला भाषा के स्थानापन्न परीक्षक होने के कारण अंतिम पंडित मेरे साथ हैं। ये लोग पाठ्य पुस्तकों के तैयार करने तथा अध्ययन में और अभ्यासों के देखने तथा तैयार करने में मेरी सहायता करते हैं। विद्यार्थियों द्वारा किए गए अनुवाद भी ये ही लोग देखते हैं। 'भाखा'-पंडित विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाने वाले अध्यापकों को हिंदी पढ़ाते हैं।

'ऊपर के मुंशियों में से सबसे पहले बहुत काम के हैं। कॉलेज की स्थापना के समय से वे यहाँ हैं। उनका वेतन कम करने के पक्ष में मैं नहीं हूँ। हाँ, उनके उत्तराधिकारी को सौ रुपए मासिक दिए जा सकते हैं।

'कॉलेज में हिंदुस्तानी के स्थान पर हिंदी हो जाने से बख्शीश अली का लगभग साधारण काम रह गया है। किंतु तारिणीचरण की भाँति वे भी शुरू से ही यहाँ हैं, इसलिए उन्हें निकाल देना या उनका वेतन कम कर देना शायद ही न्याय-संगत हो। उनकी मृत्यु हो जाने अथवा उनके अवकाश ग्रहण कर लेने पर उनका उत्तराधिकारी नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं है।

'भाखा'-पंडित को तो वैसे ही कम वेतन मिल रहा है। उनसे अधिक योग्य व्यक्ति इस पद को न तो ग्रहण ही करेगा और न यहाँ अधिक दिन ठहर ही सकेगा। वर्तमान पंडित के बाद जो पंडित आएँ उन्हें सौ रुपया मासिक वेतन देने की मेरी राय है।

'बंगाली पंडित के विषय में तो कहना ही व्यर्थ है।

'इसलिए हिंदी विभाग में सौ-सौ रुपया मासिक वेतन पर दो मुंशी रक्खे जा सकते हैं, जिससे डेढ़ सौ रुपए मासिक बचेंगे।'[1]

अन्य विभागों के अध्यक्षों ने भी इस प्रकार के विवरण भेजे थे।

बाद को परीक्षा संबंधी व्यवस्था भी यह कर दी गई कि जब विद्यार्थी अपने को योग्य समझे उसी समय उसके कहने से उसकी परीक्षा ली जाय। सरकारी नौकरी की दृष्टि से ही ऐसा किया गया था।

---

[1] फ़ो० वि०, ७ अगस्त १८०५—११ फ़रवरी १८१०, हो०, मि०, जि० ११ पृ० ३६८-४४४, पृ० ३० सि०

२३ फ़रवरी, १८३० को स्थानापन्न सरकारी मन्त्री, एच० एम० पार्कर, ने कौंसिल के सभापति, शेक्सपियर, तथा सदस्यों को एक पत्र लिखते हुए कहा : अर्थ-समिति ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज और फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज कॉलेज में सरकारी खर्च कम करने की दृष्टि से कुछ सुझाव पेश किए हैं। सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने विषय की महत्ता और वर्तमान आर्थिक संकट को सोचते हुए उसे सरकारी हित के लिए आवश्यक समझ कर भविष्य के लिए कॉलेज का परिवर्तित रूप उपस्थित किया है। मुझे आपको यह सूचित करने की आज्ञा मिली है कि सरकार ने प्रोफ़ेसरों के सहायक मुंशियों और पंडितों के साथ-साथ प्रोफ़ेसरों के पद तोड़ देने का निश्चय किया है और भविष्य में कॉलेज की व्यवस्था एक मन्त्री, दो परीक्षकों और विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए मंत्री की अध्यक्षता में पंडितों और मुंशियों की आवश्यक संख्या तक ही सीमित रखने का निश्चय किया है।[1]

प्रधानाध्यापक वाला पद तोड़ने की सरकारी आज्ञा तथा अन्य कमियाँ : पेंशन की व्यवस्था

ऐसा करने में सपरिषद् गवर्नर-जनरल को दुःख अवश्य हुआ था, क्योंकि इस निर्णय से कई पदाधिकारियों को नुक़सान पहुँचता था। किंतु इस आयोजना को व्यवहार में लाने से पूर्व सरकार ने कौंसिल के सभापति और सदस्यों से इस संबंध में परामर्श किया कि चूँकि प्रोफ़ेसर लोग बहुत दिनों से कॉलेज में कार्य कर रहे हैं, इसलिए उन्हें प्रोफ़ेसर के पद पर न रख कर परीक्षक नियुक्त करना कैसा रहेगा। दूसरे शब्दों में, क्या प्रोफ़ेसर और परीक्षकों को एक ही श्रेणी में रखना और क्या अपेक्षाकृत नए पदाधिकारियों को हटा कर केवल पुराने पदाधिकारियों को रखना उचित न होगा। उनके मतानुसार ही सरकार ने उन्हें वेतन देने की बात सोची।

११ मार्च, १८३० को कॉलेज के मन्त्री, रडेल, ने कैरे, प्राइस, आउज़्ले, टॉड, और प्रॉक्टर को उनकी सम्मति माँगने के लिए एक-एक पत्र लिखा। २३ मार्च, १८३० को सरकारी मन्त्री, एच० टी० प्रिंसेप, के नाम लिखे गए पत्र में, विभिन्न पदाधिकारियों के उत्तरों के साथ-साथ, निम्नलिखित परामर्श लिख कर भेजे गए :

'डॉ० कैरे को पेंशन दी जाय—जितनी सरकार चाहे।

'विलियम प्राइस के मेजर हो जाने और अपने सैनिक पद पर चले जाने के समय तक उन्हें अतिरिक्त परीक्षक के रूप में रक्खा जाय।

'कैप्टेन आउज़्ले और लेफ़्टिनेंट टॉड को नियमित रूप से परीक्षक नियुक्त किया जाय। आउज़्ले हिंदी और बँगला का अध्ययन कर रहे हैं।

'प्राइस के चले जाने पर अथवा कोई जगह खाली होने पर रेव० टी० प्रॉक्टर को अतिरिक्त परीक्षक के रूप में रक्खा जाय।

'क्योंकि नई आयोजना के अनुसार परीक्षकों का काम बहुत बढ़ जायगा, इसलिए उनमें से हर एक को एक-एक मौलवी, पंडित या मुंशी दिया जाय। बाक़ी देशी

---

[1]फ़ो० वि०, १८ फरवरी, १८३०—२५ अक्तूबर, १८३१, होम० मि०, जि० ३३, पृ० १६ १७, इं० रे० वि०

अध्यापकों को पेंशन या पुरस्कार देकर, जैसा सरकार उचित समझे, बिदा किया जाय।'[1]

ऊपर विभिन्न पदाधिकारियों के उत्तरों का ज़िक्र आया है। आउज़्ले ने १३ मार्च, १८३०, प्राइस ने २२ मार्च, १८३०, कैरे ने २३ मार्च, १८३०, एच० टॉड ने २२ मार्च, १८३०, टी० प्रॉक्टर ने १८ मार्च, १८३० को अपने अलग-अलग उत्तर कॉलेज के मंत्री के पास भेजे। केवल प्राइस ने प्रोफ़ेसर का पद बनाए रखने के पक्ष में सम्मति दी। वास्तव में अब वे कोई और काम न कर सकते थे। इसलिए उन्होंने अपने बारे में अनुकूल दृष्टि से विचार किए जाने की प्रार्थना की। वे बहुत दिनों से कॉलेज में कार्य कर रहे थे। यदि उन्हें ऐसा मालूम होता तो संभवतः वे कभी कॉलेज में नौकरी करने न आते। कैरे ने अपने पत्र में अधिक दिन जीवित न रहने की आशंका प्रकट की थी। वे उनहत्तर वर्ष के हो चुके थे। इसलिए उन्होंने पूरी तनख़्वाह या पेंशन माँगी। बाक़ी ने परीक्षक नियुक्त होने के लिए अपने-अपने हक़ पेश किए।[2]

रडैल ने समस्त प्रोफ़ेसरों का कार्य, कॉलेज के प्रति की गई उनकी सेवाओं आदि बातों का विवरण कौंसिल के पास भेज दिया। अब स्थायी विभाग के लिए चालीस रुपया मासिक वेतन पर चाहे जितने भारतीय अध्यापक रक्खे जा सकते थे, शर्त केवल यही थी कि नियुक्त किए गए अध्यापक को कई भाषाएँ जानना चाहिए। अरबी, फ़ारसी, हिंदुस्तानी, और हिंदी पढ़ाने के लिए मुसलमान और बँगला, संस्कृत, हिंदी और यहाँ तक कि हिंदुस्तानी भी पढ़ाने के लिए हिंदू मिल सकते थे। कॉलेज में इस समय भारतीय अध्यापकों की संख्या इस प्रकार थी :

फ़ारसी—६

हिंदी—मुर्तज़ा ख़ाँ, भोला बख़्श, दलालुद्दीन, मीर तसद्दुक़ हुसैन, मुहम्मद वसी, वाजिबुद्दीन, और फ़ख़ुज़्ज़मन।

बँगला—४

कौंसिल मंत्री के २३ मार्च, १८३० के पत्रोत्तर में सरकारी मंत्री, एच० टी० प्रिंसेप, ने १३ अप्रैल, १८३० को एक पत्र लिखते हुए यह पूछा कि अंतिम निर्णय करने से पूर्व सरकार यह जानना चाहती है कि मुंशियों तथा पंडितों और बँगला तथा संस्कृत के प्रोफ़ेसरों को कितनी-कितनी पेंशन मिलनी चाहिए और क्या कौंसिल तीसरा परीक्षक वर्तमान वेतन पर ही रखना चाहती है। साथ ही सरकार ने कौंसिल से बचत का विवरण माँगा, क्योंकि अर्थ समिति की गणना के अनुसार बचत अधिक हो सकती थी। २६ अप्रैल, १८३० को रडैल ने, संक्षेप में, इस प्रकार उत्तर दिया :

---

[1]वही, पृ० १८-२०

[2]वही, पृ० २०।१२

कैरे—५०० रु० मा० पेंशन
प्राइस को अस्थायी रूप से ५०० रु० मा० दिया जाय
तारिणीचरण—१०० रु० मा० पेंशन
पेंशनों के लिए स्वीकृत धन १०६३. ५. ० (भारतीय पदाधिकारियों को ५६३. ५. ०)
कौंसिल के अनुसार बचत— २२२२ रु० मा०
अर्थ समिति के अनुसार बचत १७८१ ,, ,,
अंतर १५६३ ,, ,,

समिति के मतानुसार दो परीक्षक रखना अनिवार्य था। इधर कुछ दिनों मे खर्च कुछ और कम हो रहा था। 'भाखा' या हिंदी-पंडित के स्थान पर कोई नया व्यक्ति नियुक्त नहीं हुआ था जिससे पचास रुपए मासिक की बचत होती थी। इसी प्रकार कुछ और बातों में भी बचत हो जाती थी। कुल मिला कर तीन सौ पचीस रुपए मासिक, अथवा, कौंसिल के अनुसार तीन हजार नौ सौ रुपए वार्षिक की बचत और होती थी। रडैल ने मौलवियों, मुंशियों और पंडितों को दी जाने वाली पेंशन का हवाला भी दिया।[1]

अन्त में सरकारी मंत्री, प्रिंसेप, ने ४ मई, १८३० को एक पत्र लिखा जिसके साथ उन्होंने सामान्य (General) विभाग के उसी तिथि के सरकारी प्रस्तावों की प्रति कौंसिल के पास भेजी और परिवर्तित आयोजना के अनुसार व्यवस्था निश्चित करने का आदेश दिया।[2] सरकारी प्रस्ताव निम्नलिखित है :

सामान्य (General) विभाग, ४ मई, १८३०

'प्रस्ताव—

'सपरिषद् गवर्नर-जनरल यह निश्चित करते हैं कि अगले महीने की १ तारीख से फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के तीनों प्रोफ़ेसर पद तोड़ दिए जायँ और विद्यार्थियों के लिए निर्धारित व्याख्यान बंद कर दिए जायँ।

'निश्चित हुआ कि उसी तारीख से डॉ० कैरे को पाँच सौ रुपया मासिक पेंशन सरकारी खज़ाने से दी जाय।

'निश्चित हुआ कि कॉलेज में तीसरा परीक्षक पाँच सौ रुपया मासिक वेतन पर नियुक्त किया जाय और निम्नलिखित तीन परीक्षक हों :

'कैप्टेन प्राइस, लेफ़्टिनेंट आउज़्ले और लेफ़्टिनेंट टॉड।

'निश्चित हुआ कि प्रोफ़ेसरों के साथ काम करने वाले निम्नलिखित देशी अध्यापक अलग कर दिए जायँ और ऊपर वाली तारीख से ही उनके नाम के आगे लिखी हुई पेंशन दी जाय

फ़ारसी विभाग

करम हुसैन	१००	रु० मा०	
अब्दुर्रहीम	३३. ५. ०	,, ,,	
नज़रुल्लाह	५०	,, ,,	
बदर अली	४०	,, ,,	२२३. ५. ०

[1] वही, पृ० ३०-३६
[2] वही, पृ० ४२

हिंदी विभाग

तारिणीचरण	१००	रु०	मा०	
मीर बख़शीश अली	५०	,,	,,	
मुर्तुज़ा ख़ाँ	४०	,,		१९०'०'०

बंगला विभाग

रामकुमार	१००	रु०	मा०	
गदाधर	५०	,,	,,	१५०'०'०
				५६३'५ ०

'आज्ञा दी गई कि इस प्रस्ताव की प्रति कौंसिल के पास सूचनार्थ और मार्ग-प्रदर्शन के लिए भेज दी जाय और कौंसिल को यह आदेश दिया जाय कि वह नई आयोजना के अंतर्गत परिवर्तित परिस्थिति के अनुसार समुचित प्रबंध करे और पेंशन वाले लोगों की हुलिया का विवरण सरकार के पास भेजे।

'आज्ञा दी गई कि उप-कोषाध्यक्ष और हिसाब-निरीक्षक के पास आवश्यक सूचना भेजी जाय।

'आज्ञा दी गई कि कॉलेज कौंसिल के मंत्री के पत्र और इस प्रस्ताव की प्रतियाँ प्रादेशिक अर्थ-विभाग के पास सूचनार्थ भेजे दी जायँ।'[1]

१६ मई, १८३० को रडैल ने कैरे, आउज़्ले, प्राइस, टॉड और प्रॉक्टर को यथाविधि सूचित कर दिया।[2] सरकारी प्रस्ताव के संबंध मे केवल प्राइस को आपत्ति थी। अपने २२ मार्च, १८३० के पत्र का हवाला देते हुए उन्होंने २० मई, १८३० को रडैल के नाम एक पत्र लिखा। चूँकि कैरे के बाद वे कालेज के सबसे पुराने कर्मचारी थे, इसलिए वे प्रोफ़ेसर का वेतन चाहते थे। उस पत्र में उन्होंने परीक्षकों के साथ भारतीय अध्यापक रखने का विचार प्रकट किया था। सरकारी प्रस्ताव में इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया था, इस बात पर उन्हें अत्यन्त आश्चर्य था। भारतीय अध्यापकों की सहायता न मिलने पर परीक्षकों का वेतन चार सौ रुपए मासिक ही ठहरता था, जो उनके लिए पूरा हर्जाना नहीं था। किंतु रडैल के २१ मई, १८३० के पत्रानुसार सपरिषद् गवर्नर-जनरल के निर्णय के विरुद्ध प्राइस का पत्र भेजना शिष्ट व्यवहार नहीं था। इसलिए कौंसिल ने उनका पत्र वहीं रोक दिया।[3]

इसके बाद रडैल ने पेंशन पाने वाले भारतीय अध्यापको की हुलिया का विवरण, प्रोफ़ेसरों द्वारा मँगा कर ऐकाउटैंट-जनरल, सी० मॉर्ले, और उप-कोषाध्यक्ष, जे० आर० बार्वेल, के पास भेजा। प्राइस ने अपने विभाग के अध्यापको का विवरण इस प्रकार भेजा था :

---

[1] वही, पृ० ३३-३४
[2] वही, पृ० ३४
[3] वही, पृ० ३४ ३६

'तारिणीचरण मित्र—सौ रुपया पेंशन, अट्ठावन वर्ष की अवस्था, छोटा क़द, दूर की चीज़ नहीं देख सकते, थोड़ा झुक कर चलते हैं, ऊपर के ओंठ पर एक तिल है।

'मीर बख़शीश अली—पचास रुपया पेंशन, अड़तालीस वर्ष की अवस्था, बीच का क़द, रंग कुछ गोरा, दाएँ गाल पर एक चेचक का सा दाग़ है।

'मुर्तज़ा खाँ—चालीस रुपया पेंशन, लगभग पैंसठ वर्ष की अवस्था, दूर की चीज़ नहीं देख सकते, रंग कुछ गोरा, मोटी और तोतली आवाज़, लंबे और हृष्ट-पुष्ट हैं।'

२४ मई, १८३० को रडैल ने सरकारी आज्ञा-पालन करने की सूचना एच० टी० प्रिंसेप को दी। कुछ अध्यापक कलकत्ते से बाहर के रहने वाले थे, इसलिए उन्हें उनके स्थानों पर ही पेंशन मिलने के प्रबंध की सूचना भी सरकारी मंत्री को दे दी गई। साथ ही उन जगहों के कलक्टरों, ख़ज़ानों आदि को भी आवश्यक सूचनाएँ भेज दी गई।[1]

नई व्यवस्था के अनुसार पंद्रह दिन में से एक दिन सब विद्यार्थी अपने-अपने परीक्षकों के पास इकट्ठे होकर मौखिक और लिखित अभ्यास करते थे। परीक्षक वहाँ उनके लिखित अभ्यासों की ग़लतियाँ ठीक करते थे। नियतकालिक परीक्षाओं की रिपोर्ट देना परीक्षकों का कर्त्तव्य था। अपने-अपने अध्यापक रखने के लिए विद्यार्थियों को जो भत्ता मिलता था वह बंद कर दिया गया। बारह महीने की अवधि उन विद्यार्थियों के लिए थी जो हर्टफ़र्ड (हेलीबरी) कॉलेज में पढ़ कर आते थे। अठारह महीने की अवधि उन विद्यार्थियों के लिए थी जो वहाँ शिक्षा प्राप्त न कर सके थे।[2] विद्यार्थियों की सहायता के लिए तीस रुपए मासिक पर कुछ सर्टिफ़िकेट मुंशी अवश्य रक्खे गए। जो विद्यार्थी बारह महीने में सफलता प्राप्त नहीं कर पाता था उसे कोर्ट की आज्ञानुसार तीन महीने और दिए जाते थे। यदि तब भी वह सफल नहीं होता था तो उसे सरकारी नौकरी के अयोग्य समझ कर इँगलैंड वापस भेज दिया जाता था।[3] इधर कुछ दिनों से लेफ़्टिनेंट टॉड कॉलेज के स्थानापन्न मंत्री थे।

ख्यालीराम हिंदी-पंडित को उनके असंगत व्यवहार पर कॉलेज से निकाल दिया गया था और सितंबर, १८२६ से हिंदी-पंडित की जगह ख़ाली पड़ी हुई थी। इसी समय

ब्रह्म सच्चिदानंद

पश्चिमी प्रांतों के ब्रह्म सच्चिदानंद कॉलेज की ख्याति सुनकर कलकत्ते आए। वे संस्कृत और हिंदी में पूर्ण दक्ष थे। पाणिनि के व्याकरण, विभिन्न भाष्यों सहित वेदांत, धर्मशास्त्र, साहित्य, पुराण, न्याय, मीमांसा आदि के वे पंडित थे। उन्होंने कलकत्ते आकर कैप्टेन रडैल के पास अपना प्रार्थना-पत्र भेजा। ब्रह्म सच्चिदानंद को स्थायी विभाग में नियुक्त करने की सिफ़ारिश करते हुए रडैल ने स्थानापन्न सरकारी मंत्री, जे० बुशबाई, को एक पत्र लिखा। रडैल के सिफ़ारिश करने

[1] वही, पृ० ८७-९२

[2] वही, पृ० १४५-१६१

[3] वही स्थानापन्न सरकारी मंत्री जे० पी० बुशबाई का स्थानापन्न कॉलेज मंत्री, लेफ़्टिनेंट टॉड, के नाम पत्र, १ मार्च, १८३१ पृ० ४६१-४६४

का कारण यह था कि सरकार स्थायी विभाग के लिए चालीस रुपए मासिक और अस्थायी विभाग के लिए तीस रुपए मासिक की व्यवस्था कर चुकी थी। १८३० में अर्थ-समिति के दृष्टिकोण से जो कमियाँ की गई थीं, वे केवल चालीस रुपए मासिक से अधिक वेतन पाने वाले लोगों के संबंध में थीं। उसके बाद केवल पाँच मुंशी और एक सुलेखक फ़ारसी, छः मुंशी हिंदी और हिंदुस्तानी, और चार पंडित बँगला और एक सुलेखक हिंदी और बँगला के स्थायी विभागों में रह गए थे। उन्हें हटाने के लिए सरकार ने कोई आज्ञा नहीं दी थी। उनकी संख्या सुयोग्य व्यक्ति न मिलने के कारण ही कम थी। जब से हिंदुस्तानी के स्थान पर हिंदी का अध्ययन जारी हुआ था, तब से अरबी, फ़ारसी, हिंदी और हिंदुस्तानी में अपनी योग्यता सिद्ध करने वाले मुंशियों और बँगला, संस्कृत, हिंदी और हिंदुस्तानी में अपनी योग्यता सिद्ध करने वाले पंडितों को ही तरक़्क़ी मिलती थी। उस समय कटक के स्टॉकवेल को हिंदी पढ़ाने के लिए केवल एक पंडित राममोहन तर्कवागीश थे। शेष देशी अध्यापकों में हिंदी जानने वाले बहुत कम थे। रडैल के मतानुसार उन्हें हिंदी सीख लेनी चाहिए थी। संस्कृत की परंपरा में होने तथा अन्य कारणों से मुंशियों को हिंदी सीखने में कठिनाई पड़ती थी। किंतु जब यूरोपियन लोग हिंदी सीख सकते थे, तो देशी मुसलमान तो उसे और भी आसानी से सीख सकते थे। प्रोत्साहन और सहायता मिलने पर वे भी अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकते थे। बहुत कम मुंशी हिंदी की पाठ्य-पुस्तकें अच्छी तरह पढ़ कर उन्हें समझ सकने की क्षमता रखते थे। अँगरेज़ी से हिंदी में अनुवाद कराने वाला भी कोई सुयोग्य व्यक्ति नहीं था। विद्यार्थी बहुत थोड़े काल तक कॉलेज में रहते थे। उस थोड़े काल में उन्हें सब प्रकार की सुविधाएँ देने का प्रयत्न किया जाता था। यूरोपियन प्रोफ़ेसरों के पढ़ाने से कोई लाभ नहीं होता था। इसलिए असाधारण योग्यता के भारतीय अध्यापकों का रहना अनिवार्य था। कई भाषाओं का अध्ययन सदैव उपयोगी सिद्ध होता है। भारतीय अध्यापकों को सुयोग्य बनने के लिए प्रोत्साहन की आवश्यकता थी। रडैल का विचार था कि फ़ारसी, नागरी और बँगला के दो सुलेखकों और हिंदी-पंडित के अतिरिक्त फ़ारसी के स्थायी विभाग में छः मुंशी होने चाहिए और उतने ही हिंदी तथा हिंदुस्तानी और बँगला विभागों में। फ़ारसी और हिंदी के अध्यापकों में समान योग्यता का होना आवश्यक था। अतएव होशियारी के साथ अध्यापक चुनने से ही आयोजना उपयोगी सिद्ध हो सकती थी। उस समय केवल मुंशी अब्दुल्ला ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो अरबी, फ़ारसी, हिंदी और हिंदुस्तानी में कभी-कभी शिक्षा देते थे। रडैल ने उन्हें चालीस रुपए मासिक पर स्थायी विभाग में रखने की सिफ़ारिश की थी। परीक्षकों और मंत्री की सहायता के लिए भी भारतीय अध्यापकों का रहना आवश्यक था। फ़ारसी, अरबी और हिंदुस्तानी के लिए मौलवी काज़िम अली सहायक थे। बँगला, संस्कृत और हिंदी के लिए उस समय कोई नहीं था। वास्तव में हिंदी पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए उस समय कोई समुचित प्रबंध नहीं था। इसलिए, रडैल के मतानुसार, ब्रह्म सच्चिदानंद से अधिक उपयुक्त और कोई नहीं मिल सकता था। संस्कृत और हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की अशुद्धियाँ ठीक करने वाला व्यक्ति भी कोई नहीं था। इस कार्य के लिए ब्रह्म सच्चिदानंद उपयुक्त व्यक्ति सि

हो सकते थे। मुंशी लोग भी ऐसे विद्वान् से हिंदी सीख सकते थे, क्योंकि वे संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाएँ जानते थे। इन सब बातों को सोचते हुए रडैल ने उन्हें पूर्ववर्ती पंडितों और फ़ारसी, बँगला और नागरी के सुलेखकों की भाँति पचास रुपया मासिक वेतन पर रखने की सिफ़ारिश की। पाठ्य-क्रम के संबंध में भी रडैल का अपना मत था; वे कुछ भिन्न प्रकार की पुस्तकें चाहते थे। वे प्रत्येक पाठ्य-पुस्तक के साथ व्याकरण के नियमों को स्पष्ट करने वाले यथेष्ट अभ्यासों के साथ सरल और संक्षिप्त व्याकरण रखना पसंद करते थे। फ़ारसी-पाठ्य पुस्तकों में 'गुलिस्ताँ', 'अनवर-सुहेली' आदि से अवतरण, हिंदी-पाठ्य-पुस्तकों में 'ख़िर्द अफ़रोज', 'बाग़ो बहार' आदि से हिंदुस्तानी अवतरणों का ब्रह्म सच्चिदानंद की सहायता से हिंदी-अनुवाद, 'प्रेमसागर' का कुछ अंश और फ़ारसी की भाँति ग्रंथ पूरा करने के लिए उसके साथ व्याकरण के यथेष्ट नियम, रूप, उदाहरण आदि, और बँगला-पाठ्य-पुस्तकों के लिए इतिहास, पचीसी, हितोपदेश आदि से अवतरण रखना रडैल विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी समझते थे। प्रत्येक पुस्तक की उन्होंने लगभग पाँच सौ चौपेजी पृष्ठ-संख्या ठीक समझी। इन सब बातों के साथ-साथ जून, १८३० में जितने अध्यापक थे उन सब का विवरण भी रडैल ने सरकार के पास भेजा दिया था। वह विवरण इस प्रकार है :—

फ़ारसी विभाग

नाम	वेतन	
कुर्बान अली	रु० ४०	कॉलेज में हैं।
हिशामुद्दीन	,, ४०	१२ अप्रैल, १८३१ को मृत्यु। कोई अन्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हुआ।
मीर सैयद अली	,, ४०	कॉलेज में हैं।
अब्दुल अहद	,, ४०	१ दिसंबर, १८३१ को त्याग-पत्र। कोई अन्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हुआ।
ग़ुलाम फ़रीद	,, ४०	कॉलेज में हैं।
मुहम्मद ताहा—सुलेखक	,, ५०	,,

हिंदी विभाग

नाम	वेतन	
मौला बख़्श	रु० ४०	कॉलेज में हैं।
दलीलुद्दीन	,, ४०	,,
मीर तसद्दुक़ हुसैन	,, ४०	१२ दिसंबर, १८३१ को त्याग-पत्र।
मुहम्मद बख़्श	,, ४०	२८ अक्तूबर, १८३० को त्यागपत्र। कोई अन्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हुआ।
वाजिबुद्दीन	,, ४०	कॉलेज में हैं।
फ़ख़रुज़्ज़मन	,, ४०	,,
गंगा नारायण नागरी और बँगला सुलेखक	,, ५०	,,

बँगला विभाग

ब्रह्मलोचन	रु० ४०	कॉलेज में हैं।
नरोत्तम बोस	,, ४०	,,
रामचंद्र रॉय	,, ४०	,,
राम मोहन	,, ४०	२६ सितंबर, १८३१ को त्याग-पत्र। कोई अन्य व्यक्ति नियुक्त नहीं हुआ।

रडैल की इन सब बातों का उत्तर स्थानापन्न सरकारी मंत्री, जी० ए० बुशबाई, ने २० दिसंबर, १८३१ के पत्र में दिया। १ जनवरी, १८३२ से ब्रह्म सच्चिदानंद की नियुक्ति स्वीकृत हुई। साथ ही कॉलेज के स्थायी विभाग में प्रत्येक को चालीस रुपए मासिक वेतन के आधार पर एक फ़ारसी मुंशी और दो बंगाली पंडित रखने की अनुमति भी कॉलेज मंत्री को प्राप्त हुई। इससे पिछले हिसाब में एक सौ बीस रुपए मासिक और बढ़े। संक्षेप में, सरकार ने निम्नलिखित व्यवस्था रक्खी :

विभिन्न विभागों की नई व्यवस्था

		मासिक
१ हिंदी-पंडित	५० रुपया वेतन पर	रु० ५०
६ फ़ारसी मुंशी, प्रत्येक को	४० रुपया	रु० २४०
१ फ़ारसी सुलेखक	५० रुपया वेतन पर	रु० ५०
६ हिंदी-हिंदुस्तानी मुंशी, प्रत्येक को	४० रुपया	रु० २४०
६ बंगाली पंडित, प्रत्येक को	४० रुपया	रु० २४०
१ नागरी और बँगला सुलेखक	५० रुपया वेतन पर	रु० ५०
		सि० रु० ८७० मासिक

१ जनवरी, १८३३ से अब्दुल्ला की नियुक्ति भी सरकार ने स्वीकार की। रडैल के अन्य विचारों से भी सरकार पूर्णतः सहमत थी।[1]

रडैल ११ जनवरी, १८३२ को त्याग पत्र देकर यूरोप चले गए। १ जनवरी, १८३२ से उनके स्थान पर लेफ़्टिनेंट टॉड की नियुक्ति हुई।[2] किंतु २० मार्च, १८३२ की रात को टॉड की अचानक मृत्यु हो जाने से आउज़्ले कॉलेज के एवज़ी मंत्री नियुक्त हुए। १७ अप्रैल, १८३२ को वे स्थायी बना दिए गए। एक सप्ताह बाद वे एवज़ी परीक्षक भी नियुक्त हुए।[3]

---

[1] फ़ो० वि०, २६ अक्तूबर, १८३१—१६ अगस्त, १८३३, हो०, मि०, जि० १४, पृ० ४१-५०, इं० रे० डि०

[2] वही, पृ० ५३-५४

[3] वही, पृ० १८८ १९०

तारिणीचरण मित्र किसी आवश्यक कार्य से बनारस जाने . . . इसीलिए उन्होंने वहां पेंशन पाने की प्रार्थना की। आउज़्ले ने उनका प्रार्थना-पत्र सरकार के पास भेज दिया। १७ अप्रैल, १८३२ के सरकारी पत्रानुसार उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। आउज़्ले ने उनके बारे में सभी आवश्यक बातों की सूचना बनारस के कलक्टर के पास भेज दी। तारिणीचरण उस समय साठ वर्ष के थे। उसी समय कैप्टेन जी० टी० मार्शल स्थानापन्न परीक्षक नियुक्त हुए। आवश्यकता पड़ने पर आउज़्ले की सहायता भी ली जा सकती थी।[1]

विलियम प्राइस ने कॉलिज के पाठ्य-क्रम में हिंदी को स्थान दिलाने का प्रयत्न तो किया, किंतु जहाँ तक नवीन गद्य-ग्रंथों की रचना अथवा धार्मिक एवं विशुद्ध साहित्यिक ग्रंथों के अतिरिक्त वैज्ञानिक अथवा अन्य आधुनिक विषय-संबंधी ग्रंथों की रचना से संबंध है, वे कोई महत्वपूर्ण कार्य न कर सके। हिंदी के पठन-पाठन के लिए जिस प्रकार के अध्यापकों तथा अन्य साधनों का आश्रय लिया गया वह, वास्तव में, हिंदी गद्य की उन्नति एवं विकास में कभी भी सहायक सिद्ध नहीं हो सकता था। यही कारण है कि वे गिलक्राइस्ट के तत्वावधान में रचे गए ग्रंथों पर ही निर्भर रहे। जो कार्य स्वयं गिलक्राइस्ट ने उर्दू या हिंदुस्तानी गद्य के लिए किया, या जो कार्य डॉ० विलियम कैरे तथा उनके सहयोगियों ने बँगला गद्य के लिए किया, वह कार्य हिंदी के लिए न तो विलियम प्राइस और न उनके पूर्ववर्ती प्रधानाध्यापक कर सके। प्राइस के समय में ही जनवरी, १८२५ में नागरी सुलेखक महानंद पंडित (मृत्यु १७ जून, १८२५) को सत्तर वर्ष की अवस्था में, लिखने-पढ़ने योग्य न रह जाने के कारण, पच्चीस रुपए मासिक पेंशन की सरकारी स्वीकृति मिली थी। उनके बाद कुछ दिन तक तो नागरी सुलेखक का पद खाली पड़ा रहा। फिर फ़ारसी सुलेखक और अंत में बंगला सुलेखक (गंगा नारायण ७ दिसंबर, १८२५ को नियुक्त हुए थे) ही नागरी सुलेखक का कार्य करते रहे। 'भाखा' या हिंदी-पंडित की नियुक्ति के संबंध में ही काफ़ी अनिश्चितता रहती थी। हिंदी-पंडित आज है तो कल नहीं है। और जब नहीं है तो एक अनिश्चित समय के लिए नहीं है। जब हिंदी-पंडित के बिना काम ही चलता दिखाई नहीं पड़ता था तभी उसके लिए पदाधिकारी माँग करते थे। हिंदुस्तानी या उर्दू के ज्ञान के लिए उसके आधार हिंदी के ज्ञान की अवहेलना करना कोई सरल कार्य न था। स्वयं लल्लू लाल और उनके अधिकतर ग्रंथों की रचना इसीलिए हुई थी। गिलक्राइस्ट ने बिना इस आधार के कठिनाई का अनुभव किया था। उनके बाद के प्रधानाध्यापक अपने पिछले ग्रंथों की सहायता पर निर्भर रहना चाहते थे। परंतु विदेशियों का इतने ही से काम नहीं चल सकता था। उन्हें हिंदी भाषा के किसी जानकार की आवश्यकता पड़ना अनिवार्य था। यही कारण है कि थोड़े दिन बिना हिंदी अध्यापक के कार्य चलने के बाद उन्हें उसकी आवश्यकता पड़ती थी। किंतु ग्रंथ सब वही पुराने रहते थे। इन सब बातों के

प्राइस के समय में नवीन महत्वपूर्ण ग्रंथ-रचना का अभाव

---

[1] वही पृ० १०० १०२

देखते हुए हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि क्या प्राइस और क्या किसी अन्य प्रधानाध्यापक के हाथों हिंदी गद्य का कोई हित साधन न हो सका। वास्तव में हिंदी गद्य तो फ़ोर्ट विलियम कॉलेज से बाहर नवयुगीन परिस्थितियों के प्रभावांतर्गत स्वतंत्र रूप विकसित हो रहा था।

कलकत्ते से बाहर भी यदि हिंदी ग्रंथों की आवश्यकता होती थी तो लल्लूलाल के ग्रंथ ही भेज दिए जाते थे। सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' का सिवाय एक सूची के और कहीं उल्लेख ही नहीं मिलता। न तो कॉलेज के पाठ्य-क्रम में उसका ज़िक्र है और न कहीं बाहर भेजी जाने वाली पुस्तकों में। जून, १८२५ में आगरा और दिल्ली की सरकारी पाठशालाओं को भेजी जाने वाली पुस्तकों में 'प्रेमसागर', 'बैताल पचीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'माधोनल' आदि पुस्तकों के नाम तो हैं, किंतु 'नासिकेतोपाख्यान' का कहीं नाम नहीं है। बाद को और भी कई बार पुस्तकें बंबई और मद्रास की संस्थाओं को भेजी गईं। 'नासिकेतोपाख्यान' को यह सौभाग्य कभी प्राप्त न हुआ। कॉलेज तोड़ देने के बाद बोर्ड ऑव ऐग्ज़ामिनर्स ने जो पाठ्य-क्रम प्रस्तुत किया (जिसका उल्लेख आगे किया जायगा) उसमें भी 'नासिकेतोपाख्यान' को कोई स्थान न मिला। हाँ, फ़ोर्ट विलियम कॉलेज और उसकी स्थापना से पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के विज्ञापन-विभाग ने नागरी टाइपों का निर्माण किया, विराम-चिन्हों का प्रयोग किया और कोष तथा अनेक पुस्तकें छापेख़ाने में छाप कर प्रस्तुत कीं, और इस प्रकार, अप्रत्यक्ष रूप से, प्रेस जैसे वैज्ञानिक साधन का गद्य के साथ संबंध स्थापित कर, उन्होंने उसके विकास का एक प्रमुख कारण ला उपस्थित किया और हिंदुस्तानी भाषा का व्याकरण निर्मित किया, वह भी अंगरेज़ी व्याकरण के अनुकरण पर। इस सब के लिए हिंदी-भाषा-भाषी उनके आभारी रहेंगे। तुलसीदास जी के ग्रंथ भी संभवतः सबसे पहले फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के संरक्षण में ही मुद्रित हुए थे।

'प्रेमसागर, शब्दावली सहित'

प्राइस के समय में उन्हीं के द्वारा रचित 'प्रेमसागर, उसकी शब्दावली सहित' सेंट ऐंड्रूज़ लाइब्रेरी में बिक्री के लिए रक्खी गई थी। इस संबंध में २४ मई, १८२५ को विज्ञापन प्रकाशित हुआ था। उसका मूल्य बीस रुपया फ़ी प्रति था। अलग-अलग रचनाओं का मूल्य क्रमशः बारह और आठ था। १८२५ में ही देवनागरी वर्णमाला की पचास मुद्रित प्रतियाँ कौंसिल के पास भेजी गई थीं। ४ मार्च, १८२६ को तारिणीचरण मित्र से स्वीकृत किए गए ग्रंथ शीघ्र ही प्रकाशित करने के लिए कहा गया। १८२६ में कैप्टेन

गंगाप्रसाद शुक्ल कृत 'हिंदी ऐंड इँगलिश डिक्शनरी'

पीयर्स (मुद्रक और प्रकाशक) ने 'भाखा'-पंडित गंगाप्रसाद शुक्ल द्वारा संपादित 'हिंदी ऐंड इँगलिश डिक्शनरी' प्रकाशित करने की आज्ञा प्राइस से माँगी। प्राइस ने इस आयोजना की अत्यंत सराहना की। स्वयं उन्होंने 'प्रेमसागर' की शब्दावली का संपादन किया था और वह प्रकाशित हो भी चुकी थी। हिंदी का ऐसा और कोई ग्रं[illegible] प्रकाशित न हुआ था। किंतु विद्यार्थियों और देशी फ़ौज के अँगरेज़ अफ़सरों को ऐसे ग्रं[illegible] की [illegible] थी पीयर्स के प्रस्ताव के संबंध में कौंसिल के मंत्री, रडैल, ने सरकारी मंत्री

लशिंगटन, को लिखते हुए बारह रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से डेढ़ सौ प्रतियाँ लेने की सिफ़ारिश की।[1] अफ़सरों में बाँटने के विचार से ही उन्होंने इतनी प्रतियाँ लेना चाहा था। गंगाप्रसाद के इस कोष को 'हिंदुई डिक्शनरी' भी कहा गया है। प्राइस के निरीक्षण कर लेने के बाद प्रस्तावित कोष के लिए सरकारी स्वीकृति मिल गई और तारिणीचरण मित्र को भी अपने ग्रंथ में पचास पृष्ठ बढ़ाने की आज्ञा मिली।

लल्लूलाल कृत 'राजनीति' के अप्राप्य हो जाने के कारण प्राइस उसे ऐज्यूकेशन प्रेस में, अँगरेज़ी कागज़ पर और अँगरेज़ी विराम-चिन्हों के साथ, प्रकाशित करना चाहते थे। ११ सितंबर, १८२६ को उन्होंने रडैल मन्त्री के पास पत्र भेजा और ढाई रुपया फ़ी प्रति के हिसाब से कॉलेज की सौ प्रतियों का मूल्य ढाई सौ रक्खा। उन्होंने 'हिंदुस्तानी बोली' ('Hindustanie dialect') में रचित 'राजनीति' को अँगरेज़ों के भारतीय साम्राज्य के लिए अत्यंत उपयोगी बताया है। कौंसिल ने सरकारी मन्त्री, लशिंगटन, को लिख कर सरकारी स्वीकृति प्राप्त की और तदनुसार प्राइस को सूचना भेज दी।[2]

लल्लूलाल कृत 'राजनीति' का नया संस्करण तथा अन्य रचनाएँ

१८२६ (संभवतः अक्तूबर या नवंबर) में नागरी में संसार का गोलाकार नक़्शा भी बनाया गया था।

७ मार्च, १८२७ को 'राजनीति' के द्वितीय संस्करण की सौ प्रतियाँ और तारिणी चरण मित्र कृत 'हिंदी-हिंदुस्तानी-संग्रह' की प्रतियाँ छप कर कॉलेज की लाइब्रेरी में आईं।

जुलाई, १८२७ में पीयर्स ने रेव० डब्ल्यू० येट्स कृत 'ऐन इंट्रोडक्शन टु दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज' के लिए कौंसिल से आर्थिक सहायता चाही। १३ जुलाई, १८२७ को रडैल ने सरकारी मन्त्री, लशिंगटन, को लिखते हुए कहा था :

'जूनियर सिविल कर्मचारियों के लिए हिंदुस्तानी भाषा का अध्ययन कॉलेज के पाठ्य-क्रम का भाग मात्र रह जाने के कारण इस संबंध में एक और रचना खरीद कर कॉलेज की लाइब्रेरी में रखना अनावश्यक प्रतीत होता हो, किंतु क्योंकि इसके प्रधान सिद्धांत हिंदी बोली से ही निकले हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि वे समान रूप से दोनों पर लागू हो सकते हैं, कम-से-कम जो बोलचाल में प्रयुक्त होती हैं और जिसका प्रयोग कंपनी की हिंदू या मुसलमान प्रजा भारत के लगभग प्रत्येक भाग में करती है, और फलतः एक का अध्ययन बहुत कुछ दूसरे के अध्ययन में सहायक होगा।'[3]

---

[1] पीयर्स का पत्र प्राइस के नाम २९ मई, १८२६। प्राइस का पत्र रडैल के नाम १० जून, १८२६, और १४ जून, १८२६।

[2] प्रो० वि०, १९ जनवरी, १८२५ -२६ दिसंबर, १८२६, हो०, मि०, जि० १०, पृ० ४४३-४४४, इं० रे० वि०

[3] प्रो० वि०, ३० जून, १८२७ -?, १८२८, हो०, मि०, जि०, ११, पृ० २२७ २२८, इं० रे० वि०

सात रुपया फी प्रति के हिसाब से इस ग्रंथ की दो सौ प्रतियां कौंसिल द्वारा स्वीकृत हुईं।[1]

कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी के एवजी मंत्री, डब्लयू० एच० पीयर्स, ने रडेल के नाम एक पत्र लिखा कि सोसायटी हिंदुस्तानी तथा अन्य बोलियों में कुछ पाठ्य-पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए उपयुक्त पुस्तकों के नाम जानना चाहती है। ५ फ़रवरी, १८२८ के पत्र में रडेल ने 'प्रेमसागर', 'हिंदुस्तानी सेलक्शन्स' २ जिल्द, 'नागरी वर्णमाला', 'सभा विलास', 'राजनीति' इत्यादि के नाम उन्हें बताए।[2] अतः २५ अक्तूबर, १८२४ और ४ फ़रवरी, १८२८ के बीच हिंदी-हिंदुस्तानी की निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुईं:

१. प्रेमसागर और उसका शब्दकोष

२. नागरी वर्णमाला

३. हिंदुस्तानी सेलक्शन्स (तारिणीचरण द्वारा संपादित), २ जिल्द

४. येट्स कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर'[3]

२२ सितंबर, १८२८ को प्राइस ने मंत्री, रडेल, को लिखा कि सभा विलास' की जो प्रतियाँ पुस्तकालय में शेष रह गई हैं उनसे अब काम नहीं निकलता। इसलिए अब वे उसका संशोधित संस्करण प्रकाशित करना चाहते थे। किंतु क्योंकि पुस्तकालय में बाईस प्रतियाँ थीं, इसलिए रडेल ने २६ सितंबर, १८२८ को सौ प्रतियों के स्थान पर दो रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से केवल ५० प्रतियों के लिए लिखने की इच्छा प्रकट की।[4]

'सभा विलास' का नया संस्करण

× × ×

अंत में, कैप्टेन (अब मेजर, तीसवीं रेजीमेंट, नेटिव इन्फ़ैंट्री) विलियम प्राइस ने यूरोप जाने की सोची। कॉलेज में नौकरी करते हुए उन्हें अठारह वर्ष से अधिक हो गए थे। संस्कृत, बँगला और हिंदुस्तानी के सहायक प्रोफ़ेसर की हैसियत से अक्तूबर, १८१३ में उनकी नियुक्ति हुई थी। अप्रैल, १८२१ में फ़ारसी तथा अन्य भाषाओं के परीक्षक और नवंबर, १८२३ में हिंदी-हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए थे। कॉलेज के पदाधिकारी तथा सरकार उनके कार्य से संतुष्ट थी। २१ दिसंबर, १८३१ को उन्होंने रडेल से सरकारी प्रमाण-पत्र (सर्टिफ़िकेट) माँगा। रडेल ने उनका पत्र उसी दिन स्थानापन्न

प्राइस का अवकाश-ग्रहण

---

[1] पीयर्स का पत्र रडेल के नाम ३ जुलाई १८२७। वाशिंगटन का पत्र रडेल के नाम १६ जुलाई, १८२७। रडेल का पत्र पीयर्स के नाम २४ जुलाई, १८२७। रडेल का पत्र २०० प्रतियों की प्राप्ति के संबंध में ६ सितंबर, १८२७। चौदह सौ रुपए के लिए स्वीकृति।

[2] फो० वि०, ३० जून, १८२७ ?, १८२८, हो०, मि०, जि०, ११, पृ० ४१६-४२८, इ० रे० वि०

[3] वही, पृ० ४६१

[4] फो० वि०, ७ अगस्त १८२८—२६ फ़रवरी १८३०, हो०, मि०, जि० १२, पृ० १६२ १६४, इ० रे० वि०

सरकारी मंत्री जी० बुश्बाई के पास भेज दिया। २७ दिसंबर, १८३१ को सरकार ने उन्हें प्रमाण-पत्र देना स्वीकार किया। इस बात की सूचना रडैल ने उन्हें ३० दिसंबर, १८३१ को दी और सूचना के साथ, इसी तिथि के अंतर्गत, अपने हस्ताक्षर कर प्रमाण-पत्र भी दे दिया।[1]

---

[1] फो० वि०. २६ अक्तूबर, १८३१ - १६ अगस्त, १८३२, हो०, मि०. जि० १४ पृ० ५४ ९१, इ० रे० वि०

७

कॉलेज के अंतिम दिन[1]

आउज़्ले, जो अब तक कॉलेज में कार्य कर रहे थे, १८१३ रुपया मासिक पर मैसूर के राजकुमारों के अभिभावक नियुक्त होकर चल गए। उनके स्थान पर २० जून, १८३८ को कैप्टेन जी० टी० मार्शल १००० रुपया मासिक वेतन पर कॉलेज के मंत्री और परीक्षक नियुक्त हुए।

मधुसूदन तर्कालंकार

२१ अगस्त, १८३८ को जी० टी० मार्शल ने एच० टी० प्रिंसेप सरकारी मंत्री को पत्र लिखते हुए 'भाखा' विभाग के पंडित ब्रह्म सच्चिदानन्द के स्थान पर मधुसूदन तर्कालंकार की पचास रुपया मासिक वेतन पर नियुक्ति और उन्हें बँगला विभाग के सरिश्तेदार पुकारे जाने की सिफ़ारिश की। ब्रह्म सच्चिदानन्द कॉलेज में बहुत कम आते थे क्योंकि वे एक साहूकार के कार्य में लगे रहने से छोटी-छोटी अदालतों में ही अपना समय अधिक व्यतीत करते थे। इस बात की शिकायत किसी अलेक्ज़ैंडर नामक व्यक्ति ने आउज़्ले से की और आउज़्ले ने इस बात का उल्लेख मार्शल से किया। वैसे भी हिंदी पढ़ाने का कार्य अब अधिकांश में हिंदुस्तानी मुंशी ही करने लगे थे। हिंदुस्तानी विभाग के सरिश्तेदार मौलाबख्श के निरीक्षण में कार्य भी अच्छा हो रहा था। इसलिए वहाँ एक और व्यक्ति रखना व्यर्थ था। किंतु बँगला विभाग में, और वैसे भी सामान्यतः, एक सहायक व्यक्ति की आवश्यकता समझ कर ही मधुसूदन तर्कालंकार की सिफ़ारिश की गई थी। मधुसूदन के पास संस्कृत साहित्य, अँगरेज़ी तथा अन्य प्रकार के सामान्य ज्ञान के लिए संस्कृत कॉलेज, हिंदू लॉ कमेटी, संस्कृत कॉलेज के अंगरेज़ी के अध्यापक कुलूटन, ट्रौयर और आई० सी० सी० सदरलैंड और हिंदी-ज्ञान के लिए फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के परीक्षकों से मिले सन्तोष-जनक प्रमाण-पत्र थे। अस्तु, ५ सितंबर, १८३८ के सरकारी पत्रानुसार ब्रह्म सच्चिदानंद कॉलेज से अलग कर दिए गए और उनके स्थान पर मधुसूदन तर्कालंकार की बँगला विभाग के सरिश्तेदार के रूप में नियुक्ति हुई।[2]

अब कॉलेज के मुंशियों और पंडितों की आर्थिक दशा शोचनीय होती जा रही

---

[1] १८३३ से १८३७ तक की कॉलेज की प्रोसीडिंग्स अप्राप्य है। इसलिए इस कार के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कॉलेज का स्थायी विभाग १. जुलाई, १८३४ तक अवश्य था—आउज़्ले का पत्र प्रिंसेप को, ओ० सी० नं० ५४, २ जुलाई, १८३४, होम डिपार्टमेंट, पब्लिक।

[2] फ़ो० वि०, १८ नवंबर, १८३७—३० अक्तूबर, १८४१, हाँ०, मि०, जि० १ पृ० १२२ १२४ हु० रे० वि

थी उन्हें कम वेतन मिलने के कारण अपना जीवन निर्वाह कठिन प्रतीत हो रहा था इसलिए कॉलिज के अधिकारियों के पास उन्होंने इस आशय का

कॉलेज की व्यवस्था प्रार्थना-पत्र भेजा कि आगे चल कर उन्हें मुंसिफ, सदर अमीन आदि बना दिया जाय। मार्शल ने उनका प्रार्थना-पत्र प्रिंसप के पास भेजा। प्रिंसप ने लिखा कि बंगाल के डिप्टी गवर्नर इस प्रकार का कोई वचन नहीं दे सकते, क्योंकि सरकारी नौकरियाँ केवल सुयोग्य व्यक्तियों को ही मिल सकती हैं।

और वर्षों की भाँति सी० फ्लॉअर (Frower) ने कॉलिज के मंत्री से १ मई, १८४० का कॉलेज का संक्षिप्त विवरण माँगा। मार्शल ने जो विवरण भेजा उससे ज्ञात होता है कि अब कॉलिज में कोई प्रोफ़ेसर न रह गया था। हिंदुस्तानी तथा अन्य विभागों में भी प्रतिभाशाली अध्यापक न रह गए थे। कॉलिज का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

सामान्य (जनरल) विभाग, सरकार द्वारा पद-नियुक्ति और स्थापना की तिथि	नियुक्ति की तिथि	व्यक्ति का नाम	किस तरह की नौकरी	वेतन	जोड़
१ जनवरी, १८०७	३१ जुलाई, १८३२ २५ सितंबर, १८३२ वर्तमान पद पर नियुक्ति ४ जुलाई, १८३८	कैप्टेन जी० टी० मार्शल	मंत्री और परीक्षक	१००० रु०	१००० रु०
×	×	×	×		

हिंदुस्तानी विभाग

				रु०	आ०	पा०
१ जनवरी, १८०७	सितंबर, १८०२	मौलाबख्श	सरिश्तेदार	४१.	१२.	१०
,,	अक्तूबर, १८०१	दलीलुद्दीन	मुंशी	४१.	१२.	१०
,,	६ अगस्त, १८१२	फख्रुद्दीन	,,	४१.	१२.	१०
,,	१ अगस्त, १८३२	मुज़फ़्फ़र हुसैन	,,	४१.	१२.	१०
,,	७ दिसंबर, १८२४	गंगा नारायण (हिंदी और बँगला सुलेखक)	,,	५२.	४.	०

बँगला विभाग

५ सितंबर, १८३८	५ सितंबर, १८३८	मधुसूदन तर्कालंकार	सरिश्तेदार	५०.	०.	०

अस्तु, अब कॉलिज में कोई 'भाखा'-पंडित अथवा हिन्दी-पंडित न रह गया था। ६ नवंबर, १८४१ को मधुसूदन की माँ, जो अहमदपुर ज़िला बर्दवान के रहने

ईश्वरचंद्र विद्यासागर वाले थे, मृत्यु हो गई। इसलिए कॉलिज के मंत्री, मार्शल, ने २७ दि० बर, १८४१ को बंगाल के सरकारी मंत्री बुशबाई, को एक पत्र

लिखा जिसमें उन्होंने मधुसूदन के स्थान पर ईश्वरचंद्र विद्यासागर की सिफ़ारिश की। मधुसूदन की भाँति उनमें सभी योग्यताएं थीं और संस्कृत कालेज, हिन्दू ला कमेटी, फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के परीक्षकों आदि से प्राप्त अच्छे-अच्छे प्रमाण-पत्र भी उनके पास थे। किसी अदालत में क़ानूनी पण्डित का कार्य भी वे भली भाँति कर सकते थे। २६ दिसंबर, १८४१ को उनके लिए सरकारी स्वीकृति मिल गई।[1] किन्तु ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने वास्तव में इस पद पर कार्य किया या नहीं, इस बात का कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

१४ मई, १८४४ से दिसंबर, १८४६ तक का कॉलेज का सरकारी विवरण अप्राप्य है। १ मई, १८४७ के संक्षिप्त विवरण में मार्शल का पहले की भाँति उल्लेख है। अन्य व्यक्तियों में ईश्वरचंद्र विद्यासागर का उल्लेख नहीं है :

हिंदुस्तानी विभाग

६ जून, १८४४	१ मई, १८४४	ग़ुलाम हैदर	सरिश्तेदार	४० ६०
,,	,,	तफ़ज़्ज़ुल हुसैन	मुंशी	४०, ,,
१ जनवरी, १८०७	१ दिसंबर, १८४४	गंगा नारायण	नागरी और बँगला सुलेखक	५२. ४. ०
×	×	×		×
४ अप्रैल, १८४६	४ अप्रैल, १८४० (१,१८४६)	दीनबंधु	बँगला के सरिश्तेदार	५०. ०. ०[2]

मौलाबख़्श को तेतालीस वर्ष की नौकरी के बाद पेंशन मिली और पचास रुपया मासिक वेतन के स्थान पर चालीस रुपया मासिक वेतन पर मौलवी ग़ुलाम हैदर फ़ारसी और हिंदुस्तानी के सरिश्तेदार नियुक्त हुए। २ मई, १८५० को हिंदुस्तानी विभाग में मुहम्मद इस्माईल, ताज मुहम्मद और तफ़ज़्ज़ुल हुसैन थे। १ मई, १८५१ को गंगा नारायण के अतिरिक्त स्थायी विभाग में कोई न रह गया।[3]

कॉलेज में हिंदी की समुचित शिक्षा के प्रबंध का अभाव: शेष शास्त्री की नियुक्ति

इधर कुछ दिनों से कॉलेज में हिंदी-शिक्षा का कोई समुचित प्रबंध नहीं रह गया था। किंतु उत्तर-पश्चिम प्रांतों में भेजे गए सिविलियन कर्मचारियों के लिए हिंदी का ज्ञान अत्यंत आवश्यक था। देशी फ़ौजों के अधिकांश सिपाही हिंदू थे। ये हिंदू सिपाही हिंदी अथवा इसके अन्तर्गत किसी बोली का प्रयोग करते थे। इसीलिए कॉलेज के शिक्षा-क्रम में हिंदी को ऊँचा स्थान दिया गया था। किंतु कई वर्षों से कॉलेज में एक हिंदी पंडित के अभाव का अनुभव किया जा रहा था। ६ मार्च,

[1] फ़ो० वि०, १ नवंबर, १८४१– १८ मई, १८४४, हो०, मि०, जि० १७, नं० १८३२, पृ० २२-२३, इं० रे० वि०

[2] फ़ो० वि०, ७ जनवरी, १८४७– ३० दिसंबर, १८४८, हो०, मि०, जि० १८, पृ० ७५-७७ इं० रे० वि०

[3] मेमो बुक, जनवरी, १८५०—दिसंबर, १८५१ जि० ११ पृ० रे० वि०

१८५२ के सरकारी आज्ञापत्र[1] के अनुसार कुछ नियमों के अंतर्गत दो भाषाओं में सफल होने वाले सैनिक अफ़सर को एक सहस्त्र रुपए का पुरस्कार घोषित किया गया था। इसके जारी हो जाने से और साथ ही परीक्षा में सहायता देने के लिए एक विद्वान् पंडित की आवश्यकता थी। जी० टी० मार्शल ने जब ३ और ५ अप्रैल, १८५२ को एन्साइन एस० डी० ह्वाइट, बयालीसवीं रेजीमेंट नेटिव लाइट इन्फैंट्री, की परीक्षा ली तो उन्हें बाज़ार से एक पंडित बुलवाना पड़ा था। उनकी सहायता से मार्शल ने परीक्षार्थी की मौखिक और लिखित परीक्षा ली थी। ऐसी अनिश्चित व्यवस्था के स्थान पर उन्होंने उत्तरी भारत के निवासी एक विद्वान् और आदरणीय हिंदी-पंडित को पचास रुपया मासिक वेतन पर रखना चाहा। इस संबंध में उन्होंने बंगाल के सरकारी मंत्री को एक पत्र[2] लिखा। उत्तर में कॉलेज के सरकारी उपमंत्री, डैलरिम्पिल, ने कॉलेज के मंत्री को लिखा कि हिंदी-पंडित रखने के लिए कॉलेज के अन्य किसी विभाग में कोई कमी की जा सकती है या नहीं[3]। सपरिषद् गवर्नर-जनरल के अर्थ-विभाग की २१ मई, १८५२[4] की कार्रवाही का अंश भी उद्धृत कर कॉलेज के मंत्री के पास भेजा गया। होम डिपार्टमेंट ने पचास रुपया मासिक वेतन पर कॉलेज के लिए एक पंडित की आवश्यकता बताते हुए एक पत्र[5] भेजा जो अर्थ-विभाग के अधिवेशन में पढ़ा गया। तत्पश्चात्, कॉलेज के मंत्री के पत्रानुसार, सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने हिंदी-पंडित के लिए स्वीकृति दे दी। किंतु साथ ही उन्होंने बंगाल सरकार से इस बात की प्रार्थना की यदि संभव हो सके तो कॉलेज के और व्यय में से छयालीस रुपए मासिक बचाए जायँ। उन्होंने इस प्रस्ताव की सूचना होम डिपार्टमेंट को देने की आज्ञा दी ताकि वह बंगाल की सरकार को यथाविधि सूचना दे सके और उन्हीं की आज्ञा से कॉलेज के मंत्री का पत्र[6] और बंगाल की सरकार के होम डिपार्टमेंट का पत्र[7] वापिस कर दिया गया। अन्य सरकारी अफ़सरों को भी सूचित कर देना उन्होंने आवश्यक समझा। मार्शल ने बंगाल के सरकारी उपमंत्री को एक पत्र[8] लिखा जिसमें उन्होंने दूसरे काग़ज़ों के साथ बंगाल सरकार को लिखे हुए पत्र[9] की प्राप्ति स्वीकार की और साथ ही पंडित शेष शास्त्री को हिंदी-पंडित नियुक्त करने की सिफ़ारिश की। उनकी यह माँग सपरिषद् गवर्नर-जनरल के अर्थ-विभाग के २१ मई, १८५२ के पत्रानुसार थी। १० जून,

---

[1] नं० १२४

[2] २१ अप्रैल, १८५२, नं० ११३

[3] २ जून, १८५२, नं० ८६५

[4] नं० १०११

[5] ४ मई, १८५२, नं० ३२५ तथा २१ अप्रैल, १८५२, नं० ६८६

[6] २१ अप्रैल, १८५२, नं० ११३

[7] २१ अप्रैल, १८५२, नं० ६८६

[8] ८ जून १८५२ नं० २१८

[9] २ जून १८५२ नं० ८६५

१८५२ को बंगाल के सरकारी उपमंत्री, डैलरिम्पिल, ने मार्शल के पत्र की प्राप्ति स्वीकार करने के बाद शेष शास्त्री को हिंदी-पण्डित नियुक्त करने के संबंध में सरकारी आज्ञा भेज दी।[1]

कॉलेज की व्यवस्था में फिर परिवर्तन और आठवें परिच्छेद के स्थान पर नए नियम

कॉलेज के विधान में समय समय पर परिवर्तन हुआ करते थे। परिवर्तन करते समय व्यावहारिक तथा राजनीतिक दृष्टि से शिक्षा-क्रम तथा व्यय कम करने की दृष्टि से विभिन्न विभागों में कमियाँ हुआ करती थीं। २३ जून, १८४१ को बंगाल के गवर्नर तथा कॉलेज के विज़िटर लॉर्ड ऑक्लैंड, ने विधान के आठवें परिच्छेद के स्थान पर नए नियम स्वीकार किए।[2] इनके अनुसार कॉलेज के शासन में अनेक परिवर्तन हुए। किंतु दसवें नियम के अनुसार फ़ारसी को अनिवार्य भाषा बनाने के कारण पठन-पाठन-क्रम में कठिनाई पड़ रही थी। इसलिए २० जुलाई, १८४२ को बंगाल के सरकारी उपमंत्री, एच० वी० बेली, ने कॉलेज के मंत्री, मार्शल, को फ़ारसी के अनिवार्य नियम के स्थान पर फ़ारसी और हिंदी या बंगाल अथवा उर्दू और बँगला का नियम जारी करने के लिए लिखा। उन्होंने केवल इस बात पर अधिक ध्यान रक्खा कि विद्यार्थी जिस प्रदेश में भेजा जाय वह वहाँ की भाषा भली भाँति जानता हो।[3]

ऊपर इस बात की ओर संकेत किया जा चुका है कि अब कॉलेज में कोई प्रधानाध्यापक या प्रोफ़ेसर न रह गया था। कॉलेज के मंत्री, मार्शल, ने भारतीय भाषाओं के प्रधानाध्यापकों के पदों पर यूरोपीय अफ़सरों की नियुक्ति के लिए बंगाल सरकार को लिखा।[4] बंगाल की सरकार ने भारतीय सरकार के होम डिपार्टमेंट को लिखा।[5] भारतीय सरकार इस संबंध में कोई निश्चित मत निर्धारित न कर सकी। कोर्ट कॉलेज पर अधिक व्यय नहीं करना चाहता था। अतएव भारतीय सरकार ने कोर्ट के डाइरेक्टरों को लिखा।[6] कोर्ट ने यह प्रस्ताव अस्वीकृत ठहराया।[7] तत्पश्चात् यह विषय फिर

---

[1] हों० सु०, सितंबर, १८५१—जनवरी, १८५४, जि० २०, नं० ६०४, पृ० ८०१-८०३, इं० रे० डि०

[2] साथ ही दे०, पब्लिक कंसल्टेशन, २५ नवंबर, १८४१, नं० ७

[3] फ़ो० वि०, १ नवंबर, १८४१—१४ मई, १८४४, हो०, मि०, जि० १७, नं० ६४३, पृ० १८८, इं० रे० डि०

[4] होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्ज़, जुलाई-सितंबर, १८४६, २६ सितंबर, १८४६,(२३ जुलाई, १८४६), ओ० सी० नं० २, पृ०?, इं० रे० डि०

[5] वही, २६ अगस्त, १८४६, नं० २१४७, ओ० सी० नं० १, पृ०?, इं० रे० डि०

[6] वही, २६ सितंबर, १८४६, नं० २२ पृ० ?, इं० रे० डि०

[7] वही, ४ जून, १८४७, नं० ११, पृ० ६६१ ६६२ (?), इं० रे० डि०

किसी ने न उठाया जब कोर्ट ने धीरे धीरे कालेज तोड़ने का निश्चय ही कर लिया था तो फिर प्रधानाध्यापकों की कोई आवश्यकता भी नहीं थी।

इतना ही नहीं आगे चल कर कॉलेज की व्यवस्था में एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। अधिकारियों ने यह नियम बना दिया था कि विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से अपना अध्यापक चुन कर विभिन्न भाषाओं का अध्ययन कर सकता है। इसलिए अब स्थायी रूप से रक्खे गए मुंशियों की कोई आवश्यकता न समझी गई। वास्तव में सरकार तो स्थायी अथवा अस्थायी किसी प्रकार के अध्यापक-वर्ग पर व्यय करना नहीं चाहती थी। बंगाल के सरकारी मंत्री, जे० पी० ग्रांट, ने इस संबंध में कॉलेज के मंत्री, मार्शल, को लिखा।[1] मार्शल ने पूरा विवरण सरकारी मंत्री के पास भेज दिया।[2] सरकार ने अंत में यही निश्चय किया कि कॉलेज के छः स्थायी अध्यापकों को अलग कर उन्हें पेंशन दे दी जाय और भविष्य में प्रत्येक अध्यापक 'पे सर्टिफ़िकेट' के आधार पर रक्खा जाय, किंतु किसी भी अध्यापक को चार 'पे सर्टिफ़िकेट' से अधिक न मिले। बंगाल की सरकार के इस कार्य से कोर्ट पूर्णतः सहमत था।[3]

कॉलेज के पुराने क्रमानुसार ग्रंथ-रचना भी होती रही, किन्तु नवीन ग्रंथों का निर्माण बहुत कम हुआ। हिन्दी गद्य-ग्रंथ की रचना तो लल्लूलाल और सदल मिश्र के बाद फिर हुई ही नहीं। केवल प्राचीन ग्रंथ ही बार-बार छपते रहे।

१८३७ और १८४१ के बीच जॉन टॉमस टॉम्पसन कृत उर्दू-कोष प्रकाशित हुआ। नियमानुसार कॉलेज ने उसकी कुछ प्रतियाँ लीं। १४ अगस्त, १८३६ के सरकारी सामान्य पत्र[4] के अनुसार कॉलेज की सभी यूरोपीय पुस्तकें कलकत्ते के सार्वजनिक पुस्तकालय के अध्यक्ष को और पूर्वीय ग्रंथ तथा हस्तलिखित पोथियाँ एशियाटिक सोसायटी को दे देने की आज्ञा हुई। २० जुलाई, १८४१ को कॉलेज के मंत्री, जी० टी० मार्शल, ने बंगाल के सरकारी मंत्री, जी० ए० बुशबाई, के पास गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज के पंडित योगध्यान मिश्र का एक प्रार्थना-पत्र भेजा जिसमें मिश्र जी ने 'प्रेमसागर' का एक नया संस्करण प्रकाशित करने का प्रस्ताव रक्खा था। वे छः रुपया की प्रति के हिसाब से दो सौ प्रतियों के लिए सरकारी संरक्षण चाहते थे। 'प्रेमसागर' असैनिक (सिविल) और सैनिक (मिलिटरी) परीक्षाओं के लिए एक हिंदी-पाठ्य-पुस्तक थी। उसकी प्रतियाँ समाप्त हो चुकी थीं और अब वह मिलती नहीं थी। मार्शल ने मिश्र जी के प्रस्ताव का समर्थन किया। मिश्र जी का प्रार्थना-पत्र निम्नलिखित है जो कॉलेज की परिवर्तित भाषा-नीति पर प्रकाश डालता है :

योगध्यान मिश्र द्वारा संपादित 'प्रेमसागर' का संस्करण तथा अन्य रचनाएँ

---

[1] जे० बु०, जनवरी, १८५०—सितंबर, १८५१, जि० १६, २९ मई, १८५०, नं० ८३२, पृ० ३७..., इं० रे० डि०

[2] वही, ७ जून, १८५०, नं० १२३, पृ० ३७-४०, इं० रे० डि०

[3] वही, पत्र ४ मार्च, १८५१, नं० ३६, पृ० १८६-१९८, इं० रे० डि०

[4] नं० २८

'स्वस्ति श्रीयुत फ़ोर्ट उलियम कॉलेज के नायक सकलगुणनिधान भागवान कपतान श्री मार्सल साहब के निकट मुज दीन की प्रार्थना

मैंने सुना कि कॉलेज में प्रेमसागर की अल्पता है इस कारण मैं छपवाने को इच्छा करता हु और मेरे यहा छापे का यन्त्र और उत्तम अक्षर नये (? नये) ढाले प्रस्तुत हैं इस लिये मैं चाहता हू कि जो मुझे आपकी आज्ञा होय तो मैं वही पुस्तक उत्तम विलायती कागज पर अच्छी श्याही से आपकी अनुमति के अनुसार छपवा दू परतु वह पुस्तक चारपेंची फरमें से अनुमान २६० दो सौ साठ पृष्ठ होगी जो ६) छः रुपैयो के लेखे २०० दो सौ पुस्तक आप लेवें तो छापे के व्यय का निर्वाह हो सके ॥ ॥ ॥ किमधिक ॥ ता० १ जुलाई सं० १८४१

श्री योगध्यान मिश्रः ॥" [1]

स्व० लल्लूलाल को अपने अन्य दो ग्रंथों के लिए प्रार्थना-पत्र फ़ारसी में लिखना पड़ा था। २८ जुलाई, १८४१ के पत्र में सरकारी अनुमति प्राप्त होने पर मार्शल ने योगध्यान मिश्र के पास यथाविधि सूचना भेज दी।[2] 'प्रेमसागर' के छप कर आ जाने पर मार्शल ने बारह सौ कंपनी रुपयों के लिए सरकारी स्वीकृति प्राप्त की।[3]

२६ जुलाई, १८२६ को एक 'हिंदी-ईंगलिश-डिक्शनरी' के लिए सरकार ने स्वीकृति दी थी। अब वह पूर्ण हो गई थी और मधुसूदन तर्कालंकार उसे प्रकाशित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने एक पत्र लिखा भी था। कॉलेज के मंत्री, मार्शल, ने बगाल के सरकारी मंत्री, बुशबाई, के माध्यम द्वारा बारह रुपए फ़ी प्रति के हिसाब से डेढ स प्रतियों के लिए सिफ़ारिश की। सरकारी मत्री ने उत्तर में लिखा कि इस पुस्तक की डेढ़ सौ प्रतियाँ खरीदने के लिए सरकार वचन नहीं दे सकती। पुस्तक अच्छी हुई तो विद्यार्थी तथा अन्य विद्या-प्रेमी सज्जन स्वयं ख़रीदें लेंगे।

मार्शल ने मुशी देवीप्रसाद राय कृत 'पौलीग्लौट मुंशी' के लिए भी सरकारी स्वीकृति माँगी। १३ अप्रैल, १८४२ को उन्हें यह स्वीकृति मिल गई। किंतु उनकी दूसरी कृति, 'पौलीग्लौट डिक्शनरी', को, अत्यधिक अशुद्धियाँ होने के कारण, सरकारी सरक्षण न मिल सका।

१ नवंबर, १८५१ के पत्र में राजकृष्ण बनर्जी ने 'बैताल पचीसी' का एक नया सस्करण प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। इस संबंध में मार्शल ने बगाल के सरकारी मत्री, जे० पी० ग्रांट, को लिखा। १७ नवबर, १८५१ को उन्हें सरकारी स्वीकृति प्राप्त हो गई।[4] अधिकारियों ने ढाई रुपया फ़ी प्रति के हिसाब से सौ प्रतियाँ ख़रीदने का वचन

---

[1] फ़ो० वि० १८ नवम्बर १८२० १० अक्तूबर १८४१ हो०, मि०, खि० १६, पृ० ६०४ न० ३० वि०

दिया। पुस्तक वास्तव में छप कर कॉलेज में आई या नहीं, इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

नवंबर, १८५१ में छः रुपया फ़ी प्रति के हिसाब से 'प्रेमसागर' की बीस प्रतियाँ फिर खरीदी गईं। हिंदी पढ़ने वाले सिविलियन कर्मचारियों के लिए तो 'प्रेमसागर' ही उनके भावी जीवन का आधार था।

जनवरी, १८५० से जनवरी, १८५४ तक कॉलेज के अंतिम दिन थे। इस बीच में कॉलेज किसी नवीन ग्रंथ की रचना प्रोत्साहित न कर सका हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

कॉलेज की अवनति

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के पिछले विवरणों से यह स्पष्ट है कि दिन-पर-दिन संस्था की अवनति होती जा रही थी। आर्थिक और ज्ञानोपलब्धि दोनों ही दृष्टियों से उसका प्राचीन वैभव क्षीण हो रहा था। पिछले कुछ वर्ष से उसकी और भी शोचनीय अवस्था हो गई थी। सुविधाओं के रहते हुए भी परीक्षा-फल तथा विद्यार्थियों की उन्नति अत्यन्त निराशाजनक होने लगी थी।[1] किसी ऐसे साधन की आवश्यकता थी जिससे शीघ्र ही अभीष्ट फल की प्राप्ति हो सकती। फ़ारसी का अधिक प्रचार न रह जाने के कारण उसकी परीक्षा के मापदण्ड में भी कमी करने की आवश्यकता थी। विद्यार्थियों से उसमें पन्द्रह महीने में योग्यता प्राप्त कर लेने की आशा की जाती थी, असफल होने पर, बिना कोई दण्ड दिए, उन्हें छः महीने की अवधि और दी जाती थी। इतने पर भी असफल रहने से उन्हें इँगलैंड भेज दिया जाता था। इस बीच में दुबारा परीक्षा लिए जाने के लिए दिए गए प्रार्थना-पत्र अस्वीकार नहीं किए जाते थे। पुराने नियमों के अनुसार विद्यार्थियों को केवल पन्द्रह महीने का समय मिलता था, किंतु अब उन्हें इक्कीस महीने का समय मिल जाता था। तब भी उनकी उन्नति आशाजनक नहीं रहती थी। बंगाल के डिप्टी गवर्नर की सम्मति में हर्टफ़र्ड कॉलेज में कुछ समय व्यतीत कर लेने पर विद्यार्थियों को छः महीने का अतिरिक्त समय देना व्यर्थ था। किसी एक भाषा में सफलता प्राप्त करने से पूर्व विद्यार्थी को ढाई सौ रुपया मासिक, सफलता प्राप्त कर लेने पर तीन सौ रुपया मासिक, कलकत्ते में रहने पर मकान का किराया अस्सी रुपया मासिक और शहर से बाहर रहने पर चालीस रुपया मासिक मिलता था। मुंशी के वेतन के लिए तीस रुपया मासिक और मिलता था। इसलिए बंगाल के डिप्टी गवर्नर की यह सम्मति थी कि विद्यार्थियों की कॉलेज में रहने की अवधि कम कर दी जाय और मासिक परीक्षाओं में अच्छा फल न दिखा सकने पर उन्हें कठोर दंड दिया जाय। साथ ही उन्होंने मकान का किराया देकर अलग-अलग स्थानों पर रखने के

---

[1] कॉलेज मंत्री, जी० टी० मार्शल, का बंगाल के सरकारी मंत्री को १६ मार्च, १८५० का लिखा गया पत्र। होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, नवंबर, १८५२, नं० ६८ ओ० सी० नं० २, पृ० १५१, इ० रे० वि०

बजाय सब विद्यार्थियो को एक ही स्थान पर रखने का विचार प्रकट किया।[१] इन सब महत्त्वपूर्ण विषयो की ओर गवर्नर-जनरल का ध्यान आकृष्ट करने के उद्देश्य से डिप्टी गवर्नर ने उन्हे एक पत्र लिखना आवश्यक समझा।

बंगाल के सरकारी मन्त्री, जे०पी० ग्रांट, ने २० अगस्त, १८५०[२] को एक नोट लिखा जिसमें उन्होंने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के इतिहास पर प्रकाश डाला। इस नोट के अनुसार १८०१ की वेलज़ली की मिनिट्स के बाद अब परिस्थिति बदल गई थी, विशेष रूप से १८०६ मे हर्टफ़ोर्ड कॉलेज खुल जाने के बाद। अस्तु, कॉलेज की तत्कालीन व्यवस्था में अनेक परिवर्तन आवश्यक थे। उस समय कॉलेज मे छः मुंशी कार्य कर रहे थे। सरकारी मन्त्री ने उनकी भी आवश्यकता न समझी और विभिन्न समयो पर किए गए सुधारो की ओर भारतीय सरकार का ध्यान आकृष्ट किया।[३] साथ ही उन्होंने विद्यार्थियो द्वारा लिए गए समय की एक तालिका बना कर भी भारतीय सरकार के पास भेजी।[४]

भारत के सरकारी मंत्री, एफ़० जे० हैलीडे, ने भी २१ अगस्त, १८५० को एक नोट[५] तैयार किया जिसमें उन्होंने कॉलेज के इतिहास में किए गए उल्लेखनीय सुधारो की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट कर सुधार के अन्य साधन सुझाए।

फिर २२ अक्तूबर, १८५३ को बंगाल के सरकारी उपमंत्री, डब्ल्यू० गॉर्डन यंग, ने भारतीय सरकार के होम डिपार्टमेंट के उपमंत्री, जी० कूपर, को लिखते हुए भारतीय सरकार के १६ अगस्त, १८५३ के पत्र का हवाला दिया और बंगाल सरकार की ११ अक्तूबर, १८५३ की मिनिट्स और सरकारी मंत्री का नोट भारतीय सरकार के पास भेज देने का उल्लेख किया। भारतीय सरकार के उन मिनिट्स से सहमत होने पर बंगाल सरकार उसके अनुसार ही कॉलेज के अधिकारियों को आदेश देना चाहती थी।[६]

डलहौज़ी की मिनिट्स

डलहौज़ी की ११ अक्तूबर, १८५३ की जिन मिनिट्स[७] की ओर ऊपर की पंक्तियो में संकेत दिया गया है वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :

'कॉलेज की वर्तमान व्यवस्था के अंतर्गत विद्यार्थी प्रायः आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। ऋण का भार उन पर लदा रहता है। कॉलेज की वर्तमान व्यवस्था बिल्कुल दूषित है। उसके सुधार के लिए कई उपाय बताए गए हैं। कुछ सज्जन तो सुधारो के

---

[१] बंगाल के सरकारी मंत्री, जे० पी० ग्रांट, का भारतीय सरकार के होम डिपार्टमेंट के मंत्री, एफ़० जे० हैलीडे, को २७ मार्च, १८५० का लिखा गया पत्र। वही, नं० ६१२, ओ० सी० नं० १, पृ० १२६-१२७, इं० रे० डि०

[२] वही, ओ० सी० नं० २, पृ० १२७-१६०

[३] वही

[४] होम डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑव इंडिया, ओ० सी० नं० ३, पृ० १६०-१६७

[५] वही, ओ० सी० नं० ४, पृ० १६७-१७२

[६] वही, नं० १११० ओ० सी० नं० ६, पृ० १७२

[७] वही नं० १११० ओ० सी० नं० ७, पृ० १७४ १७६

साथ-साथ कॉलेज की पुनर्स्थापना चाहते हैं. कुछ सज्जन कॉलेज तोड़ देने के पक्षपाती हैं और कुछ सज्जन कॉलेज के नाम और अवशिष्ट चिह्नों की रक्षा करना चाहते हैं। किंतु इनमें से किसी मत से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती। तीसरा उपाय अच्छा है। इसी के संशोधित रूप में कॉलेज बनाए रखना अच्छा होगा। कॉलेज की पुनर्स्थापना करना अनावश्यक, अनुचित और लॉर्ड वेलेज़ली की विद्वत्ता में संदेह प्रकट करना होगा। जिस समय कॉलेज स्थापित किया गया था उस समय पंद्रह या सत्रह वर्ष के युवक विद्यार्थी भारतवर्ष आते थे। उस समय उन पर अंकुश रक्खा जा सकता था। इंगलैंड में उनकी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं था। किंतु अब दूसरी परिस्थिति है। इस समय बीस से बाईस वर्ष तक के विद्यार्थी भारतवर्ष आते हैं। हर्टफ़र्ड कॉलेज में वे कुछ शिक्षा भी प्राप्त कर लेते हैं। वे न तो स्कूल के बच्चे रहते हैं और न विश्वविद्यालय के वयस्क विद्यार्थी। स्वभावतः वे फिर स्कूल जाना पसंद न करेंगे। ये सब बातें कॉलेज की पुनर्स्थापना के विरोध में हैं। कलकत्ते के पास किसी अन्य स्थान पर विद्यार्थियों को भेज देना ठीक नहीं है। कलकत्ते में थोड़े दिन रख कर मैं उन्हें कॉलेज में भर्ती करने का पक्षपाती हूँ। मैं मि० हैलोडे और बंगाल के मंत्री, मि० बीडन, के विचारों से सहमत हूँ। किंतु मेरी सम्मति में एक भिन्न मार्ग का अवलंबन ग्रहण करना उचित होगा।

'कॉलेज की वर्तमान व्यवस्था एक धोखा और परिहास मात्र है। उससे किसी उद्देश्य की पूर्ति होने के बजाय हँसी होने और भ्रम फैलने का डर है।

'इस समय वास्तविक रूप में कोई कॉलेज नहीं है, पहले की भाँति विद्यार्थियों के लिए कमरे नहीं हैं, कोई प्रोवोस्ट नहीं है, कोई प्रोफ़ेसर नहीं है और न कोई लेक्चरर है। कॉलेज में कुछ पण्डित और मुंशी हैं। सरकार उन्हें वेतन देती है। किंतु उनसे कोई कार्य नहीं लेता। कॉलेज का अस्तित्व न होने पर भी 'कॉलेज' का एक मन्त्री है। ऐसे जीवित अस्थि-पंजर की सहायता से किसी प्रकार का लाभ होना असम्भव है। लोगों की दृष्टि से यह जितना जल्दी हटा दिया जाय उतना ही अच्छा है।

'अस्तु, मैं फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का नाम पूर्णरूपेण और तुरंत मिटा देना चाहता हूँ। उसके स्थान पर मेरा एक दूसरी संस्था निर्मित करने का विचार है। सरकारी नौकरी मिलने से पहले प्रत्येक नवयुवक सिविलियन कर्मचारी के अनिवार्य परीक्षा-काल के लिए जिन-जिन बातों की आवश्यकता होगी उन सब की पूर्ति के लिए यह संस्था क्रियाशील और फलदायक रूप में समर्थ होगी।

'परीक्षा-काल में विद्यार्थियों का अध्ययन और उनकी परीक्षा आवश्यक है। किंतु वर्तमान कॉलेज की अपेक्षा अन्य अनेक उत्तम साधन हैं जो अधिक संतोषजनक सिद्ध होंगे।

'वर्तमान परीक्षक और मंत्री सुयोग्य व्यक्ति हैं। उन्हें एक न्यायालय (Tribunal) के संरक्षण में रहना चाहिए। वह भी है। एक बोर्ड ऑव ऐग्ज़ामिनर्ज़ (परीक्षा-समिति) की होनी चाहिए जो सरकारी नौकरी पाने से पूर्व जूनियर सिविल कर्मचारियों की परीक्षा का संचालन करे। वर्तमान कॉलेज तो कल्पना से अधिक

कुछ भी नहीं है। बोर्ड से हमारा कार्य संतोषजनक रूप में चलेगा और व्यय भी कुछ न होगा—बल्कि और बचत होगी। देशी अध्यापकों की उपस्थिति भी निरर्थक है। बोर्ड की स्थापना हो जाने पर परीक्षा-विधि सच्ची और फलदायक होगी—जो इस समय नहीं है। विश्वास किया जाता है कि बोर्ड की स्थापना का प्रस्ताव कोर्ट द्वारा अस्वीकृत नहीं ठहराया जायगा। बंगाल के लेफ़्टिनेंट गवर्नर के रहने से यह नई आयोजना और भी सुचारु रूप से कार्य करेगी।'

इसके अतिरिक्त डलहौज़ी ने नई संस्था के विधान तथा अन्य अनेक विषयों पर विचार किया। बंगाल के सरकारी मंत्री, बीडन, ने विद्यार्थियों की कॉलेज-अवधि पर विचार किया। उनके ये विचार बंगाल के सरकारी उपमंत्री के २२ अक्तूबर, १८५३ वाले पत्र के साथ भेज दिए गए।[१] सरकारी उपमंत्री के इसी पत्र के साथ बीडन के बनाए हुए परीक्षा-नियम भी भेजे गए।[२] १० नवंबर, १८५३ को भारतीय सरकार के होम डिपार्टमेंट के स्थानापन्न मंत्री, जी० ग्राउडन, ने कॉलेज की तत्कालीन अवस्था में सुधारों तथा बोर्ड की स्थापना पर एक नोट लिख कर भेजते हुए गवर्नर (डलहौज़ी) की मिनिट्स की ओर संकेत किया।[३]

अन्य सरकारी पत्र-व्यवहार

कॉलेज संबंधी ये सभी समस्याएं भारतीय सरकार के होम डिपार्टमेंट की सुप्रीम कौंसिल के नवंबर, १८५३ के अधिवेशन के सामने रक्खी गईं। सुप्रीम कौंसिल के इस अधिवेशन में डलहौज़ी भारत के गवर्नर-जनरल की हैसियत से उपस्थित थे।

भली भाँति विचार करने के पश्चात् १६ नवंबर, १८५३ को गवर्नर-जनरल ने मिनिट्स पर अपनी स्वीकृति देते समय केवल यही लिखा कि बंगाल के गवर्नर की हैसियत से मैंने जो कुछ लिखा है उससे अधिक मुझे कुछ नहीं लिखना और मुझे आशा है कि मेरे सहयोगी भी मुझसे सहमत होंगे।[४] उसी दिन ऑन० जे० ए० डोरीन ने अपनी स्वीकृति देते हुए अपने व्यक्तिगत अनुभवों का उल्लेख किया।[५] १६ नवंबर, १८५३ को ऑन० जे० लो ने अपनी स्वीकृति तो दी, किंतु छः महीने की अवधि के संबंध में उन्होंने अपने संदेह प्रकट किए।[६] ऑन० बी० पीकॉक और प्रधान सेनापति, सर डब्ल्यू० एम० गोम, के० सी० बी० (उत्तर-पश्चिम प्रांतों में होने के कारण) अनुपस्थित थे। इसलिए ये दोनों सज्जन अपने विचार प्रकट न कर सके।

---

[१] वही, नं० १६१०, ओ० सी० नं० ८, पृ० १८०-१८२
[२] वही, नं० १६१०, ओ० सी० नं० ९, पृ० १८२-१८३
[३] वही, ओ० सी० नं० १०, पृ० १८३-१८४
[४] वही, ओ० सी० नं० ११, पृ० १८४
[५] वही, ओ० सी० नं० १२, पृ० १८४-१८५
[६] वही, ओ० सी० नं० १३, पृ० १८५

सरकारी आज्ञा से स्थानापन्न सरकारी मंत्री, जी० ग्राउडन, ने २५ नवंबर, १८५३ को एक पत्र बंगाल के सरकारी मंत्री, ग्रांडन, को लिखा जिसमें उन्होंने बंगाल के सरकारी उपमंत्री के २२ नवंबर, १८५३ के पत्र[1] की प्राप्ति स्वीकार की और गवर्नर-जनरल की बंगाल के गवर्नर की मिनिट्स पर स्वीकृति देने की सूचना भेजी। इसी पत्र में उन्होंने यह भी लिखा कि गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार मिनिट्स को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए एक आयोजना तैयार की जाय। इसकी सूचना भारतीय सरकार तथा कोर्ट के डाइरेक्टरों को देने का आदेश भी उन्हें दिया गया। अन्य अनेक बातों के अतिरिक्त उन्हें अदालती और माली कागज़ों के मिलान के लिए एक अलग कमेटी और एक दूसरी ऐसी कमेटी बनाने के लिए लिखा गया जिसमें कॉलेज के तत्कालीन परीक्षक हों। सरकार का उन्हें एक बोर्ड के रूप में रखने का विचार था। इस संस्था के सदस्य सिविल सर्विस (Covenacted Members) के कर्मचारी भी हो सकते थे। उत्तर-पश्चिम प्रांत, फ़ोर्ट सेंट जॉर्ज और बंबई की सरकारों के पास भी मिनिट्स और इस पत्र की नकलें भेजी गईं।[2] होम डिपार्टमेंट के २५ दिसंबर, १८५३[3] के प्रस्तावानुसार बंगाल सरकार के २२ नवंबर के पत्र और गवर्नर की मिनिट्स तथा अन्य आवश्यक बातों के संबंध में किए गए निश्चय की उन सभी स्थानों को सूचना दे दी गई।[4]

तत्पश्चात् २ फ़रवरी, १८५४ को बंगाल के सरकारी उपमंत्री, डब्ल्यू० गॉर्डन यंग, ने एक पत्र[5] भारतीय सरकार के होम डिपार्टमेंट के उपमंत्री को लिखा जिसमें उन्होंने स्थानापन्न मंत्री, ग्राउडन, के पत्र (२५ नवंबर, १८५३) का उल्लेख करते हुए कहा कि इस पत्र के साथ के कागज़ों की भारतीय सरकार को सूचना देने तथा उन्हें कोर्ट के डाइरेक्टरों के पास भेजने के लिए बंगाल के श्रीमान् गवर्नर की आज्ञा हुई है। इन कागज़ों में श्रीमान् गवर्नर का कॉलेज तोड़ने का आज्ञा-पत्र और उसके स्थान पर बोर्ड ऑव ऐग्ज़ामिनर्स का विधान भी था। यंग के पत्र में जिन कागज़ों[6] की ओर संकेत है

---

[1] नं० १२१०

[2] वही, नं० ८१२, ओ० सी० नं० १९, पृ० १८९-१८६

[3] वही, नं० ११८९, ओ० सी० नं० १६, पृ० १८७

[4] मद्रास और बंबई, नं० १००१, १००२, ओ० सी० नं० १७; उत्तर-पश्चिम प्रांत, नं० १०००, ओ० सी० नं० १८, पृ० १८७

[5] फ़ोर्ट विलियम, २४ फ़रवरी, १८५४, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, होम डिपार्टमेंट, फ़रवरी, १८५४, पत्र नं० ३०८, ओ० सी० नं० १३, पृ० २४०

[6] १, बंगाल के गवर्नर का आज्ञा पत्र, २४ जनवरी, १८५४।

(२) सदर अदालत के जज सर आर० बार्लो के नाम पत्र, २४ जनवरी, १८५४, नं० १२१।

(३) ए० जे० एम० मिल्स, एच० रिकेट्स, ओ० डी० ट्रेवोर, ए० ग्रोट, ई० ई० [illegible] मौलवी मुहम्मद वाजिद और पं० ईश्वरचंद्र शर्मा के नाम पत्र, २४ जनवरी, १८५४ नं० क्रमशः १२६,४०,१२६,१२६,१२६,१२६,१२६। [illegible] नं० १२६

कॉलेज तोड़ देने की सरकारी आज्ञा।

उनमें से केवल बंगाल के गवर्नर का आज्ञा-पत्र और बोर्ड का विधान ही हमारे लिए महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अन्य पत्रों में बोर्ड के सदस्यों को उन्हें दिए गए पदों की सूचना मात्र है। बंगाल के गवर्नर का आज्ञा-पत्र केवल एक पंक्ति में है :

The College of Fort William is abolished.[४]

अर्थात्

मैं फ़ोर्ट विलियम कॉलेज तोड़ने की आज्ञा देता हूँ।

इसके स्थान पर गवर्नर ने बंगाल सिविल सर्विस के नए कर्मचारियों के लिए फ़ोर्ट विलियम प्रेसीडेंसी (अहाते) में प्रचलित भाषाओं के परीक्षा-संबंधी नियम बनाए। कॉलेज के मंत्री और परीक्षकों के स्थान पर पब्लिक सर्विस की स्थापना की गई जिसका कर्त्तव्य नौकरी पर भेजने से पूर्व सिविलियन कर्मचारियों की भाषा-संबंधी योग्यता घोषित करना था।

बोर्ड ऑव एग्ज़ामिनर्स की स्थापना, उसका विधान और पाठ्यक्रम

बोर्ड ऑव एग्ज़ामिनर्स में गवर्नर ने एक सभापति, अनिश्चित संख्या में पदहेतुक अथवा अन्य सदस्य और एक मंत्री (जो बोर्ड का सदस्य भी हो) रखने की व्यवस्था की और सभापति को उपसमिति निर्माण करने का अधिकार दिया। उन्होंने बंगाल के प्रत्येक सिविलियन कर्मचारी को भारतागमन पर बोर्ड के मंत्री को सूचित करने और तत्कालीन बंगाल तथा बिहार (Lower Provinces) के लिए बंगला और उर्दू, तथा उत्तर-पश्चिम प्रांतों और पंजाब के लिए फ़ारसी और हिंदी में योग्यता प्राप्त करने का अनिवार्य नियम रक्खा। भारत आने पर हर्टफ़र्ड में प्राप्त भाषा-संबंधी शिक्षा की दुबारा परीक्षा लेने, प्रत्येक मास के प्रारंभ में एक सामान्य परीक्षा तथा बीच-बीच में भी परीक्षा लेने, प्रारंभिक सामान्य परीक्षा के बाद त्रैमासिक परीक्षा के समय तक अथवा उससे पहले प्रत्येक विद्यार्थी को एक भाषा की योग्यता-परीक्षा में सफल होने, पहली त्रैमासिक परीक्षा के तीन मास बाद दूसरी भाषा की परीक्षा में असफल रहने पर विद्यार्थी को देश के किसी भीतरी भाग के सरकारी पदाधिकारी की अध्यक्षता में रहने और वहाँ पर भी उसे अपना अध्ययन जारी रखने का उन्होंने विधान रक्खा। किंतु प्रारंभिक परीक्षा के बाद अठारह महीने के अन्दर दोनों भाषाओं में योग्यता प्राप्त न कर सकने पर कर्मचारी को नौकरी से अलग कर दिया जा सकता था। उन्होंने ऑनर्स परीक्षा के संबंध में एक भाषा के लिए बारह महीने और दो या अधिक भाषाओं के लिए अठारह महीने की अवधि निश्चित की।

---

(४) डॉ० ए० स्प्रेंगर और रेव० के० एम० बनर्जी के नाम पत्र, २४ जनवरी, १८५४, नं० क्रमशः १२९, ३१।

(५) फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के मंत्री के नाम पत्र, २४ जनवरी, १८५४ नं० १२२।

(६) उत्तर-पश्चिम प्रांतों के सरकारी मंत्री के नाम पत्र, २८ जनवरी, १८५४,

किसी भी कर्मचारी के साठ महीने के अंदर एक भाषा में 'सर्टिफ़िकेट ऑव हाई प्रौफ़ीशेंसी' की उपाधि प्राप्त करने में असमर्थ रहने पर दूसरी भाषा में ऑनर्स उपाधि प्राप्त करने की आज्ञा नहीं मिल सकती थी। ऑनर्स के लिए उन्होंने पहली भाषा प्रदेश विशेष की भाषा रक्खी, जैसे, बंगाल के लिए बँगला और उत्तर-पश्चिम प्रांतों और पंजाब के लिए हिंदी या उर्दू। निश्चित अवधि पूर्ण करने के बाद कर्मचारी किसी भी प्राचीन मृत अथवा जीवित भाषा का अध्ययन कर सकता था। विभिन्न भाषाओं में योग्यता प्राप्त करने की कसौटी इस प्रकार रक्खी गई :

१. निम्नलिखित पुस्तकों से लिए गए उद्धरणों का तुरंत और ठीक-ठीक अर्थ बताना :[1]

उर्दू—'बाग़ोबहार' और 'इख़्वानुस्सफ़ा'

हिंदी—'प्रेमसागर'

२ परीक्षा-पुस्तकों से न लिए गए किसी उद्धरण का ठीक-ठीक सरल विवरणात्मक ढंग से अँगरेज़ी में अनुवाद करना।

३. सरल विवरणात्मक ढंग से स्पष्ट और व्याकरण के नियमानुसार अँगरेज़ी पत्र का उस भाषा में अनुवाद करना जिसमें परीक्षा ली जा रही हो।

४. अँगरेज़ी वाक्यों का अनुवाद करना।

हाई प्रौफ़ीशेंसी की परीक्षा के लिए निम्नलिखित क्रम रक्खा गया :

१. (योग्यता परीक्षा के नं० १ के समान)

हिंदुस्तानी या उर्दू—१. 'बाग़ोबहार'
२. 'इख़्वानुस्सफ़ा'
३. 'गुल-इ-बकावली'
४. 'बैताली पच्चीसी'

हिंदी—१. 'राजनीति'
२. 'प्रेमसागर'
३. 'ब्रज (? सभा) विलास'

२ योग्यता परीक्षा की भाँति अँगरेज़ी से और अँगरेज़ी में अनुवाद करना, किंतु अधिक कठिन पत्रों से और ठीक-ठीक मुहावरों और भाषा में।

ऑनर्स की उपाधि के लिए निम्नलिखित क्रम रक्खा गया :

१. (योग्यता परीक्षा के नं० १ के समान)

हिंदुस्तानी या उर्दू—१. 'बाग़ो बहार'
२. 'इख़्वानुस्सफ़ा'
३. 'ख़िर्द अफ़रोज़'

[1] फ़ारसी, बँगला और संस्कृत के परीक्षा-क्रम का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया

४. 'कुल्लियात-इ-सौदा'
५. 'प्रेमसागर'
हिंदी—१. 'प्रेमसागर'
२. 'सभा विलास'
३. तुलसी कृत 'रामायण'
४. 'बाग़ोबहार'

२. पाठ्य-पुस्तक छोड़ कर अन्य किसी कठिन पुस्तक से गद्य और पद्य के चुने हुए दो अवतरणों का अँगरेज़ी में ठीक-ठीक अनुवाद करना।

३. अँगरेज़ी के किसी कठिन अवतरण का ठीक-ठीक, परिमार्जित और सुव्यवस्थित शैली में नितांत शुद्ध वाक्य-योजना सहित और व्याकरण के नियमानुसार अनुवाद करना।

४. देशी भाषाओं में ठीक-ठीक और धारा-प्रवाह बात करना।

डिग्री ऑव ऑनर की परीक्षा का उद्देश्य परीक्षार्थियों के वास्तविक गुणों और उनकी प्रतिभा से परिचय प्राप्त करना था। अतएव इस संबंध में उनसे मौखिक और लिखित परीक्षाओं में पूर्ण ज्ञान का उदाहरण प्रस्तुत करने की आशा की गई।

इन नियमों के अतिरिक्त बोर्ड के विधान में पुरस्कार, अनुशासन, पुस्तकालय आदि विषयक नियम भी रक्खे गए। विद्यार्थी अपने अध्ययन की भाषा जानने वाला एक मुंशी या पंडित रख सकता था। विद्यार्थी से लिया हुआ प्रमाण-पत्र दिखाने पर ही मुंशी या पंडित को बोर्ड का मंत्री वेतन दे सकता था। किंतु ये मुंशी या पंडित वे ही लोग हो सकते थे जिनकी बोर्ड परीक्षा ले चुका हो और फलतः जिन्हें पहले बोर्ड की ओर से योग्यतासूचक प्रमाण-पत्र मिल चुका हो। चार विद्यार्थियों के लिए एक महीने में एक मुंशी या एक पंडित से अधिक मुंशी या पंडित रखने का नियम नहीं था। मुंशियों और पंडितों के लिए अँगरेज़ी का ज्ञान आवश्यक समझा गया। देश के भीतरी भागों में कलक्टर भी मुंशी या पंडित चुन कर बोर्ड के मंत्री के नाम में वेतन दे सकता था।[1] निम्नलिखित व्यक्ति बोर्ड के पदाधिकारी नियुक्त किए गए :

सभापति—सर रॉबर्ट बार्लो, सदर अदालत के जज
सदस्य—ए० जे० एम० मिल्स (Milles)
एच० रिकेट्स

बोर्ड ऑव रेवेन्यू के सदस्य

पदहेतुक सदस्य—सी० बी० ट्रेवोर
ए० ग्रोट, बोर्ड ऑव रेवेन्यू के स्थानापन्न मंत्री
पदहेतुक सदस्य—सी० टी० बकलैंड, सदर अदालत के रजिस्टर
पदहेतुक सदस्य—लेफ़्टिनेंट डब्ल्यू० एन० लीज़ (Lees), बयालीसवाँ रेजीमेंट, नेटिव इन्फ़ैंट्री

---

[1] वही पृ० २९०-२९५

सहायक सर्जन ए० स्प्रेंगर, एम० डी०
मौलवी मुहम्मद वाजिब
पं० ईश्वरचन्द्र शर्मा, और
रेव० कृष्णकुमार बनर्जी

मंत्री—लेफ्टिनेंट डब्ल्यू० एन० लीज़, बयालीसवीं रेजीमेंट, नेटिव इन्फैंट्री[1] बंगाल के सरकारी मंत्री, सी० बीडन, ने इन सभी सज्जनों तथा सिविल ऑडीटर को २४ जनवरी, १८५४ को नियमानुसार सूचना भेज दी।[2] कॉलेज के मंत्री को लिखते समय उन्होंने उनके कुछ पत्रों का भी उल्लेख कर दिया था।[3]

---

[1] वही, पृ० २४५
[2] नं० २३७
[3] वही, पृ० २४५-२४८
पत्र नं० ३३७, ११ अक्तूबर, १८५२
२०, १७ जनवरी १८५३
१८५, १४ मार्च १८५३

उपसंहार

भारत में अँगरेजी राज्य और आधुनिकता के प्रतीक-स्वरूप फोर्ट विलियम कॉलेज का भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। अँग्रेजी राज्य की नींव दृढ़ करने में तो उसने योग दिया है, किंतु शिक्षा एवं साहित्य संबंधी क्षेत्र में भी ऐसी सुसंगठित और केन्द्रीय संस्था का निर्माण भारत में पहले कभी न हुआ था। वेलज़ली की मूल बृहत् आयोजना के अनुसार ही यदि कॉलेज की स्थापना हो जाती तो निस्संदेह वह संसार की एक महान संस्था के रूप में स्मरण किया जाता। वेलज़ली की आर्थिक नीति से असंतुष्ट होकर कोर्ट के डाइरेक्टरों ने उसे केवल बंगाल सेमिनरी के रूप में रहने दिया किंतु इस छोटे से रूप में उसने जो कार्य किया वह ही उसे गौरव प्रदान करने के लिए यथेष्ट है।

भारतीय इतिहास में कॉलेज

कॉलेज के आश्रय में रह कर अनेक विदेशी तथा भारतीय विद्वानों ने चीनी तथा अन्य पूर्वीय भाषाओं में ही नहीं वरन् अरबी, फ़ारसी, और संस्कृत, बंगला, मराठी, हिंदुस्तानी, तामिल, पंजाबी आदि भारत की विभिन्न भाषाओं में कोष व्याकरण इतिहास, काव्य, धर्मशास्त्र, आईन, धर्म, अर्थशास्त्र, विज्ञान, राजनीति, आदि विविध विषय संबंधी मूल तथा संस्कृत, फ़ारसी और अरबी से अनुवाद ग्रंथ प्रस्तुत किए। प्राचीन कवियों की रचनाओं का अध्ययन और उनका सुथरे रूप में संपादन भी कॉलेज के साहित्यिक जीवन का प्रधान अंग था। मूल रचनाओं के द्वारा भारत की विभिन्न भाषाओं के गद्य और पद्य साहित्य की अनेक नए-नए विषयों, भावों और शब्दों के प्रचार से वृद्धि हुई। प्रेस की सहायता से इस नए साहित्य का—प्रधान रूप से गद्य साहित्य का—प्रचार और भी तीव्र गति से हुआ। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पहले भारतीय भाषाओं में प्रायः सरकारी नोटिस और विज्ञापन ही अँग्रेजी पत्रों में प्रकाशित हुआ करते थे। कॉलेज में भारतीय साहित्यों का प्रेस से संबंध स्थापित हुआ और आधुनिकता की जड़ जमी। पर आधुनिकता विभिन्न कोष, व्याकरण, आदि जैसी रचनाओं तथा तुलसी, बिहारी और निवाज की रचनाओं के प्रकाशन के अतिरिक्त टाइप और विराम-चिन्ह प्रस्तुत करने में भी है। इस दृष्टि से भी कॉलेज का भारत की आधुनिक भाषाओं के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। और इन्हीं कारणों से भारत के कई साहित्यों के इतिहास-ग्रंथों में उसका उल्लेख करना अनिवार्य हो जाता है।

कॉलेज का भारतीय साहित्यों के इतिहास में महत्त्व

लल्लूलाल और सदल मिश्र की रचनाओं के नाते हिंदी साहित्य के इतिहास में कॉलेज का उल्लेख किया जाता है उल्लेख करना आवश्यक भी है साथ ही कु

कॉलेज और हिंदी साहित्य

विदेशी तथा उनके आधार पर भारतीय विद्वानों के कथनानुसार कॉलेज में आधुनिक हिंदी भाषा और गद्य का भी जन्म हुआ। यह एक ऐसा कथन है जिसके आधार पर अब तक के इतिहास लेखक हिंदी साहित्य के इतिहास में कॉलेज का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान निर्धारित करते आए हैं, किंतु कॉलेज के इतिहास का अध्ययन कर लेने के बाद इस विषय पर अब फिर से विचार करने की आवश्यकता है।

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का हिंदी भाषा और साहित्य के इतिहास में क्या महत्व है, इस संबंध में दो बातें प्रधान रूप से विचारणीय हैं। पहली बात गद्य-ग्रंथों की है, और दूसरी बात भाषा की।

कॉलेज और खड़ी बोली हिंदी गद्य

हिंदी साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी यह जानता है कि उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व काव्य का एकाधिपत्य रहते हुए भी हिंदी में समय-समय पर गद्य लिखा जाता रहा है। ब्रजभाषा, राजस्थानी और खड़ीबोली गद्य की एक क्षीण धारा सदैव हमारे साहित्य में विद्यमान रही है। ये गद्य रचनाएँ स्फुट रूप में ही नहीं वरन् स्वतंत्र ग्रंथों के रूप में भी मिलती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में तथा उसके आसपास विशेष राजनीतिक परिस्थितियों के कारण खड़ीबोली और उसके गद्य को प्रोत्साहन मिला और ब्रजभाषा तथा राजस्थानी का ह्रास प्रारंभ हुआ। अस्तु, उन्नीसवीं शताब्दी अथवा फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पूर्व हिंदी में गद्य-ग्रंथ विद्यमान थे। दूसरी बात यह कही जाती है कि लल्लूलाल और सदल मिश्र से पहले किसी ने खड़ीबोली में गद्य-रचना का निर्माण नहीं किया था। किंतु यह कथन भी निर्मूल है। लल्लूलाल और सदल मिश्र से पूर्व अन्य अनेक लेखकों के अतिरिक्त रामप्रसाद निरंजनी, दौलतराम और सदासुखलाल खड़ीबोली में ग्रंथ-रचना कर चुके थे। इसलिए कॉलेज के संरक्षण में निर्मित हुए खड़ीबोली गद्य-ग्रंथों से पूर्व हिंदी में खड़ीबोली गद्य-ग्रंथों की रचना हो चुकी थी। इस संबंध में कॉलेज ने हिंदी साहित्य में कोई नवीनता उत्पन्न नहीं की।

हिंदी गद्य-परंपरा में लल्लूलाल और सदल मिश्र : विषय

ग्रंथों के संबंध में विषय की दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है। लल्लूलाल द्वारा निर्मित ग्रंथों में हमें 'शकुंतला' (नाटक), 'माधोनल', 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'राजनीति', 'प्रेमसागर', 'सभा विलास', 'नक़्लियात या लतायफ़-इ-हिंदी' और ब्रजभाषा व्याकरण का, और सदल मिश्र कृत ग्रंथों में 'नासिकेतोपाख्यान या चंद्रावती' और अध्यात्म रामायण के खड़ीबोली अनुवाद का उल्लेख मिलता है। लल्लूलाल के पहले चार ग्रंथ उनकी स्वतंत्र रचनाएँ नहीं हैं। मज़हर अली ख़ाँ विला और काज़िम अली जवाँ की सहकारिता से उन्होंने इन ग्रंथों की रचना की थी। ये दोनों मुसलमान मुंशी ब्रजभाषा से परिचित नहीं थे। लल्लूलाल स्वयं रेख़ता या उर्दू [illegible] अनुवाद कार्य में विला और जवाँ की सहायता की

थी। चारों ग्रंथ हैं भी रेख़ता में न कि हिंदी में।[1] 'राजनीति' हितोपदेश का ब्रजभाषा अनुवाद है। 'प्रेमसागर' भागवत के दशम स्कंध का खड़ीबोली अनुवाद है। 'नक़्लियात' संग्रह ग्रंथ है। इसलिए यह ग्रंथ हमारे लिए अधिक महत्व नहीं रखता। अस्तु, विषय की दृष्टि से लल्लूलाल कोई नवीन ग्रंथ हमारे सामने प्रस्तुत नहीं करते अर्थात् रामप्रसाद निरंजनी, दौलतराम और सदासुखलाल की भाँति ही लल्लूलाल के ग्रंथ भी चिरपरिचित पौराणिक और संस्कृत साहित्य से अनूदित विषय लेकर ही हमारे सामने आते हैं। सदल मिश्र के खड़ीबोली ग्रंथों के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। उनका विषय भी कोई नवीन दृष्टिकोण उपस्थित नहीं करता। विषय की दृष्टि से तो इंशा का अधिक महत्व है। चारण काल में जो स्थान अमीर ख़ुसरो का था, वही स्थान उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य साहित्य के इतिहास में इंशा का मानना चाहिए। दोनों ही ने चिरपरिचित साहित्यिक रूपों से पृथक् मनोरंजक साहित्य की सृष्टि की। विषय की दृष्टि से लल्लूलाल के ब्रजभाषा व्याकरण का महत्व अवश्य मान्य है 'राजनीति' का तो भाषा की दृष्टि से भी कोई विशेष स्थान नहीं माना जा सकता। 'सभाविलास' केवल एक संग्रह ग्रंथ है।

तात्पर्य यह है कि फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना और लल्लूलाल तथा सदल मिश्र की रचनाओं से पहले हिंदी में गद्य-ग्रंथ थे, खड़ीबोली में गद्य-ग्रंथ थे, और विषय

---

[1] ब्रिटिश म्यूज़ियम में 'शकुंतला नाटक' और 'क़िस्सा माधोनल कामकंदला' की जो हस्तलिखित पोथियाँ सुरक्षित हैं उनमें भाषा का यह रूप है:

> ख़ुदा का नाम ले पहले ज़बाँ पर
> धरा फिर दिल को अपने दास्ताँ पर
>
> परी हो या इंसान किसी को क्या ताब जो उसके शाहिद हुस्न
> ओ सना के हुस्न ओ जमाल पर कर सके निगाह कमाल "'
>
> —'शकुंतला नाटक', फ़ारसी लिपि में
>
> 'हम्द आ सना बे पायान लायक़ उस अफ़्रीदगार के है कि'''
>
> —'क़िस्सा माधोनल कामकंदला', फ़ारसी लिपि में

ये दोनों ग्रंथ नागरी लिपि में भी प्रकाशित हुए थे, किंतु नागरी संस्करणों के संबंध में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। संभवतः नागरी और फारसी लिपियों में प्रकाशित दोनों संस्करणों की भाषा समान हो, जैसा कि विभिन्न कथनों से अनुमान लगाया जा सकता है। फ़र्रुख़सियर (१७१३-१७१९) के एक सेनापति फ़िदा ख़ाँ के पुत्र मूले ख़ाँ की आज्ञा से निवाज कवीश्वर ने कालिदास के ग्रंथ का ब्रजभाषा में अनुवाद किया था। गिलक्राइस्ट की आज्ञा से उसी ग्रंथ का हिंदुस्तानी या रेख़्ता में काज़िम अली 'जवाँ' ने अनुवाद किया। लल्लूलाल की सहायता से उन्होंने ग्रंथ का संशोधन किया था। मोतीराम कवीश्वर की ब्रजभाषा रचना 'माधवानल कामकंदला' का अनुवाद मज़हर अली ख़ाँ 'विला' ने लल्लूलाल की सहायता से हिंदुस्तानी या रेख़्ता में किया

भी नहीं थे इसलिए यह कहना कि फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में ही खड़ीबोली हिंदी गद्य का सर्वप्रथम शिलान्यास हुआ युक्ति-सगत नहीं है।

भाषा : लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर' की भाषा का प्रधान उद्देश्य

भाषा के संबंध में दो बातें कही जाती हैं। एक तो यह है कि कॉलेज से पहले खड़ीबोली में कोई रचना नहीं थी, और दूसरे यह कि लल्लूलाल ने गिलक्राइस्ट की आज्ञानुसार अरबी-फ़ारसी शब्द निकाल कर आधुनिक संस्कृत-गर्भित हिंदी को जन्म दिया अधिक विस्तार में न जाकर यहाँ इतना कह देना काफ़ी है कि रामप्रसाद निरंजनी और दौलतराम इन दोनों ही भ्रांतियों का एक साथ निराकरण करते हैं। हाँ, लल्लूलाल के 'यामिनी भाषा छोड़' शब्दों ने आगे चल कर दो विचारधाराएँ उत्पन्न कीं और वे दोनों विचारधाराएँ भ्रमपूर्ण हैं। आधुनिक काल में 'हिंदुस्तानी' या अरबी-फ़ारसी शब्दावली से युक्त खड़ीबोली के पक्षपातियों का यह कहना कि लल्लूलाल ही ने अरबी-फ़ारसी शब्दों का बहिष्कार कर आधुनिक संस्कृत गर्भित हिंदी को जन्म दिया, अन्यथा ऐसी हिंदी का पहले कोई अस्तित्व नहीं था, और, दूसरी ओर, हिंदी लेखकों का यह विचार कि अरबी-फ़ारसी तथा अन्य आधुनिक विदेशी—प्रचलित अथवा अप्रचलित—शब्दों का बहिष्कार कर ही शुद्ध हिंदी लिखी जा सकती है, लल्लूलाल के शब्दों के कारण ही है। वास्तव में गिलक्राइस्ट की आज्ञानुसार उन्होंने 'प्रेमसागर' की उस भाषा में रचना की जो मुसलमानी आक्रमण से पहले हिंदू जनता में प्रचलित थी, जिसमें संस्कृत तत्व ही प्रधान था और जो 'हिंदुस्तानी' या उर्दू का प्रधान आधार थी। इसीलिए प्रेमसागर की भाषा पर 'भाखा' का भी इतना प्रभाव है। लल्लूलाल का यह ग्रंथ न केवल विषय की दृष्टि से, (क्योंकि सदल मिश्र के ग्रंथ की अपेक्षा इससे विद्यार्थियों को हिंदू आचार-विचारों का अच्छा परिचय मिल सकता था) वरन् भाषा की दृष्टि से भी प्रधानतः कॉलेज के विद्यार्थियों के लाभार्थ था—दूसरे शब्दों में, उन्हें 'हिंदुस्तानी' या उर्दू की आधार-स्वरूप भाषा का ज्ञान कराने के लिए। इससे अधिक प्रेमसागर की भाषा का कोई विशेष महत्व नहीं था। उसकी रचना एक विशेष दृष्टिकोण से हुई थी। उन्नीसवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में भारतेंदु ने हिंदी की जातीय शैली का दिग्दर्शन कराया। किंतु लल्लूलाल के शब्दों का प्रभाव अभी तक दूर नहीं हुआ।

कॉलेज में प्रयुक्त लिपि और भाषा : लिपि

प्रश्न यह है कि स्वयं कॉलेज ने खड़ीबोली के किस रूप को आश्रय दिया। इस संबंध में विचार करने से पूर्व दो बातें तो निश्चित रूप से जान लेनी चाहिए। एक यह कि कॉलेज की स्थापना शासन-संबंधी और सैनिक दृष्टि से हुई था। दूसरे यह कि कॉलेज में फ़ारसी और नागरी दोनों लिपियाँ ग्रहण की गईं। फ़ारसी लिपि का तो उस समय प्रचार था ही। नागरी लिपि का व्यवहार नैपाल, कुमायूँ, गढ़वाल, राजस्थान, बुंदेलखंड, आदि के राजकीय कार्यों तथा देशी महाजनों के कारबार में होता था कैथी लिपि और नागरी लिपि में कोई विशेष अंतर नहीं था स्वयं गिलक्राइस्ट रोमन लिपि के पक्षपाती थे और इस संबंध में उन्होंने प्रयोग भी किए

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में रचित ग्रंथों में से हिंदी भाषा एवं साहित्य की दृष्टि से लल्लूलाल और सदल मिश्र के ग्रंथों का महत्व है। कॉलेज के पठन-पाठन और उसकी भाषा-नीति की दृष्टि से जॉन बोर्थविक गिलक्राइस्ट के ग्रंथ ही विचारणीय हैं, क्योंकि माऊट, टेलर, और प्राइस में से टेलर और प्राइस के कोषों के अतिरिक्त उनकी किसी ऐसी कृति का उल्लेख नहीं मिलता जो हमारे विषय से संबंध रखती हो। वास्तव में ग्रंथ रचना की दृष्टि से गिलक्राइस्ट के अतिरिक्त अन्य किसी प्रधानाध्यापक का नाम उल्लेखनीय भी नहीं है।

अथवा : भाषा के अध्ययन की दृष्टि से गिलक्राइस्ट के ग्रंथों का महत्त्व

लल्लूलाल और सदल मिश्र के ग्रंथों पर भाषा और विषय की दृष्टि से संक्षेप में विचार किया जा चुका है।

जिस समय गिलक्राइस्ट भारतवर्ष आए उस समय कंपनी फ़ारसी भाषा का प्रयोग करती थी। उच्च पदाधिकारियों की सुविधा के लिए दुभाषिए रक्खे जाते थे। किंतु गिलक्राइस्ट ने फ़ारसी के स्थान पर हिंदुस्तानी का चलन अधिक देखा। इसलिए उन्होंने कंपनी के कर्मचारियों में हिंदुस्तानी भाषा का प्रचार करना आवश्यक समझा। स्वयं हिंदुस्तानी का अध्ययन कर लेने के बाद कर्मचारियों की सुविधा के लिए उन्होंने कई ग्रंथ बनाए। उनका सबसे पहला ग्रंथ 'ए डिक्शनरी, इँगलिश ऐंड हिंदुस्तानी' (१७८७-१७९०) है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में विस्तृत भूमिका है जिसमें उन्होंने कोष के निर्माण की कहानी दी है और भाषा-संबंधी विचार व्यक्त किए हैं। इसके बाद हिंदुस्तानी शब्दों का अँगरेज़ी में अर्थ है। हिंदुस्तानी शब्द-संख्या का अधिकांश अरबी और फ़ारसी भाषाओं से लिया गया है, यद्यपि कहीं-कहीं लेखक ने अरबी-फ़ारसी शब्दों के पर्यायवाची सरल 'हिंदवी' शब्द भी दे दिए हैं। कोष में फ़ारसी लिपि का प्रयोग किया गया है। १७९६-१७९८ में गिलक्राइस्ट कृत 'ए ग्रैमर ऑव दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज' नामक रचना प्रकाशित हुई। इस व्याकरण के सिद्धांत तो 'हिंदवी' पर आधारित हैं, किंतु और सब बातें हिंदुस्तानी (या उर्दू) की हैं। उदाहरण के लिए, छंद उन्होंने 'फ़ाइलुन', 'फ़ाइलातुन', 'मफ़ाइलुन', 'फ़ाइलात', आदि चुने हैं। फ़ारसी या अरबी लिपि के उन्होंने 'नस्तालीक़', 'नस्ख', 'शिकस्तआमेज़', 'शिकस्ता', 'शफ़ीआ' और 'शुल्स' भेदों का उल्लेख किया है। पारिभाषिक शब्दावली अरबी-फ़ारसी या उर्दू से ग्रहण की गई है। उद्धरण उर्दू साहित्य से चुने गए हैं और वली, दर्द, ताबाँ, मिस्कीन, अफ़ज़ल, जुरत, मीर, सौदा, बेदार, आदि की हिंदुस्तानी कवियों में प्रधान रूप से गणना की है। १७९८ में 'दि ऑरिएंटल लिंग्विस्ट' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें 'दि रुडीमेंट्स ऑव दि हिंदुस्तानी टंग' (हिंदुस्तानी भाषा की मूल बातें) नामक एक छोटा-सा ग्रंथ भी शामिल है। इसके अतिरिक्त साहबों के लिए हिंदुस्तानी में 'डायलॉग्ज़' (बातचीत), 'मिलिटरी टर्म्स' (फ़ौजी शब्दावली), 'आर्टिकिल्स ऑव वार' (फ़ौजी क़ानून), 'टेल्स ऐंड ऐनेकडोट्स' (क़िस्से कहानियाँ) 'ओब्स' (कविताएँ), रेख़्ता और ग़ज़ल के रूप में हिंदुस्तानी रचना के उदाहरण दिए गए हैं 'वोकैब्यूलरी इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी (अँगरेज़ी

हिंदुस्तानी शब्दावली, १७९८ और १८०२ वाले नाना संस्करण में हैं। १८०२ के संस्करण में पारिभाषिक शब्द, हिंदुस्तानी गिनती, दिन, आदि कुछ नए विषय के अतिरिक्त कुछ नई कविताएँ और कहानियाँ भी जोड़ दी गई हैं। उदाहरणों की भाषा में 'सोभा', 'निर्बल', 'चतुर', 'कठिन', 'लगभग', 'लजाना', 'पात', 'नगर', आदि शब्द अवश्य मिल जाते हैं, किंतु अधिकांश शब्द अरबी-फ़ारसी या उर्दू के हैं। क़िस्से-कहानियों की भाषा में प्रयुक्त होने के कारण ये शब्द सरल अवश्य हैं, यद्यपि कठिन शब्दों का बिल्कुल अभाव नहीं है। वाक्य-विन्यास भी उर्दू का है। १८०२ के संस्करण में अँगरेज़ी पारिभाषिक शब्दों का हिंदुस्तानी अनुवाद इस प्रकार किया गया है: Abbreviation = इख़्तसार, Abstract = ख़ुलासा या इंतिख़ाब, Accusative = मफ़ऊल, Adjective = सिफ़त, Adverb = हर्फ़ जर्फ़ या तमीज़, Adverb of time = ज़र्फ़ ज़मान, Adverb of place = ज़र्फ़ मुकान, Allegory = मजाज़, Article = हर्फ़ या इस्म, Case = हालत, Compound = मुरक्कब, Declinable = मुतसरिफ़, Future = इस्तक़बाल या मुस्तक़बिल, Grammar = सर्फ़-ओ-नहो या क़ायदा क़वानीन, Hyperbole = मुबालग़ा, Plural = जमा, आदि। १८०२ में प्रकाशित, 'दि स्ट्रेंजर्स ईस्ट इंडियन गाइड' हिंदुस्तानी व्याकरण है। इसी वर्ष प्रकाशित 'दि हिंदी डाइरेक्टरी' भी हिंदुस्तानी व्याकरण है, किंतु 'गाइड' से कुछ थोड़ा-सा अंतर है। १८०२ में ही प्रकाशित 'दि हिंदी मैनुअल' गिलक्राइस्ट की मौलिक रचना नहीं है, किंतु कॉलेज के हिंदुस्तानी विद्यार्थियों के लिए प्रधानतः सरकारी आश्रय में रहे हिंदुस्तानी कवियों और मुंशियों की रचनाओं के चुने हुए अंशों का संग्रह है—मीर बहादुर अली कृत 'अख़्लाक़-इ-हिंदी', मीर अब्दुल्ला कृत 'मर्सिया', जवाँ और लल्लूलाल कृत 'सिंहासन बत्तीसी', विला और लल्लूलाल कृत 'माधोनल', जवाँ और लल्लूलाल कृत 'शकुंतला नाटक', विला और लल्लूलाल कृत 'बैताल पच्चीसी', मीर हैदर बख़्श कृत 'तोता कहानी', मीर अम्मन कृत 'बाग़ोबहार', मीर बहादुर अली कृत 'नस्र-इ बेनज़ीर', और मीर शेर अली कृत 'बाग़-इ-उर्दू'। इन रचनाओं को विभिन्न शैलियों का संग्रह गिलक्राइस्ट ने विद्यार्थियों के लाभ के लिए किया था। १८०२-१८०३ में प्रकाशित 'नक़्लियात-इ-हिंदी' या 'दि हिंदी स्टोरी टेलर', दो जिल्द, में गिलक्राइस्ट ने बड़े मनोरंजक ढंग से हिंदुस्तानी भाषा में लिखित विभिन्न कहानियों तथा अन्य रचनाओं के माध्यम द्वारा रोमन, फ़ारसी और नागरी लिपियों की तुलनात्मक उपयोगिता प्रदर्शित की है। इस ग्रंथ की दूसरी जिल्द का द्वितीय संस्करण १८०६ में प्रकाशित हुआ। १८०३ में प्रकाशित 'दि हिंदी मोरल प्रीसेप्टर' या 'अतालीक़ इ-हिंदी' में फ़ारसी-विद्वान् के हिंदुस्तानी सीखने के लिए और हिंदुस्तानी जानने वाले के फ़ारसी सीखने के लिए सरल व्याकरण है। यह गिलक्राइस्ट की मौलिक रचना नहीं है। उनकी अध्यक्षता में हिंदुस्तानी विभाग के देशी विद्वानों द्वारा अनुवाद, संग्रह, आदि के रूप में ग्रंथ निर्मित हुआ था। इसी वर्ष प्रकाशित 'दि ऑरिएंटल फ़ैब्यूलिस्ट' भी गिलक्राइस्ट की मौलिक रचना नहीं है। यह विभिन्न देशी विद्वानों द्वारा हिंदुस्तानी, फ़ारसी, अरबी, ब्रजभाषा, बँगला और संस्कृत भाषाओं तथा रोमन लिपि में अनूदित ईसप तथा अँगरेज़ी भाषा से ली हुई अन्य अनेक पुरानी कहानियों का

विद्यार्थियों के लाभार्थ संग्रह-ग्रंथ हैं। १८०४ में प्रकाशित 'दि हिंदी-रोमन ऑर—थीपीग्रैफ़ीकल अल्टीमेटम' में शकुंतला की कहानी द्वारा गिलक्राइस्ट ने पूर्वीय और रोमन लिपियों की तुलनात्मक उपयोगिता दिखाई है। वास्तव में गिलक्राइस्ट के लिपि-संबंधी प्रयास रोमन लिपि की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए थे। इन मुख्य-मुख्य ग्रंथों के अतिरिक्त लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर' की भाँति अन्य अनेक ग्रंथों की रचना गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में हुई जिनसे हमारा कोई संबंध नहीं है।

इन ग्रंथों में से 'डिक्शनरी', 'ग्रेमर', 'लिंग्विस्ट', 'दि स्ट्रेंजर्स ईस्ट इंडियन गाइड', 'दि हिंदी डाइरेक्टरी', नक़लियात-इ-हिंदी या दि हिंदी स्टोरी टेलर' और 'दि हिंदी-रोमन ऑरथोग्रैफ़ीकल अल्टीमेटम' ही गिलक्राइस्ट की मौलिक रचनाएँ हैं, अन्य सभी संग्रह-ग्रंथ हैं। गिलक्राइस्ट के विचारों की दृष्टि से प्रथम तीन ग्रंथ तथा ओरिएंटल सेमिनरी का प्रथम 'जर्नल' (१७९९) सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

गिलक्राइस्ट के भाषा-संबंधी विचार

गिलक्राइस्ट के भाषा-संबंधी विचारों तथा उनके दिए हुए उदाहरणों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उनका हिंदुस्तानी से उस भाषा से तात्पर्य था जिसके व्याकरण के सिद्धांत, क्रिया-रूप, आदि तो हलहेड द्वारा कही जाने वाली विशुद्ध या मौलिक हिंदुस्तानी ('प्योर ऑर ओरिजिनल हिंदुस्तानी'), और स्वयं उन्हीं की शब्दावली में, 'हिंदवी' या 'बृजभाषा' के आधार पर स्थित थे, लेकिन जिसमें अरबी-फ़ारसी के संज्ञा-शब्दों का विशेष रूप से प्रयोग रहता था। यह भाषा केवल वे ही हिंदू और मुसलमान बोलते थे जो पढ़े-लिखे थे, और जिनका संबंध राज-दरबारों तथा कचहरियों से था, या जो सरकारी नौकर और उच्च श्रेणी के थे। लिखने में फ़ारसी लिपि का प्रयोग किया जाता था। हिंदुस्तानी को उन्होंने 'हिंदी', 'उर्दू', 'उर्दवी' और 'रेख़ता' भी कहा है। इनमें से केवल 'हिंदी' शब्द ही ऐसा है जो साहित्यिकों के मस्तिष्क में उलझन पैदा कर सकता है। गिलक्राइस्ट ने 'हिंदी' का 'हिंद की' के अर्थ में प्रयोग किया है, जो बिल्कुल ठीक है। हिंदुस्तानी भी हिंद की भाषा थी। गिलक्राइस्ट ने 'हिंदी' शब्द का अपने विचारानुसार हिंदुस्तानी के अर्थ में ही प्रयोग किया है। ग्राइस ने निश्चित रूप से 'हिंदी' शब्द का आधुनिक अर्थ में प्रयोग किया। किंतु गिलक्राइस्ट ने 'हिंदी' के स्थान पर 'हिंदुस्तानी' शब्द इसलिए पसंद किया ताकि 'हिंदवी' 'हिंदुई' (जिनका ठेठ हिंदी, 'भाखा' और 'खड़ीबोली' अर्थ में प्रयोग होता था) और 'हिंदी' शब्दों से, जो बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं, कोई गड़बड़ी पैदा न हो सके। 'हिंदवी' को वे केवल हिंदुओं की भाषा मानते थे। मुसलमानी आक्रमण से पहले यही भाषा उत्तरी भारत में प्रचलित थी, जो नागरी लिपि में लिखी जाती थी, जिसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग होता था, और जिसके आधार पर हिंदुस्तानी का भवन खड़ा हुआ था। इस प्रकार हिंदवी और हिंदुस्तानी के भेद के बाद गिलक्राइस्ट ने तीन प्रचलित शैलियाँ निर्धारित कीं—(१) दरबारी या फ़ारसी शैली, (२) हिंदुस्तानी शैली, और (३) हिंदवी शैली। फ़ारसी शैली के दुरूह होने और सर्वसाधारण की समझ में न आ सकने के कारण उन्हें अग्राह्य थी हिंदवी शैली को (जो जनसाधारण में सबसे

अधिक समझी जाती थी) व गवाँरू कह कर पुकारते थे उन्हें सिर्फ़ हिंदुस्तानी शैली पसंद आई जो, उनके मतानुसार, हिंदुस्तान क महान् लोकप्रिय बोली (द ग्रैंड पाप्युलर स्पीच आव हिंदुस्तान) थी। इस शैली में दक्षता प्राप्त करने लिए फ़ारसी भाषा और लिपि का ज्ञान अनिवार्य था (कॉलेज में फ़ारसी और हिंदुस्तानी का सदैव गठबंधन रहा)। वे स्वयं तो रोमन लिपि के कट्टर पक्षपाती थे, किंतु फ़ारसी लिपि के वे अधिक विरोधी नहीं थे, क्योंकि हिंदुस्तानी (या उर्दू) के पुराने कवियों, जैसे, मीर, दर्द, सौदा, आदि ने इसी लिपि का प्रयोग किया था। अच्छी हिंदुस्तानी लिखने के लिए उन्होंने फ़ारसी शब्दों का मिश्रण आवश्यक समझा। अच्छी हिंदुस्तानी के नमूने या तो सौदा की रचनाओं में या स्वयं गिलक्राइस्ट द्वारा निर्मित ग्रंथों में दिए गए हिंदुस्तानी भाषा के उदाहरणों मे या आया, खानसामा और मुंशी की भाषा मे मिल सकते थे। कोई हिंदू भी अच्छा 'हिंदुस्तानी मुंशी' बन सकता है, यह बात गिलक्राइस्ट मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने हिंदुस्तानी भाषा का यह सूत्र दिया है :

हिंदवी + अरबी + फ़ारसी = हिंदुस्तानी[1]

उदाहरण गिलक्राइस्ट की सहायता से प्रधान सेनापति के फ़ारसी भाषा के दुभाषिए, विलियम स्कॉट, ने १७९० में 'आर्टिकिल्स ऑव वार' का हिंदुस्तानी में अनुवाद किया था। 'लिंग्विस्ट' के दोनों संस्करणों में यह अनुवाद शामिल है। उसमें से एक अवतरण नीचे उद्धृत किया जाता है:

'पहली आईन आठवीं बाब की

'जिस वक़्त किसी ओहदेदार, या सिपाही पर, बड़े गुनाह की नालिश हो या किसू रय्यत के बदन या माल के कुछ विदत, या नुक़सान करने फ़रीआद होवे, जिसकी सज़ा रेजीमेंट, रिसाले, कंपनी या तईनाती मे वुह आसामी, या वे आसामी एलाक़ा रखते हों, जिन पर फ़रीआद हुई है; तौ ऊस ही के सर्दार, और ओहदेदारों को चाहिए, इस आईन के मुआफ़िक़ मुनासिब दरख्वास्त पर, ऊस फ़रीआदी या फ़रीआदियों से, या ऊन के तरफ़ से, कि अपनी मक़दूर भर ऊस आसामी या आसामियो को, जिन पर नालिश हुई है, मुल्क हाकिम को सौंपे';....(१७९०)

(रोमन लिपि)

'लिंग्विस्ट' में अन्य रचनाओं की भाषा इस प्रकार है :

'जो जड़ और डाल पात किसू क़िस्से के लोगों के दिलों पर बहुत असीर-पज़ीर है, तौ ऊस को थोड़ा ही सा उज़्र आदमीयों के सुनाने के लीए चहीए यिह कहानी भरी हुई है कई एक दिलरेश वारिदात से, कि नतीजा और तासीर मे ऊस की हम सब थोड़ा बहुत शरीक है'...(१७९८)

(रोमन लिपि)

---

[1] 'दि ओरिएंटल लिंग्विस्ट' भूमिका, पृ० १

अथवा

'यूं सुना है कि हिंद में किसी वक़्त एक पादशाही वकील था, उसे यिह ख़बर पहुँची, कि फ़लाने शहर का हाकिम बड़ा ज़ालिम था, सो मर गया; तब ऊसने दिल मे यिह मन्सूबा कीआ कि अपने ख़ासुलख़ास उमरा से जो बड़ा मुंसिफ़ हो, सो भेजा चाहीए, कि लोग वहाँ के फिर अज़ीयत न पावें ...' (१८०२)

(रोमन लिपि)

२५ फ़रवरी, १७९९ के 'जर्नल' में दिए गए उदाहरणों से भी उनकी भाषा का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, जैसे, 'हुक्म', 'हाकिम', 'अहकाम', 'हुक्मनामा', 'महकूम', 'मकमा', और 'हुकूमत'। यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि शब्दों का रूप-परिवर्तन उर्दू-व्याकरण के अनुसार है। १८०२-१८०३ में प्रकाशित 'नक़्लियात-इ-हिंदी या दि हिंदी स्टोरी टेलर' से एक उदाहरण इस प्रकार है :

'एक वज़ीर का बेटा नादान व कुंदज़हन था वज़ीर ने एक दाना के पास उसे भेजा और कहा कि इस लड़के को तरबियत कर शायद कि अक़्लमंद हो जावे चुनाचि दाना ने उसकी तालीम में बहुत सी कोशिश की पर कुछ फ़ायदा न हुआ पस लाचार होकर लड़के को उसके बाप के पास फेर भेजा और कहा कि तेरा बेटा आक़िल नहीं हुआ और मुझे दीवाना किया।'

(फ़ारसी लिपि)

इसी ग्रंथ में भाषा के निम्नलिखित उदाहरण भी मिल जाते हैं :

'कोई बनिया बटोही बाट भूल के एक बन में जा निकला विसे वहां और तो कोई न नज़र आया पर एक जोगी दिखाई दिया इसने उसे दंडवत करके पूछा नाथ जो आते हो कहां से और जाओगे कहां जवाब दिया बाबा हिंगलाज ज्वालामुखी हरिद्वार कुरुछेत्तर करके तो आता हूँ और काशी हो गंगा गोदावरी का मेला कर सेत-बन्दरामेश्वर को जाऊंगा बनिये ने कहा महाराज एक बात पूछूं जो ख़फ़ा न हो बोला बाबा एक नही दो कहा महाराज हम गिरहस्थी हैं जो देस देस फिरें तो कुछ दोष नहीं आप फ़क़ीर हो भटक भटक क्यों भरम गँवाते हो एक ठौर बैठकर किस लिये अपने भगवान का ध्यान नहीं करते कहा बाबा तूने यह कहावत नही सुनी

बहता पानी निर्मला बँधा गँधेला होय
साधू जन रमता भला दाग न लागै कोय'

(फ़ारसी लिपि)

किंतु एक तो ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं, दूसरे भाषा में 'हिंदुस्तानीपन' या 'उर्दूपन' स्पष्ट झलकता है।

इन अवतरणों की भाषा की तुलना कॉलेज के मौलवी इकराम अली द्वारा अरबी से हिंदुस्तानी में अनूदित 'इंतख़ाब-इ-इख़्वानुस्सफ़ा' (१८११) से की जा सकती है :

'फ़स्ल पहली क़ासिद के अहवाल में

यह न क़ासिद जिस घड़ी दरिंदों के पादशाह अबुलहारिस यानि शेर के पास आकर कहा कि आदमियों और हैवानों में ज़िना के पादशाह के सामने मनाज़र: हो रहा है हैवानों ने क़ासिदों को सब हैवानात की तरफ़ रवानः किया है कि आकर उनकी मदद करें मुझको भी आपकी ख़िदमत में भेजा है एक सरदार अपनी फ़ौज से मेरे साथ कर दीजिये कि वहाँ चलकर अपने अबनाए जिन्स का शरीक होवे जिस वक़्त उनकी नौबत आवे इन्साना से मनाज़र: करे '' (फ़ारसी लिपि)
अतः में गिलक्राइस्ट: हिंदुस्तानी का स्वाभाविक विकास हमें विलियम बटरवर्थ बेली की ६ फ़रवरी, १८०२ की हिंदुस्तानी पर लिखी गई थीसिस (प्रबंध) में मिलता है :

'अगरचि साहिबि मुहावर: हिंदुस्तानी ज़बान के क़दर नहीं करते कि इसमें बहुत नस्र की किताबें या तसानीफ़ि इलमी हैं पर कितने ऐक क़िस्से ख़ूब औ ग़ज़लें मरग़ूब औरोंर नज़्म में मौजूद हें, दरकिनार यिह कि मुआमलाति महाजनी लश्करी औ मुहिम्माति मुल्की औरोंर कि तअल्लुक़ नविश्त ख़्वांद से रखते हें उन्हों में ज़बानि हिंदी जारी है।'

थीसिस में नागरी लिपि का प्रयोग अवश्य हुआ है, किंतु भाषा हिंदवी या हिंदुई या आधुनिक हिंदी नहीं है। संभव है डब्ल्यू० चपलेन की २५ जुलाई, १८०३ की सती प्रथा पर लिखी गई थीसिस के आधार पर यह कहा जा सके कि कॉलेज और गिलक्राइस्ट की हिंदुस्तानी के अंतर्गत अरबी-फ़ारसी और संस्कृत शब्दावली से युक्त दोनों शैलियाँ मानी जाती थीं। चैपलेन की थीसिस का एक अवतरण इस प्रकार है :

'क्या ईसवी क्या और अच्छी जाती के लोग किसी पंथ के होंय जानी जाती है कि मेरे वाद को मिटाने को कोई एक भी प्रमान न ला सकेगा। हे महाराजो मेरी बुद्धि से यिह रीति प्रसिद्ध सोच ही जानी जाती है और यिह भी निश्चय कर जानता हूँ कि इस कठिन और अनजानी बोली में सकत जैसा चाहिए वैसी नहीं रखता कि इस बात को भली भाँति से व्योरे समेत समझाऊँ, तिस पर भी मन चलाय बुद्धि दौड़ता हूँ। ''

इस अवतरण की भाषा पर विचार करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि हिंदुस्तानी के अरबी-फ़ारसी रूप को प्रधानता देने पर भी गिलक्राइस्ट (अथवा कॉलेज के अन्य पदाधिकारी), हिंदवी की पूर्ण अवहेलना न कर सके थे। स्वयं गिलक्राइस्ट इस रूप से अधिक परिचित नहीं थे और इसीलिए उन्हें लल्लूलाल को रखना पड़ा था। इसी रूप के अर्थात् हिंदवी के आधार पर हिंदुस्तानी या उर्दू का प्रासाद खड़ा हुआ था। इसलिए उसका ज्ञान परमावश्यक था। विद्यार्थी भी उसका अभ्यास करते थे। ऐसी परिस्थिति में यदि किसी विद्यार्थी ने हिंदवी के अभ्यास के लिए उसमें अपनी थीसिस लिखी हो तो कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि गिलक्राइस्ट हिंदवी को हिंदुस्तानी या उर्दू के बराबर महत्व देते थे, उन्होंने हिंदवी को हिंदुस्तानी का आधार-स्वरूप भाषा के रूप में गौण स्थान दिया, प्रधानता तो हिंदुस्तानी के अरबी-फ़ारसी रूप या हिंदुस्तानी या उर्दू ही को रक्खा। किंतु जैसा कि टेलर, प्राइस, राएबक,

हिंदुस्तानी या उर्दू का प्राधान्य

गिलक्राइस्ट के बाद भाषा-संबंधी परिस्थिति: प्राइस के समय में हिंदी का प्राधान्य, किंतु गद्य के विकास का अभाव

आदि के पत्रों से ज्ञात होता है, हिंदवी या 'भाखा' या ठेठ हिंदी या खड़ीबोली के गौण स्थान का भी ह्रास हो गया और बहुत दिनों तक हिंदुस्तानी (उर्दू) का ही प्राधान्य बना रहा। प्राइस के समय में हिंदवी या हिंदुई (आधुनिक अर्थ में हिंदी या) 'भाखा' या ठेठ हिंदी या खड़ीबोली को प्राधान्य मिला अवश्य और, जैसा कि पिछले विवरण से ज्ञात होता है, सरकारी पत्रों या विज्ञापनों में भी इसका प्रयोग हुआ, किंतु हिंदुस्तानी या उर्दू का स्थान भी गौण रूप में बना रहा। साथ ही प्राइस हिंदवी या हिंदुई का कोई नवीन गद्य-ग्रंथ भी प्रस्तुत न कर सके और न करा सके। दूसरे शब्दों में, गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में लल्लूलाल और सदल मिश्र द्वारा प्रदत्त गद्य-शैली के लगभग उन्नीस वर्ष बाद भी प्राइस उसका कोई विकास उपस्थित न कर सके। वे लल्लूलाल के पिछले ग्रंथों पर ही निर्भर रहे। आवश्यकतानुसार वे अपने विभाग में नए सुयोग्य अध्यापक भी न ला सके। वास्तव में जिस समय प्राइस प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए थे उस समय तक कंपनी का हिंदी जनता के साथ पूर्ण रूप से संबंध स्थापित हो चुका था। इसलिए शासन-व्यवस्था की दृष्टि से उन्हें हिंदवी (हिंदी) को स्थान देना पड़ा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। अध्ययन के लिए लल्लूलाल के ग्रंथ थे ही। प्राइस के बाद तो कॉलेज के अंतिम दिन थे। उस समय किसी भी प्रकार के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना संभव नहीं थी।

हिंदुस्तानी के प्राधान्य के संबंध में प्रमाण

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में 'हिंदुस्तानी' या उर्दू की अधिक या कम प्रधानता अवश्य रही, इस संबंध में प्रमाणों का अभाव नहीं है। उदाहरण-स्वरूप गिलक्राइस्ट द्वारा ऑरिएंटल सेमिनरी के 'जर्नल' में तथा अन्य स्थलों पर व्यक्त भाषा-संबंधी विचार, टेलर तथा उनके बाद के पदाधिकारियों द्वारा लिखे गए पत्र, विज़िटरों के भाषण, 'हिंदुस्तानी' या उर्दू ग्रंथों की अत्यधिक संख्या में रचना, हिंदवी ग्रंथों की सदैव के लिए सीमित संख्या, 'भाखा'-मुंशी और पंडितों का कम वेतन तथा कॉलेज की व्यवस्था में उनका गौण स्थान, उनकी नियुक्ति के संबंध में अनिश्चित व्यवस्था, फ़ारसी और 'हिंदुस्तानी' का पारस्परिक घनिष्ठ संबंध और फलतः 'हिंदुस्तानी' पढ़ने वाले विद्यार्थियों की अधिक संख्या, हिंदुस्तानी विभाग के मुंशियों का हिंदवी-संबंधी अज्ञान, बेली कृत थीसिस की भाषा तथा बाद की भाषा में अंतर, आदि अनेक बातों का उल्लेख किया जा सकता है।

निष्कर्ष

लल्लूलाल और सदल मिश्र की रचनाओं के नाते हिंदी साहित्य के इतिहास में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज का उल्लेख करना तो आवश्यक है, किंतु हिंदी भाषा और गद्य-साहित्य के विकास या उन्हें एक क़दम और आगे बढ़ाने की दृष्टि से उसका कोई महत्त्व नहीं है। कॉलेज से 'हिंदुस्तानी' या उर्दू गद्य को प्रोत्साहन मिला, न कि हिंदी गद्य को। जो कार्य केरे ने बँगला के लिए किया वह कार्य किसी ने हिंदी के लिए न किया। हाँ, कोष, व्याकरण, टाइप, विराम-चिह्न आदि आधुनिक विषयों के सूत्रपात की दृष्टि से कॉलेज आधुनिक भारतीय भाषाओं के इतिहास में। रहेगा

परिशिष्ट

परिशिष्ट

अ (पृ० ३)

कुछ विद्वानो का मत है कि पाश्चात्य विद्वानों में सबसे पहले गिलक्राइस्ट ने हिंदुस्तानी भाषा का अध्ययन शुरू किया। परंतु बात ऐसी नहीं है। उनसे पहले भी पाश्चात्य विद्वानो ने हिंदुस्तानी का अध्ययन किया था। उन्होने जिस हिंदुस्तानी का अध्ययन किया उसका रूप क्या था, इसके विषय मे निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

शुरू में अँगरेज़ो ने हिंदुस्तानी भाषा के अध्ययन की ओर अधिक ध्यान न दिया। इसका कारण था। जब दक्षिण के पश्चिमी तट पर पोर्चुगीज़ आकर बस गए तो उन्होंने वहा की बोली सीखने का प्रयत्न किया। परतु गोआ की पोर्चुगीज़ सरकार की नीति भिन्न थी। वह अपने धर्म और पोर्चुगीज़ भाषा का ही प्रचार करना चाहती थी। इसके लिए उसने पादरियो को बाध्य भी किया। इसके परिणाम-स्वरूप भारतीय पोर्चुगीज़ धर्मावलबियों मे पोर्चुगीज़ भाषा का प्रचार हुआ। ये भारतीय पोर्चुगीज़ भाषा को शुद्ध रूप मे न बोल कर विकृत रूप मे बोलते थे। १८वीं शताब्दी में जब ये लोग देश के भीतरी भागों और बदरगाहों में जाकर बसने लगे तो उस भाषा को भी अपने साथ लेते गए। इन स्थानो के योरप निवासियो ने इसी विकृत पोर्चुगीज भाषा को अपनाना शुरू कर दिया। वे हिंदू और मुसलमान सौदागरो के साथ व्यापार भी इन्हीं नवागंतुकों के द्वारा करने लग गए। उन्होंने इनसे दुभाषिए और क्लर्की आदि का काम भी लिया।

अस्तु, बगाल पर विजय प्राप्त करने से पहले अँगरेज़, डच और फ्रांसीसियों का न तो हिंदुस्तानी भाषा की ओर ध्यान ही गया और न उन्हे सीखने की आवश्यकता ही हुई। शुरू मे ईसाई मिशनरियो ने हिंदुस्तानी की ओर ध्यान न दिया। १७४३ में मिलियस नामक एक व्यक्ति ने हिंदुस्तानी का अध्ययन कर लीडन से एक पुस्तक प्रकाशित की। परंतु उसे अपने परिश्रम में अधिक सफलता न मिली। दो साल बाद यानी १७४५ में शुल्ज़ियस नामक एक और व्यक्ति ने हल से 'ग्रैमैटिका हिंदुस्तानी' प्रकाशित कराई थी। परतु उसका कार्य भी सतोषजनक न रहा और न उससे कोई मतलब ही सिद्ध हो सका।

बंगाल में अँगरेज़ी राज्य के पूर्णरूप से स्थापित हो जाने पर अँगरेज़ों को विजितों की भाषा न जानने के कारण बड़ी असुविधाएँ हुईं। उनकी फ़ौज में बहुत से देशी सिपाही थे जो अपनी बोली के अतिरिक्त और दूसरी बोली समझ ही न पाते थे। आगरा प्रांत का सिपाही ब्रजभाषा ही बोलता और समझता था। फ़ौज में मुसलमान सिपाही भी थे और देश के अन्य विजित भागो के सिपाही भी। इसलिए फ़ौजी अफ़सरो को अपने सिपाहियों से सपर्क बढ़ाने के लिए उनकी बोलियों का जानना अनिवार्य था तत्कालीन सिविलियनों को शासन के के लिए उन प्रांतो की बोलियाँ जानना था जिनमें वे

नियुक्त किए जाते थे। इसके लिए कंपनी के कर्मचारियों में से बुद्धिमान लोगों ने हिंदुस्तानी का अध्ययन आरंभ कर दिया। वैन्सीटार्ट के समय में गल्सटन नामक व्यक्ति ने जो फ़ारसी भाषा का दुभाषिया था, हिंदुस्तानी पर एक लेख लिखा। यह लेख उसकी मृत्यु के बाद छपा था। बाद को यह लेख गिलक्राइस्ट के हाथ पड़ गया था। गल्सटन की मृत्यु से कंपनी के कर्मचारियों में हिंदुस्तानी के प्रचार-कार्य को धक्का पहुँचा। गल्सटन के बाद डॉ॰ हैरिस का नाम उल्लेखनीय है। वे मद्रास में थे। उन्होंने एक 'हिंदुस्तानी अँगरेज़ी-कोष' प्रकाशित किया। इसके बाद विलियम कर्कपैट्रिक ने 'हिंदुस्तानी व्याकरण और कोष' प्रकाशित कर व्याकरण की कमी पूरी की। १७८५ में उन्होंने हिंदुस्तानी भाषा के संबंध में एक बृहत् ग्रंथ प्रकाशित करने की आयोजना निकाली, परंतु उसे वे पूरा न कर सके। इनके अतिरिक्त हलहेड, ग्लैडविन्, आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

आ

वेलेज़ली का डुंडास के नाम पत्र : (पृ॰ ९)

... 'मैं आपको इस बात से परिचित करा देना आवश्यक समझता हूँ कि मेरा इरादा तुरंत ही बंगाल के कर्मचारियों का एक महत्वपूर्ण दृष्टि से सुधार करने के लिए एक आयोजना तैयार करने का है। समस्त प्रांत में न्याय-शासन या मालगुज़ारी वसूल करने तक की जो कुछ दशा है वह जनता की भलाई के लिए बनाए गए अच्छे-अच्छे क़ायदे-क़ानूनों की असफलता का दुःखद उदाहरण है। यह अवस्था उस समय तक बनी रहेगी जब तक कि अपने विभिन्न विभागों में उन आईनों को बरतने वाले सुयोग्य व्यक्ति हमें न मिलें। यह दोष शासन के प्रत्येक विभाग में घुसा हुआ है। इसकी जड़ प्रधानतः सर्विस के मूलस्रोत में जमी हुई है—मेरा मतलब राइटर्स की हैसियत से यहाँ भेजे गए नवयुवकों की शिक्षा और उनके प्रारंभिक जीवन में अपनाए हुए आचरण से है। इस विषय पर अच्छी तरह सोचने के बाद मेरा यह दृढ़ विचार है कि भारतवर्ष में आने पर दो-तीन साल तक राइटर्स को राजधानी में स्थापित किसी कॉलेज संस्था के अनुशासन और नियमों के अधीन रहना चाहिए। ऐसी संस्था में साधारण आईन, शरअ मुहम्मदी और भारतीय धर्मशास्त्र के सिद्धांतों, और बंगाल तथा अन्य प्रांतों के शासनार्थं सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा निर्मित अनेक क़ायदे-क़ानूनों को जानने के साथ अपने-अपने पदों के लिए उपयोगी और आवश्यक विभिन्न देशी भाषाओं के मूल सिद्धांतों का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। अपना कर्तव्य-पालन करने के लिए वे ज्ञान की अन्य बातें भी सीख सकते हैं। जिन नवयुवकों ने अपरिपक्व अवस्था में देश के भीतरी भागों के दुराचरण और भोगलिप्सापूर्ण वातावरण में रह कर अपने जीवन और आचारों की आधारशिला जमाई है, उनमें सुस्ती, काहिली, घृणित वासनाओं और अज्ञता के बढ़ जाने की अत्यधिक संभावना है। कॉलेज संस्था में रह कर वे इन दुर्व्यसनों के स्थान पर फ़ुर्ती, नियम और स्वच्छता के साथ जीवन व्यतीत करना जान सकते हैं। इस समय मैं इस विषय पर अधिक लिखना नहीं चाहता, क्योंकि अच्छी तरह से वाद विवाद करने के लिए मैं शीघ्र ही इसे सब

सामने रक्खूँगा परंतु मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि यह दोष इतना बढ़ गया है कि मेरा, कोर्ट की आज्ञा की प्रतीक्षा किए बिना ही, कलकत्ते में एक ऐसी संस्था स्थापित करने का इरादा है। इसके लिए मैंने कुछ किया भी है, और मुझे आशा है कि यदि व्यय की आवश्यकता हुई भी तो कंपनी का और अधिक धन खर्च किए बिना ही मैं अपनी आयोजना को सफल बना सकूँगा।

'जिस विषय में मुझे सबसे अधिक दिलचस्पी है उसमें आपकी सक्रिय और हार्दिक सहायता का मुझे पूरा भरोसा है।'[1]

ई

वेलेज़ली की मिनिट्स के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्धरण : (पृष्ठ ११)

'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य संसार के सबसे अधिक विस्तृत और घने बसे हुए साम्राज्यों में से है। इसके विभिन्न प्रांतों और जातियों के शासन का सीधा संबंध विशेष रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी के यूरोपीय कर्मचारियों से है। बंगाल, बिहार, उड़ीसा और बनारस के प्रांत, कंपनी की कर्नाटक वाली जागीर, उत्तरी सरकार, बारह महल तथा १७६२ की श्रीरंगपट्टम की संधि के अनुसार मिले हुए अन्य ज़िले, जिनका शासन सीधे कंपनी के यूरोपीय कर्मचारियों के हाथ में है, भारतवर्ष के धनसंपन्न और समृद्धिशाली भूमिभागों में माने जाते हैं, और जहाँ पृथ्वीमंडल के इस भाग के अन्य किसी प्रदेश की अपेक्षा जान, माल, नागरिक शांति और धार्मिक स्वतंत्रता अधिक सुरक्षित हैं और जहाँ की जनता शासन की सुव्यवस्था से अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठाती है। इसलिए भारतवर्ष में अँगरेज़ों का कर्तव्य है और उनकी नीति का यह तकाज़ा है कि शासन की प्रत्येक शाखा और विभाग का स्थानीय राजकीय प्रबंध दक्ष और योग्य यूरोपीय कर्मचारियों के हाथ में सौंपने की प्रथा का जितना संभव हो सके अधिक से अधिक प्रचार हो। न केवल देशी प्रजा की सुख-शांति की दृष्टि से वरन् अपने स्वार्थ की दृष्टि से भी यह वाञ्छनीय है। बंगाल अहाते के मातहत प्रांतों के अतिरिक्त शासन-सुधार के लिए लॉर्ड कॉर्नवालिस द्वारा संस्थापित चतुर और उदार व्यवस्था की तह में यही सिद्धांत था।

'इस हितकारिणी व्यवस्था के साथ-साथ ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों का कार्य भी पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ कर महत्वपूर्ण हो गया है। जिन 'राइटर', 'फैक्टर' और 'मर्चेंट' के नामों से सिविल सर्विस की कई श्रेणियाँ अब तक गिनाई जाती हैं वे कंपनी के कर्मचारियों का कार्य-व्यापार देखते हुए नितांत असंगत हो गए हैं।

''विभिन्न भाषा-भाषी और आचार, रूढ़ियों एवं धर्मों का अनुसरण करने वाली असंख्य जनता के साथ न्याय बरतना; विस्तार में यूरोप के कुछ बड़े-बड़े राज्यों की बराबर ज़िलों में भारी और पेचीदा मालगुज़ारी प्रथा को व्यवहार में लाना; संसार के सबसे अधिक घने बसे हुए और झगड़ालू भूमि-भागों में शांति बनाए रखना; यही अब कंपनी के अधिकतर कर्मचारियों का काम है। बंगाल अहाते के मातहत बड़े-बड़े मर्चेंट्स

---

[1] 'वेलेज़ली डेस्पैचेज़' जिल्द २ पृ० १११ ११२

की पाँच सरकिट और अपील अदालतें हैं। उन मर्चैंट्स को जितनी स्थानीय और बहु-जनसख्यक कानूनी कार्यवाही करनी और बहुत-सी पेचीदा युक्तियों द्वारा गुत्थियाँ सुलझानी पड़ती हैं वे यूरोप की किसी भी जायज अदालत से कहीं अधिक हैं। फौजदारी (मजिस्ट्रेसीज) और ज़िला अदालतों में काम करने वाले सीनियर या जूनियर मर्चैंट्स और बहुत-सी अदालतों में और मजिस्ट्रेटों के यहा रजिस्टरों या नायबों की हैसियत से काम करने वाले राइटरों या फ़ैक्टरों को अपने-अपने ज़िलों में थोड़ा-बहुत तरह-तरह का अदालती या पुलीस विभाग का या शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने का काम करना पड़ता है। अदालती विभाग की प्रत्येक शाखा मे तिजारती ज्ञान अनावश्यक ही नहीं प्रत्युत वे कर्मचारी जो मजिस्ट्रेट हैं, या न्याय विभाग में किसी पदाधिकारी के रूप मे काम करते हैं, और यद्यपि वे मर्चैंट्स, फ़ैक्टर्स या राइटर्स के नाम से पुकारे जाते हैं, क़ानूनन् या सौगंधवश किसी भी व्यापारिक कार्य मे भाग नहीं ले सकते। उनकी व्यापारिक उपाधि से उनके कार्य-व्यापार का पता ही नहीं चलता, वरन् वह उसके बिल्कुल उलटी है।

बहुत-सी अदालतों में मुकदमे और समस्त महत्वपूर्ण क़ानूनी कार्यवाही देशी भाषाओं में होती है। कंपनी के जजों को जो कानून बरतना पड़ता है वह इंगलैंड का कानून नहीं है। लेकिन यह वह कानून है जिससे यहाँ के लोग अपने पहले शासकों के राजत्वकाल में अभ्यस्त हो चुके हैं, और सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने जिसे अपने बड़े भारी-भारी नियमों से और ब्रिटिश विधान की भावना से प्रेरित हो कर काटछाँट कर कम कर दिया है। ये सब बातें यह साबित करने के लिए काफ़ी हैं कि भारतवर्ष में कंपनी के साम्राज्य में शासक का पद सुशोभित करने वाले के कार्य की अपेक्षा संसार में अधिक कठिन और पेचीदा शासन-कार्य नहीं है और न इतनी अधिक विविधगुणसंपन्न योग्यता की आवश्यकता ही पड़ती है।

"ऊपर कही गई बहुत-सी बातें ठीक उसी प्रकार मालगुज़ारी विभाग के लिए लागू होंगी। इस विभाग के मर्चैंट्स, फ़ैक्टर्स और राइटर्स को क़ानूनन् या शपथ के ज़ोर से अपनी व्यापारिक उपाधि का परित्याग करना पड़ता है। और न मालगुज़ारी इकट्ठा करने वाले या उसके मातहत किसी अन्य कर्मचारी के लिए देश की भाषा, आचारों और रूढ़ियों और बहुत-सी अदालतों में व्यवहृत क़ानून के सामान्य सिद्धांतों से परिचित हुए बिना यह संभव है कि वह राज्य या जनता के साथ साधारण न्यायपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन कर सके। जजों, मजिस्ट्रेटों और कलक्टरों को अदालती और शासन-संबंधी कामों के साथ कभी-कभी अपने ज़िलों के गवर्नर की हैसियत से भी काम करना पड़ता है। उस समय उनको सेना का संचालन करना और अन्य बड़े-बड़े अधिकारों को व्यवहार में लाना होता है। क़ानूनन उनको समय-समय पर कौंसिल में गवर्नर-जनरल के पास अपने-अपने ज़िलों की भलाई की दृष्टि से वर्तमान कानूनों में आवश्यक परिवर्तनों या नए क़ानूनों के लिए प्रस्ताव भी भेजने पड़ते हैं। इस प्रकार न्याय और मालगुज़ारी विभागों के कर्मचारी एक तरह से सपरिषद् गवर्नर-जनरल की उप धारासमितियों का का देते हैं। साथ ही वे हर समय जनता की माँगों और इच्छाओं का पता लगाने के लि सरकार के पास एक साधन हैं न्याय और मालगुज़ारी विभागों के विषय में कही गा

बात कम से कम उन विभाग के लिए भी उतनी ही लागू है जिन्हें हम राजनीतिक और आर्थिक विभागों के अंतर्गत रख सकते हैं जिनमें चीफ़ सेक्रेटरी, सेक्रेटरी ट्रेज़री, ऐकाउन्टैंट-जनरल तथा राजधानी में प्रतिदिन का कार्य करने वाले अन्य लोग भी शामिल हैं। इनमें राजनीतिक विभाग के मंत्री सहित राजदूत और हमारे प्रधान और सहायक या दूसरे देशी राजाओं के दरबारों में रहने वाले कई रेज़ीडेंट भी जोड़े जा सकते हैं।

'इन सब पदों पर कंपनी के कर्मचारियों का नियुक्त होना बहुत जरूरी है। लेकिन साथ ही यह बात भी किसी से छिपी नहीं है कि इन सब जगहों के लिए जिन बातों की आवश्यकता है वे या तो व्यापारिकता के विपरीत हैं, या व्यापारिक शिक्षा से बहुत आगे हैं।

'यहाँ तक कि इस साम्राज्य के केवल व्यापारिक कहे जाने वाले विभाग के लिए यूरोप के इसी विभाग से कहीं अधिक भिन्न ज्ञान और आचरण की आवश्यकता है। कंपनी की पूँजी का उस समय तक अपने को अधिक से अधिक लाभ और प्रतिष्ठा के साथ, या प्रजा के साथ यथेष्ट न्याय कर संचालन नहीं हो सकता जब तक कि उसके तिजारती एजेंट राजनीतिज्ञों के उपर्युक्त वर्णित गुणों से विभूषित न हों। कारीगरों तथा श्रमिक वर्ग के अन्य लोगों का उत्पादक परिश्रम ही हमारी पूँजी का मूल स्रोत है। कंपनी द्वारा अधिकृत भूमि-भागों की जन संख्या के अनुपात के अनुसार उनकी संख्या इतनी अधिक है कि देश की सुख-शांति और समृद्धि का भार मुख्यतः पूँजी लगाने वाले कंपनी के व्यापारिक कर्मचारियों के व्यवहार पर निर्भर रहता है। यदि वे देशी भाषा, जनता की रीति-रस्म और आचार के साथ-साथ देश के कायदे-कानून से परिचित होंगे तो उनकी तरफ़ से किसी प्रकार की भी आशंका नहीं हो सकती। तिजारती रेज़ीडेंट द्वारा धन के दुरुपयोग, या उसकी अज्ञानता और गलती तक से समस्त प्रांतों की शांति, व्यवस्था और भलाई को आघात पहुँचने की संभावना रहती है, क्योंकि इनके प्रबंध का हमारे अत्यंत प्रिय और महत्वपूर्ण स्वार्थों और जनता की अनेक संस्थाओं के साथ घनिष्ठ संबंध है। यहाँ की जनता स्वभावतः परिश्रमी होने के कारण तेज़ और फ़ुर्तीली है। उसे अपने माल की बाबत या अपनी रूढ़ियों और प्रथाओं की विरोधी बातें अच्छी नहीं लगतीं।

'इसलिए ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी किसी प्रकार भी एक व्यापारिक संस्था के एजेंट नहीं समझे जा सकते। वास्तव में वे एक शक्तिशाली राज्य के प्रतिनिधि हैं और अब उन्हें उनकी नाममात्र की नहीं वरन् वास्तविक परिस्थिति के अनुरूप दृष्टि से देखना उचित होगा। अपने पुनीत कार्य और उच्च पद से उत्पन्न पेचीदगियों और गहरे संबंधों का निर्वाह कर, और विचित्र परिस्थितियों में पड़ कर, जो सरकारी कार्य को गुरुतर और हर एक सरकारी उत्तरदायित्व की दिक्कतों को बढ़ा देती हैं, उन्हें मजिस्ट्रेट, जज, राजदूत और प्रांतों के गवर्नरों की हैसियत से काम करना पड़ता है। उनके और सभार के प्रत्येक अन्य भाग के राजनीतिज्ञों के काम में यहाँ का प्रतिकूल जलवायु एक विदेशी भाषा, विचित्र भारतीय रीति रस्म और कायदे कानूनों और यहां के रहने वालों के

आचारों की कठिनाइयों को छोड़ कर और कोई अंतर नहीं है। इसलिए उनका अध्ययन, शिक्षाक्रम, आचरण, आचार-विचार और चरित्र इस प्रकार विकसित और उन्मुख किए जाने चाहिए जिससे उनके व्यक्तित्व और सरकारी पदों के ऐश्वर्य तथा उनकी योग्यता और उनके कर्तव्य के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सके। साहित्य और विज्ञान के अंगों के सामान्य ज्ञान की उन्हें वही शिक्षा दी जानी चाहिए जो यूरोप में ऐसे ही पद ग्रहण करनेवालों को दी जाती है। इस मूलाधार के साथ उन्हें भारतीय धर्मशास्त्र और शरअ मुहम्मदी और धर्मनीति और एशिया में ग्रेट ब्रिटेन के राजनीतिक और व्यापारिक हितों और संबंधों की शिक्षा सहित भारतीय इतिहास, भाषाओं, रीति-रस्मों और आचारों से भली भाँति परिचित करा देना चाहिए। ब्रिटिश विधान की भावना से प्रेरित हो कर लागू किए गए देश के प्राचीन और प्रचलित क़ानूनों से लाभ उठाने का अवसर प्रदान करने की दृष्टि से सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा पास किए गए क़ायदे क़ानूनों के आधारभूत सिद्धांतों का पूर्णज्ञान होना उनके लिए आवश्यक है। उन्हें ब्रिटिश विधान के सच्चे और दृढ़ सिद्धांतों का बहुत अच्छा और नीतिशास्त्र, न्यायशास्त्र और अंतर्राष्ट्रीय क़ानून, और सामान्य इतिहास के मामूली सिद्धांतों का काफ़ी ज्ञान होना चाहिए, ताकि वे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य में व्यवहृत विभिन्न क़ानूनों के मूल भेदों को समझने में और न्याय-शासन करने और शांति और सुशासन की रक्षा करते समय उन दोनों की भावना को व्यवहार में ला सकें। अंत में शुरू से ही उनके मन में परिश्रम, दूरदर्शिता, सचाई और धर्म की पक्की नींव डालनी चाहिए जिसके सहारे वे यहाँ जहाँ कहीं किसी भी हालत में होने और ख़ास तौर से भारत में पहले-पहल आने पर यहाँ के जलवायु और लोगों के अजीब भ्रष्टाचरणों से उत्पन्न प्रलोभनों और कुव्यसनों से अपने को बचा सकें। सरकारी कर्मचारियों के प्रारंभिक अनुशासन द्वारा उनको यहाँ के जलवायु और लोगों के कुव्यसनों और प्रवृत्तिजन्य आलस्य, ऐयाशी, और शोहदेपन से बचाना हमारा ध्येय होना चाहिए; विशेष योग्यता, पुरस्कार, लाभ और प्रतिष्ठा पाने की आशा के प्रकाश से उनमें श्रेष्ठ और उपयोगी कार्य करने की प्रतियोगिता की भावना को प्रज्वलित कर उसे बनाए रखना आवश्यक है; इंगलैंड की भाँति भारतवर्ष में भी उच्च राजकीय पद ग्रहण करनेवाले सुयोग्य व्यक्तियों को यथेष्ट संख्या में लेने के लिए सतर्कता से काम करना चाहिए ताकि वे स्वयं अपने चार चँदोवे लगाने के अतिरिक्त जनसाधारण को भी लाभ पहुँचा सकें। विभिन्न सरकारी शाखाओं और विभागों में लगातार ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किए बिना क़ानून अनीतिपूर्ण और अनुदार बन कर निष्फल और निरर्थक सिद्ध होगा। इंगलैंड में अनगिनत सुयोग्य और दोषहीन सरकारी कर्मचारियों को पाने के लिए अनुशासन और उनकी शिक्षा के विषय में चाहे जो रीति और मार्ग ग्रहण किए जायँ, परंतु हमारी पूर्वीय व्यवस्थाओं की कुछ ऐसी अजीब हालत है कि उन सुंदर और लाभप्रद नियमों और नियंत्रणों का बंधन ढीला करने के बजाय सिविल सर्विस की बढ़ी हुई कठिनाइयाँ और सरकारी नौकरी करते ही पग-पग पर मिलनेवाले ख़तरों को देख कर इस बात की ज़रूरत है कि उनका और भी अधिक सतर्कता और देखभाल के साथ प्रयोग किया जाय।'

प्रतियों की संख्या	पुस्तकों के नाम	फोलियो	छोटा क्वार्टो	बड़ा अक्टेवो	लिपि	रुपया	आना	पाई	कहाँ छपी	छपे पृष्ठ
५००	मिसकीन कृत मर्सिया	::	२३		नागरी	३४३	::	::	हरकारा प्रेस	कुल
५००	बत्तीसी सिंहासन	::	२८३		नागरी	४५००	::	::	हरकारा प्रेस	३६
५००	शकुंतला नाटक	::	::	१६२	नागरी	३०००	::	::	कलकत्ता गज़ट प्रेस	२४
५००	अख़लाक-इ-हिंदी	::	::	२८८	नागरी	४५००	::	::	टेलीग्राफ़ प्रेस	आरंभ
५००	माधवानल	::	::	१६२	नागरी	३०००	::	::		छपना आरंभ नहीं हुआ
५००	बैताल पचीसी	::	::	४३२	नागरी	८५००	::	::		छपना आरंभ नहीं हुआ
५००	चार दरवेश	::	४३२	::	फ़ारसी	८८००	::	::	हरकारा प्रेस	५८
५००	मीर हसन	::	::	३२०	फ़ारसी	५०००	::	::	कलकत्ता गज़ट प्रेस	३६
५००	गुलिस्ताँ	::	::	४३२	फ़ारसी	८५००	::	::	मीरू प्रेस	आरंभ
५००	तोता कहानी	::	::	३५२	फ़ारसी	५५००	::	::	टेलीग्राफ़ प्रेस	आरंभ
५००	गुलशन	::	::	१६२	फ़ारसी	३०००	::	::		छपना आरंभ नहीं हुआ
५००	हिंदुस्तानी प्रिंसीपिल्स (हिंदुस्तानी के सिद्धांत)	१२०	::	”	अँगरेज़ी	२७५०	::	::	मार्निंग पोस्ट	४०
२००	अभ्यास-पुस्तकें, जो इस पत्र के साथ भेजी जा रही हैं				दोनों में	१०००	::	::		छपना आरंभ नहीं हुआ

मैंने इसमें अनुवादकों का पारिश्रमिक, जिसकी वे कॉलेज से आशा करते हैं, सम्मिलित नहीं किया, क्योंकि उनमें से कुछ को तो मैंने पहले लिए हुए रुपयों में से दे दिया है या उन्हें और कामों से हटा कर पूरे समय के लिए उपर्युक्त रचनाएँ प्रस्तुत कराने में लगा लिया था। किंतु मेरा अनुमान है कि पारिश्रमिक के मध्य चार हज़ार रुपए से अधिक किसी हालत में खर्च न होगा।

(ह०) जॉन गिलक्राइस्ट,
हिंदुस्तानी प्रोफ़ेसर।

उ

कौंसिल द्वारा तैयार किया गया विवरण : (पृ० ४८)

प्रतियों की संख्या	पुस्तकों के नाम	पृष्ठों की संख्या			लिपि	अनुमानित व्यय			कहाँ छपी
		फ़ोलियो	चौपेजी	अठपेजी		रुपया	आना	पाई	
५००	चार दरवेश	::	::	१००	फ़ारसी	११७१	१४	::	हरकारा प्रेस
५००	मसनवी मीर हसन	::	४०	::	फ़ारसी	११२५	::	::	कलकत्ता गज़ट प्रेस
५००	गुलिस्ताँ	::	३०	::	फ़ारसी	७०३	२	::	मिरर प्रेस
५००	तोता कहानी	::	३०	::	फ़ारसी	७०३	२	::	टेलीग्राफ़ प्रेस
५००	हिकायात-इ-मुतफ़र्रिक़ात	::	३०	::	फ़ारसी	७०३	२	::	कलकत्ता गज़ट प्रेस
५००	बत्तीसी सिंहासन	::	::	६०	नागरी	७०२	२	::	हरकारा प्रेस
५००	मर्सिया-मिसकीन	::	::	३२	नागरी	३४३	::	::	हरकारा प्रेस
५००	शकुंतला नाटक	::	६०	::	नागरी	१००६	४	::	कलकत्ता गज़ट प्रेस
५००	अख़्लाक़-इ-हिंदी	::	३०	::	नागरी	७०३	२	::	टेलीग्राफ़ प्रेस
५००	बैतालपचीसी	::	३०	::	नागरी	७०२	१	::	मिरर प्रेस
५००	माधवानल	::	३०	::	नागरी	७०३	२	::	हरकारा प्रेस
५००	हफ़्त गुलशन	::	३०	::	फ़ारसी	७०३	२	::	मिरर प्रेस
			३१८	३८३		६६७१	२		

ऊ

४ अप्रैल, १८०३ तक हिंदुस्तानी में निर्मित या निर्मित होने वाले ग्रंथों का विवरण : (पृ० ५४)

फोलिओ

१. 'प्रैक्टिकल आउटलाइन्स : ऑर, ए स्केच ऑव हिंदुस्तानी ऑरथीपी, ऐंड दि हिंदुस्तानी प्रिंसिपिल्स'।

चौपेजी

२. 'दि ओरिएंटल लिंग्विस्ट', हिंदुस्तानी, या हिंदुस्तान की लोकप्रिय भाषा का सरल और सुंदर परिचय।

३. परीक्षा के लिए अभ्यास-पुस्तकें।

४ 'बाग़ो-बहार' : फ़ारसी रचना 'चहार-दरवेश' का कॉलेज के एक देशी विद्वान् द्वारा अनुवाद।

५. 'शकुंतला', 'अख़्लाक़-इ-हिंदी' और 'बैतालपचीसी' : संस्कृत रचनाओं के ब्रजभाषा और फ़ारसी रूपांतरों का हिंदुस्तानी में अनुवाद; 'माधोनल', कॉलेज के देशी विद्वानों द्वारा ब्रजभाषा में एक स्वतंत्र रचना।

६. 'नस्र-इ-बेनज़ीर' : मीर हसन की 'मसनवी' का गद्य में रूपांतर; और 'बाग़-इ-उर्दू' और 'तोता कहानी', फ़ारसी रचनाओं 'गुलिस्ताँ' और 'तूतीनामा' का कॉलेज के देशी विद्वानों द्वारा अनुवाद।

७. 'बत्तीसी' : मूल संस्कृत के ब्रजभाषा रूपांतर का हिंदुस्तानी में अनुवाद : इसके साथ मिस्कीन की मूल हिंदुस्तानी रचना 'मर्सिया' भी; कॉलेज के देशी विद्वानों द्वारा।

८. 'दि हिंदी मैनुअल' : या 'कास्केट ऑव इंडिया' : हिंदुस्तानी रचनाओं का एक संग्रह।

अठपेजी

९. 'दि हिंदी स्टोरी टैलर'।

१०. 'दि हिंदी मौरल प्रिसेप्टर'।

११. 'दि ऑरिएंटल फ़ैब्युलिस्ट'; या 'पौलीग्लौट', ईसप की कहानियों का छः पूर्वीय भाषाओं में अनुवाद।

१२ 'दि हिंदुस्तानी गुलिस्ताँ', दो जिल्दों में

१३. 'दि ऐंटी-जार्गोनिस्ट' : या, विस्तृत शब्द-सूची के साथ हिंदुस्तानी भाषा का संक्षिप्त परिचय।

१४. 'दि स्ट्रेंजर्स ईस्ट इंडिया गाइड टु दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज'।

१५. १८०२ और १८०३ के विद्यार्थियों द्वारा रचित दावे।

१६. 'मुतफ़र्रिक़ात'।

१७. 'हफ़्त गुलशन'।

१८. 'गुलदस्ता-इ-हैदरी'।

१९. 'अमीर हमज़ा का इतिहास'।

२०. मिस्कीन कृत 'मर्सिया', गद्य में।

२१. 'ताजुल्मुल्क'।

१६-२१ तक की हिंदुस्तानी रचनाएँ कॉलेज के देशी विद्वानों द्वारा हुईं।

प्रेस में

२२. 'अयार दानिश' (?) चौ० खंड प्रकाशित।

२३. 'हातिमताई' (?) चौ०, ,, ,, ।

२४. 'हिंदी स्टोरी टैलर', जिल्द दूसरी और तीसरी; नागरी और फ़ारसी लिपि में (केवल दूसरी जिल्द प्रकाशित हुई)।

२५. 'जहाज़ी और वैद्यक-संबंधी हिंदुस्तानी शब्दावली'।

२६. सौदा की कुल रचनाएँ, जिल्द ३, चौ०।

२७. वली की कुल रचनाएँ, चौ०।

२८. 'श्री भागवत', शुद्ध हिंदी में, चौ०।

२९. 'बकावली', फ़ारसी से अनूदित।

३०. 'हिंदुस्तानी कहावतें'।

३१. हिंदुस्तानी में प्रचलित अरबी और फ़ारसी के समस्त वाक्यांशों और वाक्यों का संग्रह।

३२. 'बारहमासा', एक मूल हिंदुस्तानी रचना, चौ०।

३३. 'खान-इ-अलवान'; या हिंदुस्तानी पाकशास्त्र।

३४. 'हिंदुस्तानी बोस्ताँ', अठ०।

३५. 'हिंदुस्तानी क़ुरान', चौ०।

३६ 'अख़्लाक़-इ हिंदी' या हिंदुस्तानी भाषा में 'हितोपदेश' और एक दूसरा संस्करण शुद्ध हिंदी में

नाम	बड़े चौपेजी पृष्ठ	छोटे चौपेजी पृष्ठ	अठपेजी पृष्ठ	पुरस्कार	ग्रंथकर्ता	विशेष
जो छप चुकी हैं)						
गुलिस्ताँ या बाग़-इ-उर्दू	—	—	५००	४००	मीर शेर अली अफ़सोस	कॉलेज मे नियमपूर्वक काम करने के कारण ही मैंने ग्रंथकर्त्ता के लिए एक हज़ार रुपया नहीं लिखा।
नक़्लियात-इ-लुक़्मानी	—	—	३००	६००	तारिणीचरण मित्र, मौलवी अमानतउल्लाह, सदल मिश्र पंडित, मीर बहादुर अली, मीर शेर अली अफ़सोस, श्री लाल कवि और ग़ुलाम अशरफ़	इन अनुवादकों में से केवल पहले तीन पारिश्रमिक पाने के विशेष रूप से अधिकारी हैं क्योंकि बंगाली, अरबी और संस्कृत का भार इन्हीं के ऊपर पड़ा और वह भी तारिणीचरण के ऊपर सबसे अधिक।
पदनामा, पद्य में	—	—	३५	१००	मज़हर अली ख़ाँ	
नक़्लियात (प्रेस में)	—	—	६८ पहला	२००	मीरबहादुर अली	हेड मुंशी, जिन्होंने इन कहानियों का कई स्थलों से अपने घर बैठ कर और कभी कभी दूसरे मुंशियो की सहायता से संग्रह कर, उनकी तुलना, और अनुवाद प्रस्तुत किया है।
नक़्लियात	—	—	१२८ दूसरा			

				[illegible] मिर्ज़ा काज़िम अली जवाँ	[illegible] रुपए का वेतन मिलना चाहिए और मिर्ज़ा जवाँ को, जो इस समय ८० रुपया पाते हैं, कम से कम १०० रुपया वेतन मिलना चाहिए। इस रूपांतर से मीर बहादुर अली की वास्तविक योग्यता का प्रदर्शन होगा।
१००	—	—	४००	हैदर बख़्श	यह एक उत्तम रचना है और प्रत्येक सच्चे पूर्वी विद्वान् को यह अच्छी तरह स्वीकृत होगी।
२५०	—	—	२००	श्री लाल कवि	हिंदवी के लिए अत्यंत उपयोगी पुस्तक। इसके लिए पुरस्कार इतना कम केवल इसलिए रक्खा गया है कि लेखक ५० रुपए मासिक पाता है, और उसे कुछ और काम नहीं करना पड़ता।
—	१७०	—	१५०	मीर बहादुर अली	दोनों अत्यंत उपयोगी रचनाएँ हैं। दूसरी प्रसिद्ध हितोपदेश के फ़ारसी रूपांतर 'मुफ़रिहुल क़ुलूल' का रूपांतर है।
—	१६०	—	१५०		
—	—	२००	१५०	निहालचंद	

(प्रेस भेजने के लिए तैयार)						
सिंहासनबत्तीसी	—	१९०	—	२००	मिर्ज़ा काज़िम अली जवाँ	यह एक मूल कविता है और इतनी अच्छी बन पड़ी है कि लेखक हर प्रकार का पुरस्कार पाने योग्य है।
बारहमासा, पद्य में	—	—	१४०	२००		
शकुंतला नाटक	—	—	१४०	१००		
बैताल-पच्चीसी	—	१६०	—	२००	मज़हर अली ख़ाँ	ये तीनों उपयुक्त रचनाएँ हैं, लेकिन जिनके लिएकोई विशेष बात नहीं कही गई उन्हीं की भाँति इनके विषय में कोई ख़ास बात नहीं कहनी है।
माधोनल	—	—	१५०	९०		
हफ़्त गुलशन	—	—	१००	८०		
तवारीख़-इ-बँगला	३००	—	—	३००	ग़ुलाम अकबर	यह और निम्नलिखित तीन अन्य इतिहास हिंदुस्तानी कक्षा के लिए सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।
बोस्ताँ, गद्य में	—	३००	—	४००	हाजी मिर्ज़ा मुग़ल	ये एक विद्वान् व्यक्ति और कवि हैं जो अभी हाल ही में कॉलिज को पूर्वीय साहित्य का केंद्र समझ कर यहाँ आए हैं।
(जो छप चुकी हैं)						
अमीर हम्ज़ा	५००	—	—	५००	ख़लीद ख़ाँ	
कायनात-इ-जओ	—	—	१००	६०		
ख़ान-इ- अलवान	—	—	१६०	८०	हमीदुद्दीन	

चंद्रावती	—	—	१५०	६०	सदल मिश्र	
अख़लाक़ुल मुहसिनीन	—	६००	—	४००	मीर अम्मन	
कलाकाम	—	२००	—	१००	कुंदनलाल	
राजनीति	३००	—	—	३००	श्री लाल कवि	शुद्ध ब्रजभाषा में हितोपदेश।
गुलदस्ता	—	३००	—	२००	हैदर बख्श	
हुस्न-इख़्तलात	—	—	१००	५०	मीर अबुल क़ासिम	
गुल-ओ-सनोवर	—	—	१५०	७०	बासित खाँ	
दिलरुबा	—	—	११०	६०	तोताराम	
फ़ीरोज़ शाह	—	—	१५०	५०	मुहम्मद बख्श	
मिसकीन का मर्सिया (गद्य)	—	—	२०	२०	मीर जाफ़र	
(जो प्रेस के लिए तैयार की जा रही है)						
तवारीख़उस्सलातीन	३००	—	—	२००	ग़ुलान (?) शाह मीक	
क़िस्सए दिल ओ हुस्न	—	—	६०	८०		
क़िस्सए फ़िरऔ	—	—	१००	५०	मुहम्मद बख्श	

तवारीख़-इ-आलमगीरी	३००	—	—	४००	मुहम्मद उमर	
सैफ़ुल मुलूक	—	—	२००	२००	मंसूर अली	
अलिफ़-इ-लैला	३००	—	—	४००	शाकिर अली	अरेबियन नाइट्स
तवारीख़-इ-तैमूरी	६४०	—	—	४००	तसद्दुक़ हुसैन	
अख़्लाक़ुन नबी	—	२००	—	४००	ग़ुलाम अशरफ़	
पंदनामों (?), फ़रीदुद्दीन कृत (पद्य में)	—	—	१००	१५०	मुईनुद्दीन	
गुल ओ-हुर्मुज	—	—	२००	१००	ग़ुलाम हैदर	
दह मजलिस	—	—	१००	५०	शेख़ मुहम्मद बख़्श	
दुर इ-मजलिस	—	२५०	—	१५०	(ग़ुलाम ग़ुलाम ?) सुभान	
जामीउल्क़वानीन	—	२००	—	१००	हैदर बख़्श	

पूर्ण और प्रेस में जाने के लिए तैयार रचनाओं के नाम	बड़े चौपेजी पृष्ठ	छोटे चौपेजी पृष्ठ	अठपेजी पृष्ठ	पुरस्कार	ग्रंथकर्ता	विशेष
					मौलवी अमानतउल्लाह, मौलवी फ़ज़लुल्लाह, मिर्ज़ा काज़िम अली जवाँ	दोनो मौलवी ८०-८० रुपए का वेतन पाने योग्य हैं और मिर्ज़ा जवाँ को इस समय मिल रहे ८० रुपए की जगह कम से कम सौ रुपए मिलने चाहिए। पिछले कई महीनों से ये तीनो एक ऐसी रचना में लगे हुए हैं जो एक उदार शासन से हर प्रकार का समुचित पुरस्कार पाने योग्य है, और मुझे आशा है कि कॉलेज कौंसिल मेरी इस सिफ़ारिश को कृपादृष्टि से देखेगी। मेरी यह सिफ़ारिश उन व्यक्तियो के संबंध में है जो मेरे निरीक्षण में बड़े उत्साह के साथ क़ुरान का हिंदुस्तानी रूपांतर करने में लगे हुए हैं। संभवतः यह अठारह महीने में या शायद उससे जल्दी समाप्त हो जायगा।
गुल इ-बकावली	—	—	२००	१५०	निहालचंद	ये बारासत के रहने वाले है और इन्होंने एक वर्ष मे यह रोचक रचना पूर्ण की है।

—	३००	—	४००	क़ाज़ी मिर्ज़ा मुग़ल	ये एक विद्वान् व्यक्ति और कवि हैं जो अभी हाल ही में कॉलेज को पूर्वीय साहित्य का केंद्र समझ कर यहाँ आए हैं।
—	२००	—	१००	कुंदनलाल	बारासत के हेड मुंशी। इनकी रचना प्रस्तावित पुरस्कार पाने योग्य है।
—	—	१००	५०	मीर अबुल क़ासिम	कलकत्ते के एक देशी सज्जन जिन्होंने बड़े उत्साह के साथ यह मिश्रित संग्रह तैयार किया है। यह एक परिपक्व रचना न होकर इस बात का उदाहरण है कि प्रोत्साहन मिलने पर हम इनसे क्या आशा कर सकते हैं।
—	—	१५०	७०	बासित खाँ	साधारण योग्यता के एक हिंदुस्तानी कवि।
—	—	११०	६०	तोताराम	बारासत के एक मुंशी।
—	—	११०	५०	मुहम्मद बख़्श	हिंदुस्तान के रहने वाले एक विद्वान्। इस छोटी-सी रचना की मीर शेर अली ने अच्छी प्रशंसा की है।
३००	—	—	४००	शाकिर अली	प्रसिद्ध 'अरेबियन नाइट्स'। इस रचना से हिंदुस्तानी का ज्ञान प्राप्त करने में बहुत सहायता मिलने की संभावना है।
—	—	२००	१००	ग़ुलाम हैदर	बंगाल के निवासी एक देशी द्वारा फ़ारसी रचना का एक उत्तम अनुवाद।

कॉलेज कौंसिल कुरान के हिंदुस्तानी रूपांतर के वास्ते पुरस्कार देने के लिए प्रस्तुत नहीं थी। शेष के निरीक्षणार्थ उन्होंने दो देशी विद्वानों की एक कमेटी नियुक्त की जिसकी रिपोर्ट इस प्रकार है, और जिस पर १० अक्तूबर, १८०३ को कौंसिल ने विचार किया था :

'बोस्ताँ' (अनुवाद)—सामान्यत: भाषा अच्छी है; और रचयिता सहायता पाने योग्य है। ग्रंथ में कुछ अशुद्धियाँ हैं जो आशा की जाती हैं कि छपाते समय सुधार दी जाएँगी। श्री गिलक्राइस्ट द्वारा प्रस्तावित पुरस्कार...४०० रुपए।

'कलाकाम' (अनुवाद)—भाषा काफ़ी अच्छी है और ग्रंथ की रचना अत्यंत सुंदर ढंग से हुई है। श्री गिलक्राइस्ट द्वारा प्रस्तावित पुरस्कार...१०० रुपए।

'गुल-ओ-हुर्मुज़' (अनुवाद)—भाषा ग्रंथ के अनुरूप है, यद्यपि इसमें अशुद्धियाँ बहुत हैं। लेकिन श्री गिलक्राइस्ट द्वारा प्रस्तावित पुरस्कार दिया जा सकता है... १०० रुपए।

'गुलबकावली' (अनुवाद)—शैली और भाषा अशुद्ध हैं, किंतु रचयिता कुछ सहायता पाने योग्य जान पड़ता है। श्री गिलक्राइस्ट द्वारा प्रस्तावित १५० रुपए के स्थान पर १०० रुपए दिए जायँ।

'फ़ीरोज़शाह' या 'शहर बदख्शाँ की कहानी' (अनुवाद)—इस ग्रंथ की न तो शैली ही अच्छी है न भाषा, किंतु तब भी रचयिता को कुछ सहायता दी जा सकती है। श्री गिलक्राइस्ट द्वारा प्रस्तावित ५० रुपए में से कुछ कम करने की कोई गुंजायश नहीं है।

'गुलसनोबर' (अनुवाद)—यह एक हास्य-संग्रह है जिसमें बहुत-से हास्य तो शब्दों को उनके उच्चारण-भेद से भद्दा और अश्लील बना देते हैं। लेखक की अज्ञानता-वश इसमें अशुद्धियाँ भरी पड़ी हैं। सहायता देने के बदले लेखक कॉलेज के सामने एक अश्लील स्थलों से पूर्ण रचना प्रस्तुत करने की धृष्टता के अपराध में दोषी ठहराया जाय।

'दिलरुबा' (अनुवाद)—रचयिता उर्दू ज़बान से परिचित नहीं जान पड़ता और काव्य-शास्त्र के नियमों से तो बिल्कुल अनभिज्ञ है। कुछ अंश कवित्त शैली में लिखे गए हैं लेकिन लेखक ने आगे चल कर इस शैली में दूसरी शैलियों का सम्मिश्रण कर उर्दू ज़बान का प्रयोग करने की असफल चेष्टा की है।

'हुस्ने-इख्तिलात' (अनुवाद)—सामान्यत: भाषा ठीक है, किंतु शैली अनुपयुक्त है। निर्धारित विषय के संबंध में अज्ञानता के कारण इस छोटे से ग्रंथ में इतनी भूलें और अशुद्धियाँ हैं कि इसकी वर्तमान दशा में लेखक कोई पुरस्कार पाने योग्य नहीं है।

यह रिपोर्ट एच० कोलब्रुक द्वारा प्रेषित हुई थी और कॉलेज कौंसिल ने उसे ज्यों का त्यों ग्रहण कर गिलक्राइस्ट को तदनुसार सूचित कर दिया।

ओ

२० सितंबर, १८०४ को कौंसिल के सामने पेश की गई पुस्तकों की सूची : (पृ० ७३)

हिंदुस्तानी

१ 'हिंदी स्टोरी टैलर', दूसरी जिल्द। फ़ारसी और नागरी लिपियों में कहानियों का संग्रह।

२, 'अख़्लाक़-इ हिंदी,' हितोपदेश के फ़ारसी संस्करण का हिंदुस्तानी विभाग के प्रधान मुंशी, मीर बहादुर अली, द्वारा अनुवाद। फ़ारसी लिपि, नस्तालीक़ अक्षर।

३. 'गुलबकावली', सूफ़ी-दर्शन के रूपक-रूप में एक अद्भुत कथा (Fair tale)। शेख़ इज़्ज़तुल्लाह की फ़ारसी रचना का मुंशी निहालचंद द्वारा अनुवाद। नस्तालीक़ अक्षर।

४. 'शकुंतला नाटक', अथवा प्राणघातक अँगूठी की कहानी। लल्लूलाल कवि और मिर्ज़ा काज़िम अली जवाँ द्वारा ब्रजभाषा से अनूदित। गिलक्राइस्ट द्वारा किए गए लिपि-सुधार की परीक्षा के लिए रोमन लिपि में।

५. 'हिदायत-उल्-इस्लाम', मौलवी अमानतुल्लाह द्वारा संग्रहीत और अनूदित। नस्तालीक़ अक्षर।

६. 'तोता-कहानी,' कादिर बख़्श की फ़ारसी रचना का मुंशी हैदरबख़्श द्वारा अनुवाद।

७. 'कुरान', उसका एक अंश। देशी विद्वानों द्वारा अरबी से हिंदुस्तानी में अनुवाद।

इन ऊपर की रचनाओं का निर्माण गिलक्राइस्ट के निरीक्षण में हुआ था।

८. 'व्यवहारोपयोगी संवादों का संग्रह', अँगरेज़ी और प्राचीन हिंदुस्तानी में। हिंदुस्तानी व्याकरण का अध्ययन न कर सकने वाले व्यक्तियों को हिंदुस्तानी भाषा का ज्ञान प्राप्त कराने के लिए। लेखक, एन्साइन विलियम मैकडूगल, हिंदुस्तानी भाषा के सहायक प्रोफ़ेसर।

प्रेस में

९. 'प्रेमसागर', भागवत के दशम अध्याय का अनुवाद जिसमें कृष्ण-कथा का वर्णन है। लेखक, लल्लूलाल कवि। नागरी लिपि।

१०. 'आरायश-इ-महफ़िल', फ़ारसी में हातिमताई की कहानी का मुंशी सैयद हैदरबख़्श द्वारा अनुवाद। छोटे नस्क़्शी (?, नस्ख़) अक्षर।

११. 'ख़िरद अफ़रोज़,' अबुलफ़ज़ल के 'अयार दानिश' का मौलवी शेख़ हफ़ीजुद्दीन अहमद द्वारा अनुवाद। छोटे नस्क़्शी अक्षर।

१२. 'गौस्पेल्स' (ईसाई धर्म-पुस्तकें), देशी विद्वानों द्वारा हिंदुस्तानी में अनूदित। विलियम हंटर द्वारा ग्रीक से तुलना और संशोधन। नागरी लिपि।

१३ ' [illegible] इ-मोहसनी, मीर अम्मन द्वारा फ़ारसी से अनूदित नागरी लिपि

प्रेस के लिए तैयार हो रही पुस्तकें

१४. 'सिंहासन बत्तीसी', अथवा विक्रमादित्य के सिंहासन की ३२ पुतलियों द्वारा वर्णित कहानियाँ। लल्लूलाल कवि द्वारा संस्कृत से अनूदित। नागरी लिपि।

१५. 'अख़्लाक़-उल्-जलाली' हिंदुस्तानी भाषा के सहायक प्रोफ़ेसर, जेम्स मोअट, के निरीक्षण में अमानतुल्लाह द्वारा फ़ारसी से अनूदित।

औ

चिट्ठा नं० १ (पृ० ७६)

कॉलेज की स्थापना के समय से श्री गिलक्राइस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तकें—कौंसिल से प्राप्त आर्थिक सहायता के विवरण सहित:

पुस्तकें	प्रकाशित होने पर फ़ी प्रति का मूल्य	कुल रुपया	प्राप्त आर्थिक सहायता
१. ऐन्टी जार्गोनिस्ट	१६ रु०		
२. ऑरियंटल लिंग्विस्ट, द्वि०सं०	०		
३. स्ट्रेन्जर्स गाइड	८ रु०	२४ रु०	
४. हिंदी गुलिस्ताँ, दो जिल्द		३२ रु०	३००० रु०
५. हिंदी स्टोरी टैलर, पहली जिल्द		१२ रु०	१००० रु०
६. हिंदी मौरल प्रीसेप्टर	२० रु०		
७. पौलीग्लौट फ़ेबिल्स	३२ रु०		
८. हिंदी अरेबिक टेबिल	४ रु०		
९ प्रौस्पैक्टस ऑव दी हिंदी ऐल्फ़ाबेट	२ रु०	५८ रु०	६००० रु०
१०. हिंदी स्टोरी टैलर, दूसरी जिल्द	८ रु०		
११. अख़लाक़-इ-हिंदी	१० रु०		
१२. नस्र-इ-बेनज़ीर	१० रु०		
१३. गुल-इ-बकावली	१२ रु०		
१४ शकुंतला नाटक	६ रु०	४६ रु०	
	कुल जोड़	१७२	१०,००० रु०

१७२ रु० के हिसाब से सौ प्रतियों का मूल्य — १७,२०० रु०

१०० प्रतियाँ लेने के वचन के आधार पर छप चुके ग्रंथों पर निकलता हुआ रुपया— ७,२०० रु०

चिट्ठा नं० २

२० अगस्त, १८०४ को हिंदुस्तानी प्रेस में जो ग्रंथ थे उनका चिट्ठा। ये सब श्री गिलक्राइस्ट की संपत्ति हैं

[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	पृष्ठों के संबंध में अनुमान	[illegible]	छपनेवाले पृष्ठों का मूल्य
चौपेजी	२० अध्याय	५००	४ अध्याय	५६		५६	४. ७. ८
,,	१६ ,,	५०८	३ ,,	१००	चौथा अध्याय —१२ पृष्ठ	११२	८. १५.
,,	७ खंड (Divisions)	२००	३ खंड	७६	चौथा खंड— ३० पृष्ठ	१०६	८. ७. ०
,,	३५ प्रकरण (Sections)	११४	२६ प्रकरण	१०४	पूर्ण होने के लिए ४० पृष्ठ	१४४	११. ८. ४
,,	६० ,,	३३६	५१ ,,	१३६	५२वां प्रकरण—४ पृष्ठ	१४०	११. ३. २
,,		२७८			ये तीन पुस्तकें इतनी छप चुकी हैं कि उन्हें पूर्ण ही समझा जा सकता है।	२७८	२२. ५ १
	कुल चौपेजी पृष्ठ	१९३६					
अठपेजी		३०८				३०८	१[illegible]. ५. १
,,		२७२				२७२	१०. १४. १
							९०. १. ५

क

१ अगस्त १८०७ को निम्नलिखित पुस्तक फ़ोर्ट विलियम कालेज के पुस्तकालय
, और कुछ ख़रीद कर, बंबई सरकार को भेजी गईं थीं :

हिंदुस्तानी-पुस्तकें	कुल	कॉलेज द्वारा प्रदत्त	ख़रीदी गईं	एक प्रति का मूल्य	कुल रुपया	
					रु०	आ० प
१. सिंहासन बत्तीसी	५०	२५	२५	२० रु०	५००	.
२. बैताल पचीसी	५०	२५	२५	१६ ,,	४००	.
३. मसनवी	५०	२०	३०	५ ,,	१५०	.
४. प्रेंडिक्स टु गिलक्राइस्ट्स डिक्शनरी	५०	५०	—	—	—	—
५. ऑरिएंटल लिंग्विस्ट	५०	५०	—	—	—	—
६. मिस्कीन कृत मर्सिया	५०	५०	—	—	—	—
७. प्रैक्टीकल आउटलाइन्स	५०	५०	—	—	—	—
८. शकुंतला, नागरी में, खंड	५०	५०	—	—	—	—
९. अयार दानिश ,,	५०	३०	२०	६. ८. ०,,	१३०	.
१०. हातिमताई ,,	५०	३०	२०	४. १५.३,,	९८	१२
११. प्रेमसागर ,,	५०	३०	२०	११.७. ३,,	२२८	१२
१२. स्ट्रेन्जर्स गाइड ,,	५०	—	५०	८ ,,	४००	.
१३. हिंदी गुलिस्ताँ, दो जिल्द	४२	—	४२	१६ ,,	६७२	.
१४. हिंदी मौरल प्रीसेप्टर	५०	—	५०	१२ ,,	६००	.
१५. गुलबकावली	५०	—	५०	१२ ,,	६००	
१६. हिंदी स्टोरी टैलर, दो जिल्द	५०	—	५०	१६ ,,	८००	
१७. अख़्लाक़-इ-हिंदी	५०	४	४६	१० ,,	४६०	.
१८. नस्र इ-बेनज़ीर	५०	५	४५	१० ,,	४५०	.
१९. तोता कहानी	५०	—	५०	१२ ,,	६००	.
२०. शकुंतला (रोमन लिपि में)	५०		५०	४ ,,	२००	.
२१. चार दर्वेश	५०	—	५०	२० ,,	१०००	.
२२. डायलौग्ज़	२७	४	२३	१२ ,,	२७६	.

ख

उन ग्रंथों की सूची जिनसे हंटर ने अपनी 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी' के लि शब्द-समूह ग्रहण किया था : (पृ० १०३)

१. मीर तक़ी : 'कुल्लियात' २. जुरत : 'कुल्लियात' ३. सौदा : 'कुल्लिय
४. मीर सोज़ : 'दीवान' ५. मीर शेर अली अफ़सोस : 'दीवान' ६. मीर हसन : 'मसन
७. आफ़ताब (शाह आलम) : 'मसनवी' ८. वली : 'दीवान' ९. दक्खिनी बोली में टीपू
पुस्तकालय से किसी अज्ञात कवि की रचना : 'मसनवी' १०. नज़ीरी : 'दीवान' ११. मि
जवाँ : 'बारहमासा' १२. मीर हसन : 'मसनवी ख़्वाब अलवान' १३. मीर दर्द : 'दीव
१४ मीर शेर अली १५. बहादुर अली 'नस्र इ-बेनज़ीर' १६ हैदर बख़

क़िस्स-इ-हातिम' १७ मीर अम्मन 'बाग़ोबहार' १८ मीर शेर अ
महफ़िल' १९ मिर्ज़ा काज़िम अली 'शकुंतला' २० मजहर अली ख़ाँ
दर बख़्श : 'तोता कहानी' २२. ? : 'नक़्लियात' (लल्लूलाल कृत ?)
कवि : 'प्रेमसागर' २४. मज़हर अली खाँ : 'बैताल पचीसी' २५. मि
जवाँ : 'सिंहासन बत्तीसी' २६. लल्लूलाल कवि : 'राजनीति' (ब्रजभाषा)
'रामायण' (पूर्वी) २८. मीर बहादुर अली : 'अख़्लाक़-इ-हिंदी'
'कवित्त-रामायण' ३०. सदल मिश्र पंडित : 'राम चरित्र' (पूर्वी, संस्कृत
नारायण : 'क़िस्स-इ-आक़िलशाह' ३२ ? : 'राजकोष' ३३. ? : 'भाव
'अल्फ़ाज़ अद्वीया' ३५ ? : 'रियाजुल अद्वीया' ३६ ? : 'सेहत-उल्-
'मख़्ज़न उल्-अद्वीय' ३८ ? : 'ग़रायिब-उल्-लुग़ात' ३९. डॉ० हैरिस : '
नरी' ४०. गिलक्राइस्ट और रोएबक : 'हिंदुस्तानी डिक्शनरी' ४१. इ
'दरिया-इ-लताफ़त' ४२. इब्राहीम अली ख़ाँ : 'तज़्किरा' और ४३. ग्लैड्वि
पर्शियन एँड हिंदुस्तानी' ।[1]

ग

सरकारी काग़ज़ों के आधार पर लौकेट का मेआ इस प्रकार है : (पृ० १०५)

पुस्तक का नाम और विवरण	ली गई प्रतियों की संख्या	दिया गया धन	किसके द्वारा अधिकृत और किस तिथि में
१. शकुंतला, नागरी में	५००	१४०६. ४ ०	कॉलेज कौंसिल द्वारा, ६ फरवरी, १८०२
२. प्रैक्टीकल आउटलाइन्स ऑर ए स्कैच ऑव हिंदी ऑरथीपी ऐंड दि हिंदुस्तानी प्रिंसीपिल्स	५००	३१५०. ०. ०	कॉ० कौं०, १ फ़रवरी, १८०२
३. मिस्कीन कृत एलेजी, हिंदी	५००	३७५. ०. ०	कॉ० कौं०, २५ जनवरी, १८०२
४. अख़्लाक़-इ हिंदी अथवा हिंदुस्तानी में हितोपदेश का अनुवाद और एक दूसरा संस्करण शुद्ध हिंदी में	५००	४५००. ०. ०	कॉ० कौं०, ?

१—कॉ० वि०, २१ मार्च, १८०१—१० जुलाई, १८११, होम पृ० ९८६ ह्न० इ० रे० वि०

५. गुलिस्ताँ और पद-नामा, हिंदुस्तानी में अनूदित	१००	२०००. ०. ०	कॉ० कौ०, २४ जनवरी, १८०३
६. नस्र-इ-बेनज़ीर, हिंदी		?	कॉ० कौ० ?
७. दि हिंदी मौरल प्रीसेप्ट्स	२०		
८ दि ऑरिएंटल फ़ैब्यूलिस्ट और पौली-ग्लॉट, पूर्व की छः भाषाओं में ईसप्स फ़ेबिल्स का अनुवाद	२०	१०००. ०. ०	कॉ० कौ०, २७ जून, १८०३
९. हिंदी स्टोरी टैलर, नागरी और फ़ारसी लिपि में	१००	१२००. ० ०	कॉ० कौ०, १३ जनवरी, १८०३
१०. बाग़ोबहार	५००	१७३७. ८. ०	कॉ० कौ०, ३१ अगस्त, १८०४
११. तोता कहानी, हिंदी	१००		कॉ० कौ०, १२ नवंबर, १८०४
१२. गुलबकावली, फ़ारसी से हिंदी में अनुवाद	?	?	कॉ० कौ०, ?
१३. बत्तीसी सिंहासन, मूल संस्कृत के ब्रजभाषा संस्करण से हिंदुस्तानी अनुवाद	१००	१०००. ०. ०	? ?
१४. मसनवी मीर हसन	१००	१०५०. ०. ०	कॉ० कौ, २४जून, १८०५
१५. बैताल पचीसी, मूल संस्कृत के ब्रजभाषा और फ़ारसी संस्करण से हिंदुस्तानी में अनुवाद	१००	१२००. ०. ०	कॉ० कौ०, ३० सितंबर, १८०५

१६. आरायश-इ-मह्फ़िल, प्रथम भाग, अथवा हिंदी में हिंदुस्तान के राजाओं का इतिहास	१००	२१००. ०. ०	कॉ० कौ०, २६ सितंबर, १८०७
१७. हिंदुस्तानी ऐंड इंगलिश डिक्शनरी	१००	६०००. ० ०	कॉ०कौ०, २४ जून, १८०५
१८. राजनीति, ब्रजभाषा में	१००	८३७. ८. ०	कॉ० कौ०, ३ फ़रवरी, १८०६
१६. बिहारी की सतसई, ब्रजभाषा में	१००	२४०. १०. ०	कॉ० कौ, ५ मई, १८०६
२०. प्रेमसागर, द्वितीय संस्करण	१००	१६३५. ०. ०	कॉ० कौ०, ३ फरवरी, १८०३
२१. तुलसी कृत रामायण	१००	२५७६. ६. ०	कॉ० कौ० ,१६ जनवरी, १८१०
२२. लतायफ़-इ-हिंदी, अथवा हिंदी और हिंदुस्तानी में कहानियों का संग्रह	१००	६७५. ८. ०	कॉ०, कौ०, २६ जनवरी, १८१०
२३. सर्फ़ - इ - उर्दू, हिंदुस्तानी पद्य	१००	३५७. ४. ८	कॉ० कौ०, २३ जनवरी, १८१०
२४. इंतख़ाब - इ - कुल्लियात-इ-मिर्ज़ा रफ़ी-उस्सौदा, हिंदुस्तानी	१००	२३७५. १२. ०	,, ,, ,,
२५. ग्रैमैटिकल प्रिंसीपिल्स ऑव बृजभाखा ऐंड इंगलिश	१००	६०४. ८. ०	कॉ० कौ०, २६ जनवरी, १८१०

२६. हिंदुस्तानी में इख्वानुस्सफ़ा का अनुवाद	१००	१२००. ०. ०	कॉ० कौ०, २६ जून, १८१०	कारण और विवरण मंत्री के २२ जून, १८१० के पत्र में।
२७. मीर तक़ी की मूल रचनाएँ	१००	५४३५. ०. ०	कॉ० कौ०, ६ जुलाई, १८१०	कारण और विवरण मंत्री के २ जुलाई, १८१० के पत्र में।
२८. नैवल डिक्शनरी	१००	८००. ०. ०	कॉ० कौ०, ६ मार्च, १८११	कारण और विवरण मंत्री के १५ जनवरी, १८११ के पत्र में।
२६. हिंदुस्तानी डिक्शनरी का परिशिष्ट भाग	१००	३०००. ०. ०	कॉ० कौ०, ६ जनवरी, १८०६	कारण और विवरण मंत्री के ३१ दिसंबर, १८०८ के पत्र में। १६ फ़रवरी, १८१० से १८ महीने के लिए एक मुंशी और एक पंडित के वेतन-स्वरूप ७० रु० मासिक डॉ० हंटर को दिए गए। इसके बाद वह जून, १८१२ तक बढ़ा दिया गया। परिशिष्ट भाग अभी प्रकाशित नहीं हुआ।
३०. अँगरेज़ी अनुवाद सहित अरबी, फ़ारसी, हिंदुस्तानी और पंजाबी भाषाओं में कहावतों का संग्रह	१००	२२७५. ०. ०	कॉ० कौ०, २६ जनवरी, १८११	कारण और विवरण मंत्री के १८ जनवरी, १८११ के पत्र में। संग्रह अभी प्रकाशित नहीं हुआ।
३१. बारहमासा, हिंदी में	१००	४२५. ०. ०	कॉ० कौ०, ८ मई, १८१२	कारण और विवरण मंत्री के १ मई, १८१२ के पत्र में

अरबी, फ़ारसी, हिंदुस्तानी, संस्कृत, मराठी, उड़िया और हिंदू-मुस्लिम आईन की कुल नवासी पुस्तकें प्रकाशित हुईं और कुल व्यय २६४१०६-६-१ हुआ।

विस्तृत विवरण :

शकुंतला

डॉ० गिलक्राइस्ट कृत पूर्वी और पश्चिमी ध्वनियाँ प्रकट करने वाली वर्ण-विन्यास (Orthoepigraphical) आयोजना के उदाहरण-स्वरूप शकुंतला नाटक की लोकप्रिय कथा जिसका 'शकुंतला अथवा फ़ैटलरिंग' शीर्षक से सर विलियम जोन्स ने संस्कृत से अँगरेज़ी में अनुवाद किया था।

मिस्कीन कृत एलेजी—हिंदुस्तानी

२५ जनवरी, १८०२ को कॉलेज कौंसिल ने निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया था :

'कि विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तकों से संबंध रखने वाले २ नवंबर, १८०१ के प्रस्ताव की नक़ल विभिन्न प्रोफ़ेसरों के पास भेजी जाय और उनसे अपने-अपने विषयों से संबंध रखने वाली पाठ्य-पुस्तकें चुन कर यथासंभव शीघ्र ही कौंसिल के पास भेजने की प्रार्थना की जाय।'

विद्यार्थियों के लिए हिंदुस्तानी ग्रंथों का नितांत अभाव था। इसलिए डॉ० गिलक्राइस्ट के कहने से यह तथा निम्नलिखित हिंदुस्तानी ग्रंथ अथवा उनसे चुने हुए अंशों के संग्रह कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए प्रकाशित हुए थे।

सिंहासन बत्तीसी

संस्कृत से अनूदित ब्रजभाषा संस्करण से। ब्रजभाषा संस्करण सम्राट् शाहजहाँ की आज्ञा से।

शकुंतला नाटक

—

अख़लाक़-इ-हिंदी

—

बैताल पचीसी

ब्रजभाषा से हिंदुस्तानी में।

बाग़ोबहार

अमीर ख़ुसरो कृत मूल फ़ारसी से। एशियाई शिष्टाचार और रीति-रस्मों का वर्णन।

मीर हसन की मसनवी

'सहरुल बयान' के नाम से भी प्रसिद्ध है। शाहज़ादा बेनज़ीर की कथा रूपक के रूप में।

हिंदी गुलिस्ताँ और पंदनामा

—

सौदा कृत 'गुलिस्ताँ'

—

तोता कहानी

ज़ियाउद्दीन नख़्शबू कृत फ़ारसी 'तूतीनामा' का संक्षिप्त रूपांतर।

हिंदुस्तानी डिक्शनरी

गिलक्राइस्ट द्वारा अपने विद्यार्थियों के लाभार्थ रचित।

नस्र-इ-बेनज़ीर

मीर हसन की मसनवी का गद्यात्मक रूप। डॉ० गिलक्राइस्ट के निरीक्षण में हिंदुस्तानी कक्षाओं के लाभार्थ।

हिंदी मौरल प्रीसेप्टर

और 'पर्शियन स्कॉलर्स शोर्टैस्ट गाइड टु दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज'—लेखक डॉ० गिलक्राइस्ट। इसमें फ़ारसी और हिंदुस्तानी विभक्तियाँ तथा व्याकरण, और सादी कृत पंदनामा तथा अन्य रचनाओं से अँगरेज़ी अनुवाद सहित उद्धरण हैं। साथ ही विद्यार्थियों के लाभार्थ हिंदुस्तानी अनुवाद सहित फ़ारसी में बातचीत भी जोड़ दी गई है।

ऑरिएंटल फ़ैब्यूलिस्ट

अथवा विद्यार्थियों के लाभार्थ डॉ० गिलक्राइस्ट कृत ईसप्स फ़ेबिल्स का अरबी, फ़ारसी, हिंदुस्तानी, ब्रजभाषा, संस्कृत और बँगला में अनुवाद।

गुलबकावली

फ़ारसी कथा का हिंदुस्तानी अनुवाद। हिंदुस्तानी में 'मज़हब-इ-इश्क़' के नाम से भी प्रसिद्ध है। फ़ारसी ग्रंथकार का नाम शेख़ इज़्ज़तुल्लाह है जो सौ वर्ष पूर्व बंगाल के निवासी थे। निहालचंद ने इसका अनुवाद किया था और पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई थी।

सिंहासन बत्तीसी

संस्कृत से हिंदुस्तानी में।

मीर हसन की मसनवी

आरायश-इ-महफ़िल

'ख़ुलासतुल हिंद' के एक भाग का मीर शेर अली अफ़सोस द्वारा संक्षिप्त हिंदुस्तानी रूपांतर। दिल्ली के—युधिष्ठिर से राय पिथौरा तक—हिंदू राजाओं का इतिहास।

हिंदुस्तानी ऐंड इंगलिश डिक्शनरी

डॉ० विलियम हंटर द्वारा प्रकाशित हिंदुस्तानी भाषा का कोष। कैप्टेन जे० टेलर द्वारा मूल संपादन का संशोधन।

राजनीति—'ब्रजभाखा'

हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर ने एक अति उत्तम पाठ्य-पुस्तक के रूप में इसकी सिफ़ारिश की थी ब्रजभाषा की शिक्षा के लिए यह अत्यंत है

बिहारी की सतसई

पाठ्य पुस्तक के रूप में इसके गुण और उपयोग देख कर कालेज कौंसिल ने सरकारी संरक्षण के लिए सिफ़ारिश की थी।

प्रेमसागर

हिंदुस्तानी के वर्तमान प्रोफ़ेसर ने इस ग्रंथ के, जिसमें हिंदू देवता कृष्ण की जीवनी है, संबंध में इस प्रकार लिखा था—'पाठ्य-पुस्तक के रूप में हिंदुस्तानी के पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि में सहायक होने की संभावना तथा उपयोगिता और 'भाखा' में पुस्तकों का अत्यंत अभाव होने की दृष्टि से कॉलेज कौंसिल का संरक्षण पाने योग्य है।'

तुलसी कृत रामायण

लतायफ़-इ-हिंदी

कॉलेज के भाषा-मुंशी लल्लूलाल कवि ने यह ग्रंथ प्रकाशित किया है। यह उर्दू भाषा, जिसमें कहावतों और मुहावरों की छटा दिखाई गई है, और हिंदवी में कहानियों का संग्रह है। हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर, कैप्टेन टेलर, और फ़ोर्ट विलियम कालेज के परीक्षक, लेफ़्टिनेंट लोकेट, द्वारा रचित अर्थ सहित दुर्बोध और असाधारण शब्दों और अभिव्यंजनाओं का एक कोष भी उसमें जोड़ दिया गया है। हिंदुस्तानी का ज्ञान प्राप्त करने में इस ग्रंथ से सहायता मिलने की दृष्टि से एक उपयोगी ग्रंथ देख कर तथा २५ जनवरी के मंत्री के पत्र में हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर की इसकी रचना के संबंध में सम्मति देखकर कॉलेज कौंसिल ने सौ प्रतियाँ लेने की सिफ़ारिश की थी।

सर्फ़-इ-उर्दू

यह अमानतुल्लाह कृत हिंदुस्तानी व्याकरण का संक्षेप में सार है। स्मरण रखने की सरलता का विचार कर उन्होंने इसकी रचना पद्यात्मक रूप में की है। हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर ने कॉलेज कौंसिल को लिखा था कि यह ग्रंथ निम्न कक्षाओं में मुहावरों और व्याकरण की सरल पद्यात्मक रूप में शिक्षा देने में विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध होगा (मंत्री का पत्र, २२ मार्च, १८१०)।

इंतख़ाब-इ-कुल्लियात-इ-सौदा

ग्रैमैटिकल प्रिंसीपिल्स ऑव बृजभाखा

हिंदुस्तानी भाषा की एक लाभदायक बोली और उसकी रचना-विधि का ज्ञान उपलब्ध करने के लिए उपयोगी होने की दृष्टि से हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर ने इसे अच्छा ग्रंथ बताया था।

मीर तक़ी की रचनाएँ

संपादक—प्रधान मुंशी तारिणीचरण मित्र और गुलाम अकबर।

व्याकरण सहित इंगलिश और हिंदुस्तानी नैवल डिक्शनरी—संपादक, लेफ़्टिनेंट रोएबक।

हिंदुस्तानी डिक्शनरी का परिशिष्ट भाग—संपादक, डॉ॰ विलियम हण्टर

हिंदुस्तानी, फ़ारसी, अरबी और पजाबी में कॉलेज कौंसिल के मत्री, डॉ० विलियम हटर, द्वारा पूर्वी कहावतों का सग्रह।

बारहमासा

या दस्तूर-उल-हिंद। हिंदुस्तानी विभाग के मिर्जा काज़िम अली की हिंदुस्तानी मे एक कविता। इसमें भारतवासियो के शिष्टाचार तथा रीति-रस्मो और वर्ष के विभिन्न महीनों मे अनेक कार्यों का वर्णन है। हिंदुस्तानी में मूल रचनाओं का अभाव है और जिन ग्रथों को प्रोत्साहन मिला है उनमें से अधिकाश दूसरी भाषाओं से अनूदित ग्रंथ रहे हैं। मौलिकता के महत्व और हिंदुस्तानी भाषा की शिक्षा देने के अतिरिक्त यहाँ के निवासियो की अजीब रीतियो के संबंध में सूचित करने की दृष्टि से भी इस कविता का लाभ है।[१]

घ

गिलक्राइस्ट और प्राइस के संक्षिप्त जीवन-विवरण

गिलक्राइस्ट

(१७५९-१८४१)

गिलक्राइस्ट का जन्म १७५९ मे एडिन्बरा मे हुआ था। वहाँ के जॉर्ज हेरियट्स (Heriot's) अस्पताल मे चिकित्सा-संबंधी शिक्षा प्राप्त कर वे ३ अप्रैल, १७८३ को ईस्ट इंडिया कपनी के कर्मचारी की हैसियत से सहायक सर्जन नियुक्त होकर कलकत्ते आए। २१ अक्तूबर, १७९४ को वे सर्जन नियुक्त हुए। भारतवर्ष में रहते हुए उन्होंने हिंदुस्तानी के अध्ययन और प्रचार के लिए विशेष प्रयत्न किया और निम्नलिखित ग्रंथों की रचना की:

'ए डिक्शनरी इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी', दो भाग (१७८७—१७९०)

'ए ग्रैमर ऑव दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज' (१७९६)

'दि ऑरिएंटल लिंग्विस्ट' (१७९८, द्वितीय संस्करण, १८०२)। कॉलेज (१८००) मे हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हो जाने पर उन्होंने अनेक पाठ्य-पुस्तकों (भारतीय अध्यापको द्वारा रचित) का संपादन और निर्माण किया, जैसे,

'दि ऐंटी जार्गोनिस्ट' ('दि ऑरिएटल लिंग्विस्ट' का संक्षिप्त सस्करण, १८००)

'दि स्ट्रेंजर्स ईस्ट इंडियन गाइड टु दि हिंदुस्तानी' (१८०२, द्वितीय संस्करण लदन से—१८०८, तृतीय संस्करण, १८२०)

'द हिंदी स्टोरी टैलर' (१८०२)

'ए कलेक्शन ऑव डायलौग्स, इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी' (१८०४, एडिन्बरा से द्वितीय संस्करण, १८०६, लंदन से तृतीय , १८२०)

'दि हिंदी मौरल प्रीसेप्टर' (१८०३)

दि ओरिएटल फ़ैब्यूलिस्ट' (१८०३), आदि।

स्वास्थ्य ठीक न रहने तथा अन्य कारणों से १८०४ में वे त्याग-पत्र देकर इंगलैंड वापिस चले गए। सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने उनकी कोर्ट से सिफ़ारिश की और लॉर्ड वेलज़ली ने व्यक्तिगत रूप से एक पत्र श्री ऐडिंगटन (बाद को लॉर्ड सिड्मथ) को भी लिखा। कुछ दिन तक वे एडिनब्रा मे रहे जहाँ के विश्वविद्यालय ने ३० अक्तूबर, १८०४ को उन्हे एल-एल० डी० की उपाधि प्रदान की। ६ जनवरी, १८०६ को उन्होंने कपनी की नौकरी छोड दी और ३०० वार्षिक पेंशन उन्हे मिलने लगा। गिलक्राइस्ट तेज़ मिज़ाज और उग्र राजनीतिक विचारो के व्यक्ति थे और इसीलिए प्रायः उनका लोगों से झगड़ा हो जाया करता था। उन्होने एक पूर्वीय चिड़ियाघर भी खोला और जेम्स इगलिस (Inglis) की सहकारिता में 'इंगलिस, बौर्थविक् गिलक्राइस्ट' के नाम से एक बैंक भी खोली। लेकिन दूसरी बैंको द्वारा संदेह की दृष्टि से देखे जाने पर गिलक्राइस्ट की बैंक बहुत शीघ्र बन्द हो गई।

१८०६-८ में उन्होंने एडिनब्रा से 'ऐंटी-जार्गोनिस्ट', 'स्ट्रेंजर्स गाइड', 'ओरिएंटल लिंग्विस्ट' तथा कई अन्य हिंदुस्तानी भाषा-संबंधी रचनाएँ मिलाकर उन्हे 'दि ब्रिटिश इंडियन मौनीटर', दो भाग, के नाम से प्रकाशित किया। १८१५ में उन्होंने ग्लासगो से 'Parliamentary Reform on Constitutional Principles; or British Loyalty Against Continental Royalty' नामक एक सनसनी पूर्ण राजनीतिक रचना प्रकाशित की। तत्पश्चात् भारत मे सरकारी नौकरी पाने के इच्छुक व्यक्तियो को निजी तौर से पूर्वीय भाषाओं की शिक्षा देकर धनोपार्जन की दृष्टि से वे १८१६ में लंदन चले आए। दो वर्ष बाद ईस्ट इंडिया कपनी ने अपने कर्मचारियो, विशेष रूप से चिकित्सक अफ़सरो, को भारत आने से पूर्व हिंदुस्तानी के प्राथमिक सिद्धांतो की शिक्षा देने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए उन्होंने गिलक्राइस्ट को २०० l. वार्षिक पर लाइसेस्टर (Leicester) स्कायर में स्थापित ओरिएंटल इस्टीट्यूशन में प्रोफ़ेसर नियुक्त किया। वेतन के अतिरिक्त, उन्हें १५० l. अधिक और इस शर्त पर दिए जाते थे कि वे फिर प्रत्येक विद्यार्थी से तीन गिनी से अधिक नहीं लेंगे। किंतु गिलक्राइस्ट ने यह स्वीकार न किया और अपनी ओर से यह नियम बना दिया कि विद्यार्थियो का उनकी क्लास में तभी दाखिला होगा जब वे उनके प्रकाशकों से इस बात की रसीद ले आवेंगे कि उन्होने उनकी काफ़ी रचनाएँ ख़रीद ली हैं। उनकी रचनाओं का मूल्य १० l. से १५ l. तक होता था। इस प्रकार मुफ़्त पढ़ाने के बहाने वे अधिकारियों द्वारा निश्चित धन से चौगुना या पॅचगुना धन विद्यार्थियो से ले लेना चाहते थे। उनके पढ़ाने के अव्यवस्थित ढंग की भी कड़ी आलोचना की गई। १८२५ में कपनी ने उन्हें सहायता देना बद कर दिया। वे कपनी के अत्याचार, लोभ और उसकी कृतघ्नता की पहले ही शिकायत कर चुके थे। वे चाहते थे कि कपनी न केवल चिकित्सकों को वरन् सभी कर्मचारियो को शिक्षा के लिए उनके पास भेजे ताकि उनकी आमदनी और भी बढ़े उन्होंने अपने समस्त ग्रंथो का सकलन 'दि ओरिएटल, ट्यूनरी पायनियर के नाम से

एक ही जिल्द मे कर दिया और कंपनी के पदाधिकारियों तथा उन सभी को जो पूर्वीय ज्ञान के प्रचार में संलग्न थे भला-बुरा कहा। १८२६ तक वे शिक्षा देते रहे। उसके बाद उन्होंने शिक्षा देने का भार आर्नॉट (Arnot) और डंकन फ़ोर्ब्स को देकर सप्ताह में एक बार अपना निःशुल्क व्याख्यान देने का नियम रक्खा। अपने ग्रंथों की बिक्री कम होते देख कर उन्होंने फिर पहली प्रथा ग्रहण करनी चाही, किंतु उनकी आशा पूरी न हो सकी। १८२८ के प्रारंभ में उन्होंने ऑरिएंटल इंस्टीट्यूशन के पास ही हिंदुस्तानी कक्षा स्थापित करने की असफल चेष्टा की। आर्नॉट और फ़ोर्ब्स जब उनसे आजिज़ आ गए तो उन्होंने ऑरिएंटल इंस्टीट्यूशन के प्रथम वार्षिक विवरण (१ अप्रैल, १८२८ को प्रकाशित) में उनकी कड़ी आलोचना की। अपने जीवन का शेष भाग उन्होंने अवकाश में व्यतीत किया। ६ जनवरी, १८४१ को पेरिस में उनका देहांत हुआ। उनके कोई संतान नहीं थी। उनकी स्त्री मेरी ऐन कोवेंट्री (Mary Ann Coventry) ने नेपिल्स (Kingdom of Naples) के जनरल ग्युग्लिएल्मो पेप (General Guglielmo Pepe) से पेरिस मे विवाह कर लिया।

विलियम प्राइस

विलियम प्राइस ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी थे। वे २ फ़रवरी, १८०७ को बंगाल के पाँचवें रेजीमेंट में लेफ़्टिनेंट, ११ जुलाई, १८२३ को कैप्टेन और २२ अप्रैल, १८३१ को मेजर नियुक्त हुए। १८१५ से कुछ पहले वे फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में संस्कृत, बँगला और मराठी के सहायक प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए थे। हिंदी और हिंदुस्तानी के प्रोफ़ेसर के रूप में उन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

प्राइस के संबंध में इससे अधिक और कुछ ज्ञात नहीं है।

च

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज में ६ फ़रवरी, १८०२, २९ मार्च, १८०३ और २० सितंबर, १८०४ में पढ़ी गईं थीसिसें :

बेली की थीसिस—१८०२

दावा ॥

हिंदूस्तान में काररवाई के लीए हिंदी ज़बान और ज़बानों से ज़ीआदः दरकार है

हिंदूस्तानी ज़बान कि जिसका ज़िक्र मेरे दावे मे है उसको हिंदी-उरदू आ रेख़्तः भी कहते हैं और यिह मुरक्कब अरबी और फ़ारसी ओ संस्कृत या भाषा से है और यिह पिछली अगले ज़माने में तमाम हिंद मे रायेज़ थी

अरब के सौदागरों की आमद ओ रफ़्त से और मुसलमानों की अकस्‌र यूरि और हुकूमति केआमी के बाइस अलफ़ाज़ि अरबी और फ़ारसी उसी पुरानी बोली में बहुत मिल गये और ऐक ज़बान नई बन गई जैसे कि बुनियादि क़दीम पर तामीरि नौ होवे

गरज़ रफ़्त रफ़्त इस ज़बान जदद ने यिह सूरत पकड़ी और दिहली के अहलि दरबार ने चाहा कि यिही बोली हमारे उन कामों में जो ज़बान से तअल्लुक़ रखते हैं वसील: हो तब यिह बतदरीज हर तरफ़ फैली चुनांचि नतीज: इसका यिह हूआ कि हर ऐक मुसलमानी दरबार छोटे और बड़े में भी ऐक मुद्दत में यिह नई ज़बान जारी हूई

आख़िरल अमर यिह बोली हिंदुस्तान सबको अज़ीज और प्यारी हुई औ अकसर मुतवत्तिनों ने इसी मुरक्कब ज़बान पर राग़िब होकर इसको अखज कीआ कि अपने ऐसे मुआमलात जिनका इस्तिहकाम मौक़ूफ़ तहरीर पर न हो उनमें इसीसे कलाम करें

जो इख़्तिलात मुसलमानों का हिंदुओं के साथ कई सबब और वजह से कबही कसरत से हूआ और कबही क़िल्लत से—पस इसी वास्ते हिंदी ज़बान में अजनबी अल्फ़ाज़ की आमेज़िश कबही कसीर कबही क़लील हुई

यिह इख़्तिलाफ़ ज़बान का तीन वजह से बाहर नहीं याने मुहावरऐ क़दीम या दिहाती अमुमी या शहरी—दरबारी या इल्मी—जो कोई चाहे इन तीनों का इमतियाज़ बख़ूबी करे कि हर ऐक का मकाम जुदा जुदा और फ़ाऐद: हिंदुस्तान की हर ऐक क़ौम औ कबाइल में अलाहिद: अलाहिद :

पैहले मुहावरे में अजनबी अलफ़ाज़ कम दख़ील हूऐ हैं इसी वास्ते वुह अपने जगह की देसी भाषा से अकसर ज़ीआद: निसबत रखता है और दूसरे में तख़मीनन अजज़ाऐ मखलूता जुज़ि असली के मुतसावी हैं तीसरे में अरबी और फ़ारसी अलफ़ाज़ की ज़ीआदती कमाल है

इस ज़बान के ग़लबे में जुज़ बाज़े-बाज़े मुल्कों में कितने आरिज़ों से जो पड़ा है सो उनकी तफ़सील ज़रूर नहीं क्यू कर कि ये हर ऐक साहिबि शौर पर खुद बख़ुद रोशन हैं

लेकिन इस इक़रार से मेरा दावा कुछ ज़ईफ़ नहीं हो जाता क्यू कि अगरचि हिंदुस्तान की सरज़मीन पर कई ऐक सरकार और सूबे के लोग अपनी अपनी देसी भाषा बोलते हैं तौ भी मैं मुसिर हू कि उनके या कोई ऐक अजनबी बोली में से जो अब हिंदुस्तान में मुरव्वज है बराबर हिंदुस्तानी ज़बान के उमूमन कोई मुफ़ीद नहीं

औ यिह बात साहिबि फ़िक्र पर अयां है कि किसी मुल्कि वसी में अगरचि बहुत देसी भाषा बल्कि बाज़ी ज़बानें मुख़तलफ़ भी बोलने में आती हैं तौ भी दरबारी और दारुस्सलतनत की ज़बान ला कलाम फ़ाइदे में औरों पर तरजीह रखती है औ इसी सबब से वहां सब कोई क्या मुतवत्तिन क्या अजनबी पैहले इसी को मुक़द्दम जानकर इसत्यामाल में लाते हैं

अब चाहता हू कि ऐसी कई दलीलें नकल करू कि मेरे दावे की इस बात का मूजिब हों

हिंदुस्तान की तमाम सर ज़मीन में कम कोई मुसलमान नज़र आवेगा — हिंदुस्तानी ज़बान समझता या बोलता न होगा

हिंदू भी जो क़दरे इमतियाज़ रखता हो या मुसलमानों से या अंगरेज़ी क़ौम से जिसके कुछ ऐलाक़ : है थोड़ी बहुत दसविहाल अपने नहीं हो सकता कि न जानें

अकसर अजनबी क़ौमों ने कि वूअादेबाश अपनी हिंदुस्तान में की है इसी ज़बान को वसील: गुफ़्तगू का इख्तीआर करते हैं चुनांचि हम लोग पुर्तगेज़ ओ वलंदेज़ ओ फ़रानसीस ओ दीनामार ओ अरब ओ तुर्क ओ यूनीनी ओ इरमनी ओ गुरजी ओ पारस ओ मुग़ल ओ चीनी ओ ग़ैरे इस बात के शाहिदि ज़िंद: है

हिंदूस्तान के अकसर लश्करों में यही ज़बान जवाब ओ सुवाल का वसील: पड़ती है अगरचि हर ऐक आदमी उन्ह मे अपने अपने देस की बोली जान्ता है

सेतबंध के क़रीब से काबुल तक ऐक मुल्क कि जिसकी लंबाई हजार कोस कमओ-बेश और चौड़ाई सात से कोस तख़मीनन् है—बड़ी गंगा के इस तरफ़ उसमें जिन बस्तीओं ओ शहरों पर मुसलमानों का तसर्रुफ़ ओ अमेजिश हुई उन्हों म ऐसे आदमी कम पाए जाएँगे जो हिंदुस्तानी ज़बान बक़दर ज़रूरत के न जान्ते होंगे। क़ित्अ नज़र इससे कि गंगा के उस पार भी अकसर जगहों में मशहूर ओ मुरव्वज है

जो हर किसी क़ौम रसूमात और चलन और तवारीख़ का दरयाफ़्त करना उनकी ज़बान की शिनासाई पर बेशतर मौक़ूफ़ है पस और मुल्कों की निसबत बसबब मुख्तलिफ़ होने दीन ओ फ़िक़ह ओ रुसूम और आदत के हिंदुस्तान में यिह शिनासाई (खुसूसन) जीआद: ज़रूर है

जब तलक किसी मुल्क के साहिबि तसल्लुत और हाकिम अपनी रैयत की ज़बान से वाक़िफ़ न हो ज़ुल्म ओ फ़साद ख्वाहमख्वाह अंजाम होगा।

अगरचि किसू ऐक जारी ज़बान में इल्मी किताबों की क़िल्लत हो तो हो लेकिन वही ज़बान उमूराति मुल्की तजारती लश्करी और अदालती के वसीले के वास्ते सब ज़बानों सेउस दयान में मुफ़ीद ओ मुनासिब है

अब यिह बात कहनी ज़रूर हुई कि हनोज़ पाच चार सदी नहीं गुज़री कि फ़िक़ह फ़राइज़ और काऐद: क़वानीन और तमाम इल्म अजनबी ज़बान से हमारे मुल्क मे सीखा और लिखा जाता था इस पर भी अंगरेज़ी ज़बान उस ज़बान पर ग़ालिब चली आई और यिह भी दलील क़वी है कि वहा का रोज़मर्रः क़ाबिल इसलाह और तहसील के था

अगरचि साहिबि मुहावर: हिंदुस्तानी ज़बान के फ़ख़र नहीं करते कि इसमें बहुत नसर की किताबें या तसानीफ़ि इलमी है पर कितने ऐक क़िस्से खूब ओ ग़ज़लें मरग़ूब ओ ग़ैरे नज़्म में मौजूद हैं। दरकिनार यिह कि मुआमलति महाजनी ओ लश्करी ओ मुहिम्माति मुल्की ओ ग़ैरे कि तअल्लुक़ नविश्त ख्वाद से रखते हैं उन्हों मे भी ज़बानि हिंदी जारी है

और यिह बात किसू पर छिपी नहीं कि यहा के दानिशमंदों की तालीम और मुबाहस ओ मुनाज़रऐ इल्मी इसी ज़बान म होता है और जो कोई चाहे कि कुछ तसनीफ़

कर या और किसू से कुछ मतलब लिखवाये इसमें खेआल करता और इसी से मानें समझाता

ऐक फ़ाऐद: यिह भी है कि अक्सर और ज़बानो का इक्तिसाब इसकी खूब शिनासाई से आसान होता ओ सिर्फ़ यिही ज़बान वसील: है कि जिससे क़रार वाक़ई बे-इनसाफ़ी ओ तग़ल्लुब रैयत से दूर हो जावे

जिन मुक़द्दिमों का ज़िक्र हूआ अगर उनकी बिना रास्ती पर फ़िलवाक़: क़ाइम है तो मैं हैरान हूं कि उन्ह के नतीजे के बातिल करने पर वुह कौनसी दलीलें होगी जो कोई लावेगा और वुह नतीज: लाकलाम यिही है कि सौदागर —मुसाफ़िर —मुल्की ओ लशकरी उह्देदार हकीम ओ तबीब हासिलि कलाम हर ऐक तरह के आदमीओ को सरोकार छोटे बड़े मुआमलों से हिंदुस्तान के रखते हो हिंदूस्तानी बोली उमूमन और बोलीओ से ज़ीआद:तर दरकार ओ मुफ़ीद है और इसी सबब से लाज़िम है कि सब ज़बानो की निसबत क़दर ओ तरजीह रखे

(मॉडरेटर—गिलक्राइस्ट) (नागरी लिपि)

विलियम चैपलिन की थीसिस—१८०३

वाद

सती होने की रीति हिंदूओं में अपने पति के साथ भलमनसी और मया के चलन से बाहर है

क्या ईसवी क्या और अच्छी जातोके लोग किसी पंथके होय जाना जाताहै कि मेरे वादके मिटानेको कोई ऐकभी प्रमान नला सकेगा हे महाराजो मेरी बुद्धिसे तो यिह रीति प्रसिद्ध साच ही जानी जाती है और यिहभी निश्चय कर जानता हूं कि इस कठिन ओ अनजानी बोली में सकत जैसी चाहिये वैसी नही रखता कि इसबात को भली भांति सेव्योरेसमेत समझाऊं तिस परभी मन चलाय बुद्धि दौड़ाता हूं जो मेरे वचनोको ध्यान दे कर सुनो तो आपके मनकी दुवधा जाय सचहै जो इस भयानक चालका सार जिसे अब मैं बोलता हूं जब धीरजकी दृष्टसे देखियेगा तब इसकी अनीति और कठोरी ओ कुरीतिको जानियेगा तो आपकी मतिभी मेरीही मतिके समान हो जयगी

रीति व्याहकी सुदेसोंमें इसलिये है कि दोनो ओर प्रीतिहो ओ आपस में हितसे सेवा करें और स्त्री पुरुष अपने अपने विसन छाड़ ऐकदेके वसमें रहैंजो कि यिहबात साच है तो हिंदूओं में अकेली अबलास्वामीके मरेसे क्यू जलमरती है यिह कैसा न्यावहै इसभांतिका मरना लोगोंमे हुलाससेहोकैवलसेपर व्याह के फलकी आसका बैरी है और सुधर्म सुदेसके चलनसे जोपालना वालकों का पिता को उचित है तो उसके मुएपर उनकी माताको दूनाहै इसलियेनारीको जोग है कि पतिके मरे पीछे अपने लड़कोको सुमाताकी चालसे पाले जोकि तुरक जिनकी अनीति स्त्रीयोंके निमित्त में हमारे यहां कहावत है सो वेभी अपनी नारियोके ऊपर ऐसी अनीति पतिके मरे पीछे नहीं करते जो उन्हें विन मृत्युबीतेबी ˜ महाराजो इस रीतिका विपरीतिके लीये मेरा अधिक कहना वृथा है

हुत जातोंका चलन बोहार इसभांति का है ईसा पंथियोंके समान उनमें सुमानसी बहुत ोड़ी पाईजातीहैं वरन कुछभी नहीं और जिनके धर्ममें ऐसी हिंसा है कि नारीको मरे ्वामी पर वल देते हैं उन्हकी तो क्या चरचाहै क्यूं कि सच्चही यिह रीति मनुष्यतासे ाहुरहै

जानाचाहिये कि जब मनुष्य मनुष्यता के चलनसे अनजानथे तबसे यिह भोंडी रीति चलीहै कै किसो कुचाली कठोरनें सैंकड़ो वरस पीछे जनमकी प्रीतिकी डोरिया मनोंसे काटदीं उससमें कि गृहस्ती धर्म चलानेके लिये दोनों ओर नेहकी जड़ जमी हूईथी सारे संसारमें जो मैं ढूंढूंगा तो ऐसे पापका दृष्टांत कहां नपाऊंगा पचो अब उचित है किमैं ऐसी चालको निरी मूरखता कहूं कि जिसके कर नेसेपशुको भी लाज आवे जोनर अपने को मनुष जानताहै तिसपर उसको पंथनेभी मायामोह सिखायाहै वुह अपने शास्त्रके पटकी ओटमेंहा सोगनिराइ मावहन हितूको बिन सोच सकोच मारडालकर लालो लाल हो इस प्रकारथ प्रसन्नता के लिये ऐसा बड़ा अधर्म भरा हो जैजैकार करे

डरकर इसवातसे मैं चौंकताहूं और भगवानकीदया दृष्टसे चाहताहूं कि साचे पथके चलानेसे यिह रीति घिनावनी औ अनीतिकी मूलसे जातीरहे औरप्रगट जानीजातीहै कियिह चाल मनकी तरगसे निराली है क्यूं कि माता की ममताके वंधन छूटजातेहैं और वुह सुख आसभरा दरसकिजो सुमाता को अपने प्यारे लड़का के पालनेमें नेमधर्म से है सो कुसमें धूंधला होजाताहै सतीके धुऐं से और वुद्धिलोगोंको रंडीके जल मरनें को नहीं चाहती इसलीये किमति एसे मरनेकी रीति को अज्ञानदेगी पर कुपथहीमें यिह अंधेरहै जो सच पूछोतो मूरतपूजनेवाले निर्दई ब्राह्मन केवचन सेहै जिसकी दया मया और बातोंमें प्रसिद्धहै वोही इसहत्याकी सीख देताहै यहांतक कि उसको सोच विचारके लिये ऐक पलभी छुट्टी नहीं देता जो मरहूये प्यारे प्रीतम के दुखमे आपको बचावे भला यहां किसीका ऐसा मन कठिनहै जो हमारा साथी होके उन बिन अपराध स्त्रीयोंकेमरनेपर जो सदा ऐसी बुरी रीति मे जीव देती ह पछतावा नकरे जो तुम मनुष्य हो तो तुम्हारी मायामो हमें इतनी दुवधानहीं औजो ईसापथी हो तो कुछभी नहीं जैसो घिनहमैं इस पापसे है वैसी हम कथनहीं सकते यिह अन्याव बढता है परोहितके बहकानेसे कि वुह कहताहै जो ऐसा कर्म करे सो धर्मके ??? कीछाहतले रहै हाकैसी उलटी आज्ञा है कि सतके लिये जीव रक्षक के शब्दको जो विधाताने आत्मघातकेबचावने कोईमें उपजाया है रोकताह सब कोई चाहता होगा कि यिह कुचाल किसी ढबसे उठजाय और मुझे निपट हुलास होता जो हमारी ओरसेउस रीति पर कुछेक उकासी होती औ सुवुद्धितासे यिह भी जानाजाता है कि लोगो कीपच्छ और हठको जो धर्मके लियेह- िर्सीबातपरऐकाऐकी उठा देना बहुत कठिन है जो किसी उपायसे यिह कामना सिद्ध होसके उनलोगोंमें जो अपने धर्म औ निरफल काजके बसहैं तो ईसापंथीयोके सतसंगसे हो तो हो यिह बड़ी मनसा सिद्धहोनी समेंपर है और निपट अनीति औ अन्यावहोता जोकोई धर्मकेकाजो में लोगोकामनोरथ वलसे नहोने देता मनुष्यकेलिये इन बातोंमें आस भरोसाहीउपदसा है क्यूं कि मनुषका चित अन्यावसे नहीं होता विशेषधर्म कर्म

जिसे नित क सुख जानतेहैं चाहिये कि ग० महाराज अगरेज का बुद्धि विचारके साथ निदान काजआवे क्यू किऐकबिन ऐक सदा अकारथ है

आगे मेरा कहना व्यथा इस लिये मैं जानताहू तुम्हारे जीमें वोहीज्ञानहै जो मेरे हिरदे समायाहै इसकारनमैंसुनने को लौल गयेहू हेमहाराजो मैं देखु तो तुम कैसी कैसी पकडे करतेहो यिहसबिन लगाव कहताहू जो कोई मेरे बाद को कछभी झुठावे वोहो बड़ा ज्ञानी है

(मॉडरेटर — गिलक्राइस्ट) (नागरी लिपि)

जे० रोमर की थीसिस—१८०४

दअ्‌वा

ममालिकि हिंदकी ज़ुबानोंकी असल बुनयाद संस्कृत है ॥

लेकिन जो शख्स इस दअ्‌वेके साबित करने का इरादः करे उसे हिंदूस्तान की अक्सर ज़ुबानि मुरव्वज से खूब वाक़िफ़ होना और हासिल करना ज़रूर है गोकि वुह सबसे माहिर नहो पस मुझे अगर यिह बात लाज़िम न होती कि इस्बाति दअ्‌वेमें कुछ क़सूर नकरू तो इस काम में हरगिज़ दखल नकरता जिसके रद्द ओ बदल करनेके लिये ऐक दस्तरसी मुझमें नहीं ॥

जब कि यिह माजरा यू है जैसामैंने बयान किया तो उन वसीलों को जो मैं अपने दअ्‌वेके क़ाइम रखने को लासकता हू इख्तियार करके उन की होश मुसन्निफ़ा से जिन्होंने इस मुक़द्दमे मे लिखा है ख्वाह लफ़्ज़ हो या मअ्‌ने इसतआर: करता हू उम्मेदवार हू कि मेरा यिह उज़र कबूलहो ॥

चुनाचे उन मुसन्निफ़ों में जोस साहिब सबमे नामवर है लेकिन उसके क़िसम वक़िम मे इशतक़ाक़ की तफ़तीश और मूशिगाफ़ी से बाज़ रहता हू इस वास्ते कि इस कलाम का तर्ज़ से ज़रूर है कि ता मक़दूर जितना होसके मुख्तसर करू पस उस साहिब की किताबो के जुदे जुदे इक़तबास करनेस उन दलीलों की वज़अ् के जाहिर करने के इवज़ उलझेड़ा डालना है ॥

तमाम हिंदूस्तान की मुख्तलिफ़ ज़ुबानो की जड़ संस्कृत है कि जिस से वे पैदा हूई हैं इस सबब मेरे खियाल में यिह बात ठहरती है कि हरऐक का जुज्वी अहवाल कि जिसमें संस्कृत की मुवाफ़क़त ओ मुखालफ़त का बयान हो लिखा जावे ॥

और वुह रिसाल: कि संस्कृत और पराकृत की ज़ुबान के बयान मे लिखा और मशहूर है जो इसी वज़अ् का है तो काफ़ी है कि उसके साहिबि फ़हम मुसन्निफ़ की बातो से जोकुछ कि इस दअ्‌वेके बर क़रार रखने को मेरी दरयाफ़्त मे मुनासिब है इसतिबात करू और उस सबब से कि जिसका मज़कूर इबतदाय कलाम में मैं ने किया अमदन यिह काम करता हू ॥

उस रिसालऐ मज़कूर के मुसन्निफ़ ने पराकृत या संस्कृती म ला चानीक बयान करके हिंदी या हिंदवी ज़ुबान म यू लिखा है क मअ्‌लूम होता है जो आज कल क हिंदूस्तानी

ज़ुबान उससे निकली है और उस भाषा में नज़्म की आज़माइश करने से जो मुशाबहत हिंदी और संस्कृत में है सो बहूत साफ़ ठहरती है और जो कोई इन दोनों ज़ुबानों से वाक़िफ़ है बे शुबह यिह कहेगा कि हिंदी औवल संस्कृत से नक़ली है अकसर अलफ़ाज़ जिनके वजह तसमियः से यिह खुलता है कि वे निरी संस्कृतके हैं उस ज़ुबान में हूबहू मुदर्ज हैं और बहुत और लफ़्ज़ों में सिवा आख़िरी हरफ़ि इल्लत कि साकिन करने से और कुछ तबदील नहीं हुई और बहुत ऐसे हैं कि सिर्फ़ उन हरफ़ों के बदलने से जो मुतबद्दल होते हैं मुतफ़ावत हो जाते हैं बाक़ी थोड़ेसे शाज़ लफ़्ज़ों के सिवा बआसानी असल संस्कृत में पाए जाते हैं और यिह वुह जड़ है कि जिस से हिंदी पैदा हूई है न हिंदी वुह ज़ुबान है कि जिस से संस्कृत ने रौनक़ पाई है इशतक़ाक़ से साबित होती है क्यूं कि मुशाबहत हिंदी में नहीं रहती और संस्कृत में क़ाइम रहती है ॥

गौरा या बंगला ज़ुबान तमाम सूबये बंगाले में सिवाय सरहद्दी ज़िलओं के मुरव्वज है और लोग कहते हैं कि सिर्फ़ पूरब की तरफ़ ख़ूब सफ़ाई से बोली जाती है और जिस तरह वहांके रहने वाले उस ज़ुबान को बोलते हैं सो इसमें बहुत कम अलफ़ाज़ हैं कि जिन की बुनियाद असल संस्कृत से नहीं ॥

दूसरी ज़ुबान जो इसी सिलसिले में मैथला या तिरहुत्तया है सो भी बंगले से बहुत मुशाबिः है और वे हरूफ़ कि जिन्ह में वुह लिखी जाती है उन्ह में और बंगले के हरफ़ों में थोड़ा सा फ़रक़ है ॥

वुह ज़ुबान जो सूबः उठकाला या उडा देस में बोलते हैं जिसका नाम उड़या है जहां तक कि नाक़िस नमूने से दरयाफ़्त होती है तो इस में संस्कृत के अलफ़ाज़ जो तरह बतरह में ख़राब हूऐ हैं और बअज़े फ़ारसी और अरबी लफ़्ज़ जो हिंदूस्तानी के वसीले से मुसतआर हैं और वे कि जिनकी असल में शक है मिले हैं ॥

ये वे पांचो ज़ुबानें हैं कि हिंदूस्तान के उत्तर और पूरब के बसने वाले बोलते हैं और ये पांच ज़ुबानें जो इस ममलुकत के दखन और पच्छम की तरफ़ के बाशिंदे बोलते हैं मैं इसी ही सनद पर बयान करता हूं ॥

पहली उनू में से तामल जिस ज़ुबान का मुसन्निफ़ ने व्याकरन और उवेधान की ऐक ऐक पोथी देखी है और इन दलीलों से यिह इरशाद किया है कि तामला में बहुत से संस्कृत के अलफ़ाज़ जों के तों या कुछ तबदील पाऐ हूऐ मौजूद हैं और अकसर बिगड़े हूऐ और ऐसे बहूत हैं कि जिन की असल में शुबह है ॥

दूसरी महाराशतर या मरहटे की ज़ुबान में हिंदूस्तान की और ज़ुबानों की मानंद बहूत सी साफ़ संस्कृत की बातें हैं और उससे ज़ियादः ख़राब अलफ़ाज़ उसी भाषा के आते हैं और थोड़े से अलफ़ाज़ि अरबी औ फ़ारसी मख़लूत हैं और सिवाय इन्ह के अकसर ऐसे हैं कि जिन्ह की बुनयाद कुछ मअलूम नहीं होती ॥

तीसरी कारनाटा या कारनाड़ा जो कारनाटक की पुरानी भाषा है जो मुशाबहत संस्कृत से और दखन की और ज़ुबानों में है सो यहां की बोली में भी है कोड़े भी अकसर और दखनी क़ौमों की मानन्द अपनी मुल्की ज़ुबानों के साथ बदवज़ई से संस्कृत के तलफ़्फ़ुज़ करने में लगाते और उसके मुताबिक़ मुल्कों के बद नमू ने की पैरवी नहीं करते

चौथी तैलागा तेलगा तिलागा नाम क़ौम का और ज़ुबान का और उन हरफ़ों का कि जिन्ह में यिह बोली लिखी जाती है तिना का है और वहा के बहमन इन्हीं हरफ़ों में संस्कृत के अलफ़ाज़ लिखते हैं और कहते हैं कि संस्कृत के लफ़्ज़ तिलागे के मुहावरे में और दखनी बोलियों में ज़ियादः हैं ॥

पाचवीं गुरजरा जिसको गुजरात कहते हैं वहांके रहने वाले वुह ज़ुबान बोलते हैं कि जिस का नाम उनका इस नाम है सो हिंदी मे अकसर मुशाबिह और जिस ख़त में वुह लिखी जाती है मुंडी नागरी से थोड़ा ही कुछ फ़रक़ है ॥

मैंने इसी सूरत से ऐक मअ़क़ूल ओ मुअ़तबर क़िताब का बातें जो इस दअ़्वे के बर क़रार रखने को किफ़ायत करती है इजतमाअ़ कर लीं हैं और सिर्फ़ इतनी बात जियादः कहता हूं जब लग संस्कृत की असल लअ़सूल (१) हाथ न लगे तब तक चाहइये की हम हर सूरत में इसी को हिंदूस्तान की उमल लिसान समझें ॥

(मॉडरेटर—मोअ़ट) (नागरी लिपि)

काल-क्रम

१६००	कंपनीका प्रथम चार्टर
१७२६	कंपनी का द्वितीय चार्टर
१७७४	क्लाइव का भारतागमन
१७५७	प्लासी का युद्ध
१७६१	पानीपत का युद्ध
१७६४	बक्सर का युद्ध
१७६५	बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अँगरेज़ों के हाथ में
१७६५-१७६७	क्लाइव दूसरी बार भारत में
१७७२-१७८५	वारेन हेस्टिंग्ज़ पहले गवर्नर और फिर गर्वनर-जनरल के रूप में
१७७३	नॉर्थ का रेग्यूलेटिंग ऐक्ट
१७८३	जॉन बौर्थविक् गिलक्राइस्ट का भारतागमन
१७८४	पिट का इंडिया ऐक्ट
१७८६-१७९३	कॉर्नवालिस गवर्नर-जनरल के रूप में
१७८७-१७९०	गिलक्राइस्ट कृत 'ए डिक्शनरी, इँगलिश ऐंड हिंदुस्तानी'
१७९३-१७९८	सर जॉन शोर गवर्नर-जनरल के रूप में
१७९६-१७९८	गिलक्राइस्ट कृत 'ए ग्रैमर ऑव दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज'
१७९८	गिलक्राइस्ट कृत 'दि ऑरिएंटल लिंग्विस्ट'
१७९८-१८०५	मार्क्विस वेलेज़ली गवर्नर-जनरल के रूप में
१७९८	ऑरिएंटल सेमिनरी की स्थापना और गिलक्राइस्ट की अध्याप[क] में नियुक्ति
१७९९	चतुर्थ मैसूर युद्ध और श्री रंगपट्टम का पतन
४ मई, १८००	श्री रंगपट्टम के प्रथम विजयोत्सव के अनुसार कॉलेज की स्थाप[ना]
१० जुलाई, १८००	कॉलेज की स्थापना के संबंध में वेलेज़ली के नोट्स तथा रेग्यूले[शन]
१८ अगस्त, १८००	कॉलेज की स्थापना के संबंध में वेलेज़ली की 'मिनिट्स-इन-[…]' और कोर्ट के डाइरेक्टरों को सूचना
१८००	हिंदुस्तानी विभाग के प्रधानाध्यापक के रूप में गिलक्राइस्ट की
१८००	लल्लूलाल की सर्टिफ़िकेट मुंशी की हैसियत से नियुक्ति
१८००	गिलक्राइस्ट कृत 'ऐंटी-जार्गोनिस्ट' की रचना
१० अप्रैल, १८०१	कॉलेज के विधान का प्रथम परिच्छेद

१८०१ १८०२	लल्लूलाल और जवाँ कृत 'सिंहासन बत्तीसी' और 'शकुंतला'
१८०१ १८०२	लल्लूलाल और विला कृत 'बैताल पचीसी' और 'माधोनल कामकंदला'
२७ जनवरी, १८०२	कॉलेज तोड़ने के संबंध में कोर्ट का वेलेज़ली के नाम पत्र
५ अगस्त, १८०२	वेलेज़ली का उत्तर
१८०२	गिलक्राइस्ट कृत 'दि स्ट्रेंजर्स ईस्ट इंडियन गाइड टु दि हिंदुस्तानी' (द्वितीय संस्करण, १८०८)
१८०२	गिलक्राइस्ट कृत 'दि हिंदी डाइरेक्टरी, ऑर स्टूडेंट्स इंट्रोडक्टर टु दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज'
१८०२	गिलक्राइस्ट द्वारा 'दि हिंदी मैनुअल' या 'कास्केट ऑव-इंडिया' का संपादन
१८०२-१८२३	लल्लूलाल स्थायी मुंशी के रूप में
१८०२-१८०३	गिलक्राइस्ट द्वारा 'नक़्लियात-इ-हिंदी' अथवा 'दि हिंदी स्टोरी टैलर', दो जिल्द
१८०३-१८१०	लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर'
१८०३	सदल मिश्र कृत 'चंद्रावती' अथवा 'नासिकेतोपाख्यान'
१८०३	गिलक्राइस्ट द्वारा 'दि हिंदी मौरल प्रीसेप्टर' या 'अतालीक-इ-हिंदी' और 'दि ऑरिएंटल फ़ैब्युलिस्ट' का संपादन
१८०४	गिलक्राइस्ट कृत 'दि हिंदी रोमन ऑर्थोपीग्रैफ़ीकल अल्टीमेटम...'
१८०४	गिलक्राइस्ट का पद-त्याग
१८०४-१८०६	सदल मिश्र कॉलेज में विद्यमान
१८०५-१८०७	सर जॉर्ज बार्लो गवर्नर-जनरल के रूप में
१८०५	कॉलेज छोटे पैमाने पर किया गया
१८०५	हंटर द्वारा 'न्यू टेस्टामेंट' का संपादन
१८०६	ईस्ट इंडिया कॉलेज, हलीबरी की स्थापना
१८०६	कॉलेज के विधान का द्वितीय परिच्छेद
१८०६	अध्यात्म रामायण का खड़ी बोली में अनुवाद करने पर सदल मिश्र को पुरस्कार
१८०६	मोअट की प्रधानाध्यापक के रूप में नियुक्ति
१८०७-१८१३	लॉर्ड मिंटो गवर्नर-जनरल के रूप में
१८०८	मोअट का त्याग-पत्र और टेलर की प्रधानाध्यापक के रूप में नियुक्ति
१८०८	कैप्टेन जोसेफ़ टेलर और हंटर द्वारा 'ए डिक्शनरी हिंदुस्तानी ऐंड इंगलिश' की रचना
१८०६	हिंदी और फ़ारसी शब्द-सूची तैयार करने पर सदल मिश्र को पुरस्कार
१८०६	कॉलेज के विधान का तृतीय परिच्छेद
१८०६	लल्लूलाल कृत 'राजनीति'

१८१०	लल्लूलाल कृत 'नक़्लियात या लतायफ़-इ-ि संस्करण)
१८११	रोएबक कृत 'ईंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी नैवल ि का संस्करण)
१८११	लल्लूलाल कृत 'व्रजभाषा व्याकरण' की रचना
१८१३	चार्टर ऐक्ट
१८१४	कॉलेज के विधान का चतुर्थ परिच्छेद
१८१४-१८२३	लॉर्ड मॉयरा, मार्किस ऑव हेस्टिंग्ज़, गवर्नर-जनरल
१८१५	लल्लूलाल द्वारा संपादित 'सभा विलास'
१८१५	इद्रेश्वर पंडित की नियुक्ति
१८१५	लल्लूलाल द्वारा संपादित 'सभा विलास'
१८१६	कॉलेज के विधान का पाँचवाँ परिच्छेद
१८१८-१८२१	नरसिंह पंडित कॉलेज में
१८१६	रोएबक कृत 'दि ऐनल्स ऑव दि कॉलेज ऑ का प्रकाशन
१८२२	कॉलेज के विधान का छठा परिच्छेद
१८२३	पंडित गंगाप्रसाद शुक्ल
१८२३-१८२८	लॉर्ड ऐम्हर्स्ट गवर्नर-जनरल के रूप मे
१८२३-१८३०	प्राइस प्रधानाध्यापक के रूप में
१८२४	रोएबक कृत 'ए कलेक्शन ऑव प्रोवर्ब्स ऐंड फ्रेज़ेज़ ऐंड हिंदुस्तानी लैंग्वेजेज़'
१८२४	कॉलेज के विधान का सातवाँ परिच्छेद
१८२५	गिलक्राइस्ट कृत 'दि जनरल ईस्ट इंडिया गाइड ....'
१८२५	कॉलेज के विधान का आठवाँ परिच्छेद
१८२७	प्राइस और तारिणीचरण द्वारा संपादित 'हिंदी ऐंड क्शन्स', दो जिल्द (१८३० में दूसरा संस्करण
१८२७-१८२६	ख्यालीराम पंडित
१८२८-१८३५	लॉर्ड विलियम बैंटिंक गवर्नर-जनरल के रूप में
१८३०	प्रधानाध्यापक के पद तोड़े गए
१८३२-१८३८	ब्रह्म सच्चिदानंद
१८३३	चार्टर ऐक्ट
१८३५	मैकौले की शिक्षा-संबंधी मिनिट्स
१८३५-३६	सर चार्ल्स मेट्काफ़ गवर्नर-जनरल के रूप में
१८३६-१८४२	लॉर्ड ऑक्लैंड गवर्नर-जनरल के रूप में
१८३८-१८४१	मधुसूदन तर्कालंकार
१८४१	मुंशी देवीप्रसाद कृत 'पोलीग्लोट मुंशी'

१८४१	ईश्वरचंद्र विद्यासागर (?)
४१	कालेज के नए नियमों का निर्माण
१८४२-१८४४	लॉर्ड एलेनबरा गवर्नर-जनरल के रूप में
१८४४-१८४८	लॉर्ड हार्डिंज गवर्नर-जनरल के रूप में
१८४८-१८५६	लॉर्ड डलहौजी गवर्नर-जनरल के रूप में
१८५२	हिंदी पंडित, शेष शास्त्री, की नियुक्ति
१८५३	चार्टर ऐक्ट
१८५४	मुंशी देवी प्रसाद कृत 'पोलीग्लोट ग्रामर ऐंड ऐक्सरसाइज़ेज ...'
जनवरी, १८५४	कॉलेज तोड़े जाने की आज्ञा और बोर्ड ऑव ऐग्जामिनर्स की स्थापना
१८५४	चार्ल्स वुड की शिक्षा-आयोजना
१८५६-१८६२	लॉर्ड कैनिंग गवर्नर-जनरल के रूप में
१८५७	विद्रोह
१८५८	ऐक्ट फॉर दि बैटर गवर्नमेंट ऑव इंडिया और कंपनी के शासन का अंत

सहायक ग्रंथ और सामग्री

१ उर्दू', जनवरी, १६२४

२. उवैस अहमद अदीब : 'तन्क़ीदी मताले, इलाहाबाद

३. एड्वर्ड बालफ़ूर, सर्जन जनरल : 'दि एन्साइक्लोपीडिया ऑव इंडिया ऐंड ऑव ईस्टर्न ऐंड सदर्न एशिया', दो जिल्द, लंदन, १८८५, तृतीय संस्करण। प्रथम संस्करण, १८५८

४. 'एशियाटिक ऐनुअल रजिस्टर', १७६६....

५. 'एशियाटिक जर्नल'

६. ए० टी० प्रिंसेप : 'ए जनरल रजिस्टर ऑव दि ऑनरेबुल ईस्ट इंडिया कंपनीज़ सिविल सर्वेंट्स', कलकत्ता, १८४४

७. 'ऐक्सरसाइज़ेज़ फ़ॉर दि यूस ऑव दि कॉलेज ऑव फ़ोर्ट विलियम', कलकत्ता, १

८. 'कलकत्ता गज़ट', १७६६...

६. 'कलकत्ता रिव्यू'

० क्लौडियस ब्यूकैनैन, रेव० (संपादक) : 'दि कॉलेज ऑव फ़ोर्ट विलियम इन् बंगाल' (सरकारी काग़ज़ों और साहित्यिक विवरण, आदि), लंदन, १८०५

१. गार्सां द तासी : 'इस्त्वार द ल लितूरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी', दो जिल्द, १८३६-१८४७। परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण, तीन जिल्द, १८७०-१८७१, पेरिस

२. चार्ल्स डौयले : 'दि यूरोपियन इन् इंडिया', लंदन, १८१३

३. सी० आर० विल्सन : 'ओल्ड फ़ोर्ट विलियम इन् बंगाल', दो जिल्द, लंदन, १६०६

४. जे० सी० मार्शमैन : 'लाइफ़ ऐंड टाइम्स ऑव कैरे, मार्शमैन ऐंड वार्ड', लंदन, १८५६

५ जॉन बौर्थविक् गिलक्राइस्ट : 'डिक्शनरी, इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी', दो जिल्द, १
'दि ओरिएंटल लिंग्विस्ट', कलकत्ता, १७६८ (द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, १८०२)
'ऐपेंडिक्स टु गिलक्राइस्ट्स डिक्शनरी', कलकत्ता, १७६८, तथा अन्य उपलब्ध ग्रंथ

६. जॉन विलियम के : 'लाइव्ज़ ऑव इंडियन ऑफ़िसर्स', लंदन, १८६७

७ जॉर्ज, वाइकाउंट वैलेंशिया : 'वौयेजेज़ ऐंड ट्रैविल्स टु इंडिया, सीलोन, दि रैड सी, ऐबीसीनिया ऐंड ईजिप्ट, १८०२-१८०६', तीन जिल्द लंदन, १८०६

८. जॉर्ज ऐब्राहम ग्रियर्सन . 'दि मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑव हिंदुस्तान', कलकत्ता, १८८६

६. जॉर्ज डब्ल्यू० जॉनसन : 'दि स्ट्रेंजर इन् इंडिया', दो जिल्द, लंदन, १८४३

२०. जेम्स फ़ोर्ब्स : 'ओरिएंटल मेम्वायर्स, दो जिल्द, लंदन, १८३४

१. जेम्स बर्जेस, डॉ० : 'दि क्रौनौलौजी ऑव मॉडर्न इंडिया, ए०डी० १४६४-१८६४', एडिनबरा १६१३

२२ जोसेफ़ टेलर (कैप्टेन) और डब्ल्यू० हण्टर 'डिक्शनरी हिंदुस्तानी ऐंड इंगलिश' दो जिल्द, कलकत्ता, १८०८
२३. टॉमस रोएबक : 'ऐनल्स ऑव दि कॉलेज ऑव फ़ोर्ट विलियम', कलकत्ता, १८१६
२४ टेन्मथ, लॉर्ड : 'मेम्वायर ऑव दि लाइफ़ ऐंड कॉरेस्पौन्डेंस ऑव जॉन लॉर्ड टेन्मथ', दो जिल्द, लंदन १८४३
२५. 'दि स्टैट्यूट्स ऑव दि कॉलेज ऑव फोर्ट विलियम इन् बंगाल, कलकत्ता, १८०१-१८४१'
२६. 'प्रीमीटी ऑरिएंटालिस' (Primitiae Orientales), दूसरी और तीसरी जिल्द. कलकत्ता, १८०३ और १८०४
२७. 'प्रोसीडिंग्स ऑव दि कॉलेज ऑव फ़ोर्ट विलियम तथा अन्य सरकारी विवरण (इ०) और प्रेस लिस्ट, तीस जिल्द, इंपीरियल रेकॉर्ड्स डिपार्टमेंट, नई दिल्ली
२८ 'फोर्ट विलियम कॉलेज' (हैदराबाद, दक्खिन, से प्रकाशित)
२६. फ्रेडेरिक जे० शोर : 'नोट्स ऑन इंडियन ऐफ़ेअर्स', दो जिल्द, लंदन, १८३७
३०. मौन्टगोमरी मार्टिन : 'दि डिस्पेचेज़, मिनिट्स ऐंड कॉरेस्पौन्डेंस ऑव दि मार्क्विस वेलेजली', पाँच जिल्द, लंदन, १८३६-३७
३१. रामचंद्र शुक्ल : 'हिंदी साहित्य का इतिहास', १६२६ और १६४२ संस्करण
३२. (गवर्नर-जनरलों से संबंधित) 'रूलर्स ऑव इंडिया सीरीज़'
३३ आर० आर० पीअर्स : 'मेम्वायर्स ऐंड कॉरेस्पौन्डेंस ऑव दि मोस्ट नोबिल रिचर्ड मार्क्विस वेलेज़ली', तीन जिल्द, लंदन, १८४६
३४. लल्लूलाल की रचनाएँ
३५. लेस्ली स्टीफ़ेन और सिड्नी ली : 'ए डिक्शनरी ऑव नैशनल बायग्रैफ़ी', लंदन १८८५...
३६. डब्ल्यू० एस० सेटन-कार : 'सेलेक्शन्स फ्रॉम कलकत्ता गजट्स', तीन जिल्द, १७८६ १८०५ कलकत्ता, १८६५ १८६८
३७. ब्रजरत्नदास : 'खड़ीबोली हिंदी साहित्य का इतिहास', बनारस, १६४२
३८. श्यामसुंदर दास : 'हिंदी भाषा और साहित्य', प्रयाग, १६३० तथा नवीन संस्करण
३६. एस० के० डे : 'हिस्ट्री ऑव बंगाली लिट्रेचर इन् दि नाइन्टीन्थ सेंचुरी, १८०० १८२५' कलकत्ता, १६१६
४०. सदल मिश्र : 'नासिकेतोपाख्यान' (ना० प्र० स०)
४१. सूर्यकांत शास्त्री : 'हिंदी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', लाहौर, १६३०
४२. 'हिंदुस्तानी', १६४०-१६४३
४३. हेनरी यूल और ए० सी० बर्नेल : 'हॉब्सन-जॉब्सन', लंदन, १६०३
४४. ह्यू पीअर्सन : 'मेम्वायर्स ऑव दि लाइफ़ ऐंड राइटिंग्स ऑव दि रेवरेंड क्लौडियस ब्यूकैनैन', दो जिल्द, लंदन, १८१६, तृतीय संस्करण

तथा अन्य स्फुट सामग्री

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

पृ०	प	अशुद्ध	शुद्ध
४०	३	हेलबरी	हेलीबरी
४२	१६	तत्वाधान	तत्वावधान
४५	१५	प्रगति	प्रतीत
१४२	अंतिम पंक्ति	सरकारी	सरकारी मंत्री,
१६८	८	स्टीटरी	स्टोरी
१७१	१५, १८	चैपलेन	चैपलिन